जनवरी, १९४२ २०००

मूल्य

आठ आना

प्रकाशक—
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री
सस्ता साहित्य मण्डल,
नयी दिल्ली

मुद्रक—
देवीप्रसाद शर्मा,
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस,
नयी दिल्ली

# आदि-वचन

यह एक सयोग की ही वात है कि 'व्यावहारिक अहिंसा'-सम्वन्धी ये निवन्ध रिचार्ड बी० ग्रेग-लिखित 'अहिंसा और अनुशासन'[1] के लगभग साथ-ही-साथ प्रकाशित होरहे है। अहिंसा के उपासको को इन्हे एकसाथ ही पढना चाहिए। रिचार्ड ग्रेग की तरह किशोरलाल मशरूवाला भी अहिंसा के गहरे विद्यार्थी है। यद्यपि इसी विश्वास के वातावरण मे उनका लालन-पालन हुआ है, किसी भी वात को वे स्वयसिद्धि के रूप में नही मान लेते। वे तो केवल उसीपर विश्वास करते है जिसे वे अपनी कसौटी पर कस लेते है। इस प्रकार भारी सोच-विचार के वाद वह अहिंसा को मानने लगे है। और अपनें जीवन एव व्यवहार द्वारा राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा घरेलू आदि विविध परिस्थितियो मे उसकी उपयोगिता को उन्होने सिद्ध किया है। इसलिए उनके निवन्धो का अपना विशेष महत्त्व है। मुझे आशा है कि अहिंसा में विश्वास रखनेंवालो को अपना विश्वास कायम रखने और ईमानदारी के साथ विश्वास न करनें-वालो को अपनी शकाओ का समाधान करने में इनसे मदद मिलेगी।

सेवाग्राम,
२१ अगस्त, १९४१

**मो० क० गांधी**

---

१ इस पुस्तक का अनुवाद भी 'मडल' से शीघ्र प्रकाशित हो रहा है।

# भूमिका

इन दो-तीन सालो मे अहिंसा को लेकर मैने जो कुछ लेख लिखे है, उनमें से छ लेखो का इसमे सग्रह है। पुस्तक की मोटाई न बढाने की दृष्टि मे, फिलहाल इतने ही चुने गये है। ये सब 'सर्वोदय' मासिक मे आ चुके है। इनमें से पहला मूल गुजराती मे और दूसरा और छठा मूल अग्रेजी मे लिखे गये थे, और तीनो छपने से पहले ही गाधीजी की नजर मे गुजर चुके थे। पहले और दूसरे की अग्रेजी पुस्तिका के लिए उन्होने आदि-वचन भी लिखा है। तीसरा लेख पहले मराठी में लिखा गया था।

लेखो की भाषा के बारे में थोडी सफाई कर देना जरूरी है। कुछ लेखो का अनुवाद मेरा किया हुआ है, और कुछका मित्रो ने किया है। जहाँ मेरा अनुवाद या मूल लेख भी हो, वहाँपर भी मित्रो द्वारा मेरी भाषा मे सशोधन किया ही जाता है। और हर वक्त एक ही मित्र नही करता, तथा मेरा भाषा-ज्ञान भी दिन-दिन बदलता रहता है, इसलिए पुस्तक मे एक ही तरह की भाषा-शैली नही मिलेगी। कृपालु पाठक-गण लेखो के विचारो का ही खयाल करे, भाषा और शैली को दरगुजर करे। मै चाहता कि मै इसकी भाषा और शैली ज्यादा सरल कर सकता।

सेवाग्राम
२५-१२-४१

कि० घ० म०

# विषय-सूची

## १
## अहिंसा के आदर्श, सिद्धान्त और आचार



## २
## व्यवहार्य अहिंसा



## ३
## मनुष्य की स्वभावगत अहिंसा-वृत्ति

# अहिंसा-विवेचन

: १ :

# अहिंसा के आदर्श, सिद्धान्त और आचार

[ अहिंसा के ही मार्ग से जो लोग जनता की सेवा और देश की भलाई साधना चाहते है, उनके उद्देश्य, सिद्धान्त और बर्ताव कैसे हो, इसकी रूपरेखा—जिसे कि गाधीजी ने पसन्द किया है—अहिंसा के सेवको को राह दिखाने के लिए यहां दी जाती है — ]

## १

## आदर्श और सिद्धान्त

१ जीवन का सच्चा आधार या बुनियाद अहिंसा ही है, न कि हिंसा।

२ 'मैं' और 'मेरे' के तग दायरे मे बंधे रहने से ही हिंसा पैदा होती है। यह दायरा लगातार बढाते जाना ही अहिंसा की साधना है।

३ सारे जीव एक-से है। बल्कि सबमें एक ही आत्मा है। ( इसलिए, कहने की जरूरत नही कि, सभी आदमी बराबर है। ) परन्तु चूंकि अहिंसा की साधना मनुष्यो मे करनी है, इसलिए, मनुष्य-समाज का विचार खास तौर पर करना चाहिए।

४ सारा मनुष्य-समाज एक ही परिवार (खानदान) है। स्त्री-पुरुष भी समान है। परन्तु उस परिवार मे देश, राज्य, वश, रग, वर्ण (धन्धा), जाति, धर्म, शिक्षा, पैसा, भाषा, लिपि वगैरा के भेदो के सबब से जुदी-जुदी टोलियां बन गयी है। इन्ही भेदो (फर्को) की वजह से व्यक्तियो और कौमो मे भी विशेषताएँ या खासियते पैदा हो जाती है।

५ इन फर्को या खासियतो को टालना या नज़रअदाज़ करना मुमकिन नही है। लेकिन उनपर घमण्ड या दुरभिमान करना ठीक नही है। ये फ़र्क और खासियते जिस हदतक समूचे मानव-परिवार की भलाई

: १ :

# अहिंसा के आदर्श, सिद्धान्त और आचार

[ अहिंसा के ही मार्ग से जो लोग जनता की सेवा और देश की भलाई साधना चाहते है, उनके उद्देश्य, सिद्धान्त और बर्ताव कैसे हो, इसकी रूपरेखा—जिसे कि गाधोजी ने पसन्द किया है—अहिंसा के सेवको को राह दिखाने के लिए यहां दो जाती है -- ]

## १
## आदर्श और सिद्धान्त

१ जीवन का सच्चा आधार या बुनियाद अहिंसा ही है, न कि हिंसा।

२ 'मैं' और 'मेरे' के तग दायरे मे बँधे रहने से ही हिंसा पैदा होती है। यह दायरा लगातार वढाते जाना ही अहिसा की साधना है।

३ सारे जीव एक-से है। वल्कि सबमें एक ही आत्मा है। ( इसलिए, कहने की ज़रूरत नही कि, सभी आदमी वरावर है। ) परन्तु चूंकि अहिसा की साधना मनुष्यो में करनी है, इसलिए, मनुष्य-समाज का विचार खास तौर पर करना चाहिए।

४ सारा मनुष्य-समाज एक ही परिवार (खानदान) है। स्त्री-पुरुष भी समान है। परन्तु उस परिवार मे देश, राज्य, वश, रग, वर्ण (धन्धा), जाति, धर्म, शिक्षा, पैसा, भाषा, लिपि वगैरा के भेदो के सबब से जुदी-जुदी टोलियां बन गयी है। इन्ही भेदो (फर्को) की वजह से व्यक्तियो और क़ौमो मे भी विशेषताएँ या खासियते पैदा हो जाती है।

५ इन फर्को या खासियतो को टालना या नज़रअदाज़ करना मुमकिन नही है। लेकिन उनपर घमण्ड या दुरभिमान करना ठीक नही है। ये फ़र्क और खासियतें जिस हदतक समूचे मानव-परिवार की भलाई

और सुख बढाने मे मदद पहुँचाते है, उसी हदतक उनकी हिफाजत करनी चाहिए और उन्हे बढाना चाहिए। अपनी इस तरह की विशेषताएँ मानव-परिवार की सेवा मे लगा देना और, अगर वे मनुष्यो की किसी भी जमात को तकलीफ देनेवाली हो तो, खुशी से उन्हे छोड देना अहिसा की साधना है। सभी फर्कों और खासियतो को बिल्कुल मिटाकर सारी मनुष्य-जाति को किसी एक ही ढाँचे मे ढालने की कोशिश बेकार है। और न वह बिना हिसा के हो ही सकती है।

६ भेद और विशेषताओ की बदौलत दूसरो के प्रति हमारे कुछ कर्त्तव्य उत्पन्न हो जाते हैं, न कि अधिकार या घमण्ड। इसीमें से सर्व-धर्म-समभाव, अस्पृश्यता-निवारण, ( भोजनादि व्यवहारो मे ) एक पगत आदि आचार अहिंसा की साधना मे लाजिमी तौर पर पैदा हो जाते है।

७ मानव-परिवार के हरएक व्यक्ति के सुख और भलाई के लिए यह जरूरी है कि मानव-व्यवहार मे से हिंसा बिलकुल मिटादी जाये।

८ एक जमात जब हिंसा करती है, तब उसका बदला लेने या उससे अपना बचाव करने के लिए हिंसा करने की प्रेरणा दूसरे पक्ष के दिल मे उठती है। इस प्रकार हिंसा के जरिये हिंसा का निपटारा करने की वृत्ति ने मानव-कुटुम्ब मे घर कर लिया है।

९ परन्तु इस रीति से हिंसा बद नही होती और न अन्त मे दोनो जमातो मे न्याय का सबध (ताल्लुक) ही कायम होता है। नतीजा यह होता है कि, कुल मिलाकर, हिंसा करनेवाले पक्ष अपने को, अपने बाल-बच्चो और सारे मानव-परिवार को नुकसान पहुँचाते है।

१० इसलिए अन्याय ( नाइन्साफी ) या बुरा काम चाहे कितना ही जबर्दस्त क्यो न हो, उसके खिलाफ हिंसा से काम हरगिज नही लेना

चाहिए। हिंसा के तरीके आजमाने की वृत्ति को दबाने से ही अहिंसा की साधना हो सकती है।

११ अहिंसा मे जीवन का उचित धारण-पोषण और विकास करने की शक्ति भरी हुई है और होनी ही चाहिए। इसलिए जिन अन्यायो या बुरे कामो के खिलाफ हिंसक उपाय काम मे लाने को जी चाहता है, उनके अहिंसक इलाज भी होने ही चाहिएँ। जो सच्चे दिल से अहिंसा की साधना करेगा, वही उन्हे खोज सकेगा।

१२ जीवन का हरएक व्यवहार अहिंसा के द्वारा चल ही सकना चाहिए। अमुक क्षेत्र मे अहिंसा काम ही नही देगी, यह अश्रद्धा हमें अपने दिल से निकाल देनी चाहिए और समाज मे से भी उसे मिटाने की कोशिश करनी चाहिए। जबतक अन्याय मिट नही जाता, तबतक अहिंसा की साधना अधूरी ही माननी चाहिए।

१३ परन्तु इसके लिए हमे सभ्यता या तहज़ीब के बारे में अपनी कई मौजूदा धारणाओ (ख़यालो) मे फर्क करना होगा।

अबतक अहिंसा की जितनी साधना हुई है, उसके अनुसार नीचे लिखे सिद्धान्त (उसूल) अहिंसा के अंग (जुज़) माने जा सकते है --

१४ भोग-विलास और ऐश-आराम की इच्छाओ का हिंसा से सीधा संबध है। इससे उलटा, सादगी, संयम, तितिक्षा (तकलीफ बर्दाश्त करने की ताकत) और शारीरिक श्रम अहिंसा के अनुकूल (मुआफिक) है।

१५ बहुत बडी और जबरदस्त तजवीजें और आँखो को चौंधियाने-वाला अमन-चैन तथा ऐश-आराम का मसाला जुटा देनेवाली सभ्यता (तहज़ीब) हिंसा के बिना न तो कायम हो सकती है और न टिक ही सकती है। इन दिखावो या रूपों में संस्कृति का दर्शन करना ही गलत है।

१६ सच्ची संस्कृति की बदौलत मानव-परिवार के हर शख्श का

जीवन सादा, सयमी, मजबूत, मेहनती और साथ-साथ नीरोग, निडर, स्वाभिमानी और मीठा होना चाहिए। यही सर्वोदय (सभी की भलाई) की सस्कृति है। ऐसी सस्कृति का कायम होना अहिंसा के द्वारा ही मुमकिन है।

१७ अहिंसक सस्कृति का अभिप्राय (मकसद) अव्यवस्था, अराजकता या एक-दूसरे से अलग-अलग रहनेवाले जुदे-जुदे गिरोह बनाना नही है। वरन् सारे प्राणियो से—यहाँ तक कि जानवरो से भी—एकता करना है। लेकिन इतना काफी नही है कि हम अपने मोटे और बडे-बडे कामो में ही इस एकता का खयाल करे। वरन् छोटे-से-छोटे जीवो को भी जिन्दगी की सहूलियते देने मे हमारा सिद्धान्त प्रकट होना चाहिए। इस ध्येय को निगाह में रखते हुए समय-समय पर केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण (सेण्ट्रलाइजेशन और डी-सेण्ट्रलाइजेशन) तथा शक्ति-यन्त्र और शरीर-यन्त्र (मशीन-पावर और मैन-पावर) की मर्यादा परिस्थिति के अनुसार खोजनी और ठहरानी चाहिए।

१८ अहिंसा की साधना की सफलता के लिए बहुत-से लोगो के एक सघ का होना लाजिमी नही है। हरएक आदमी के लिए यह जरूरी है कि वह अपने जीवन में उसका अलग प्रयोग करे। उसे खासकर अपने बर्ताव से लोगो को अहिंसा की तरफ खीचना चाहिए। मगर इसका यह मतलब नही है कि अहिंसा का सेवक लोगो के सहयोग की पर्वाह ही न करे, या कोई सघ बनाना गलत ही समझे, या उसका महत्त्व ही न पहचान सके।

१९ सत्याग्रही के लिए अहिंसा परमधर्म ही नही, बल्कि स्वधर्म भी है। इसलिए सुख-दुख, नफा-नुकसान, हार-जीत या मौत भी आ पडे, तो भी उसे अगीकार करने मे डिगना नही चाहिए। ईश्वर, आत्मा या विश्व के तत्त्व का जो ज्ञान तथा अभय, सेवा-वृत्ति, आत्मसम्मान

( खुद्दारी ) आदि जो गुण, और प्रार्थना, यम-नियम, प्रेम वगैरा जो जीवन-चर्याएँ इस प्रकार की निष्ठा ( एतकाद ) पैदा करे--उन सबका नाम ईश्वरोपासना और श्रद्धा है ।

२

## अपेक्षित आचार

१ ऊपर कहे हुए आदर्शों और सिद्धान्तो की सफलता के लिए जीवन मे जो कुछ परिवर्तन करने की जरूरत महसूस हो और उसके लिए जो कुछ कुरबानी करनी पडे, उस फेर-बदल और कुरबानी के लिए अहिंसा के साधक को हमेशा तैयार रहना चाहिए ।

२ अहिंसा के अमल की शुरूआत सबसे पहले उसे अपने व्यक्तिगत जीवन से ही करनी होगी । इसलिए उसके अपने रिश्तेदारो, साथियो, पडोसियो और अगल-बगल के समाजो से उसका बर्ताव अहिंसामय ही रहना चाहिए । उन सबसे उसका बर्ताव प्रेम का ही होना चाहिए । और मतभेद होने पर या उनके किसी अन्याय या बुरे काम का मुका-बला करने का मौका आने पर उसे अहिंसा से ही काम लेना चाहिए । बल्कि किसी भी साधक को अपने शरीर, धन या इज्ज़त की हिफाज़त के लिए या अपने साथ किये गये अन्याय को दूर करने के लिए दीवानी या फौजदारी अदालतो या पुलिस की मदद नही लेनी चाहिए ।

३ उसे अपनी या अपनी कौम की जान, मिलकियत या इज्जत बचाने के लिए अथवा लडाई-झगडो को दबा देने के लिए हिंसक उपाय काम में लाने का विचार तक नही रखना चाहिए । बल्कि अहिंसा के जरिये ही इन मसलो को हल करने का रास्ता खोजना चाहिए और जरूरत होने पर मौत या दूसरी तरह की आफतो को जोखिम भी उठानी चाहिए ।

४ व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन मे जो हिंसा होती है या जिसके होने का अन्देशा रहता है, ऐसी हरएक हिंसा का असली सबब खोजने की वह बराबर कोशिश करता रहेगा। हिंसा के रास्ते जानेवाले या जाने का इरादा करनेवाले पक्ष मे जो सचाई होगी, उसे वह खुद कबूल कर, समाज मे कराने की तथा उस पक्ष की शिकायत दूर कराने की कोशिश करेगा। इस तरह समाज को समझाने मे अगर वह कामयाब न हुआ, तो हिंसा करने जानेवाले पक्ष से अहिंसक उपाय काम मे लाने की प्रार्थना करेगा। अगर फिर भी कामयाबी न हुई, तो दोनो पक्षो के खिलाफ मुनासिब ढग से सत्याग्रह करने का तरीका खोजेगा।

५. लोगो पर जब कोई आफत आ पड़े, तो खुद जोखिम उठाकर भी वह आफत मे पडे हुए लोगो की मदद करने के लिए दौडेगा।

६ इस बात के बाहरी लक्षण के रूप मे कि वह इन सब बातो को समझता है, साधक नीचे लिखे नियमो का पालन करता रहेगा —

(क) उसे अस्पृश्यता, ऊँच-नीच का खयाल और पंक्तिभेद को बिल्कुल छोड देना चाहिए।

(ख) जाति, प्रान्त, सम्प्रदाय (फिरका), भाषा आदि सभी तरह के सँकरे दुरभिमानो से उसे बिलकुल बरी रहना चाहिए।

(ग) उसके दिल मे सर्व-धर्म-समभाव सहज होना चाहिए।

(घ) स्त्री-पुरुष-व्यवहार और पैसो के मामले मे उसका चरित्र शुद्ध होना चाहिए।

(च) उसे नियम मे कातना चाहिए, खादीमय होना चाहिए और देहाती दस्तकारियो को प्रोत्साहन देना चाहिए।

(छ) सार्वजनिक सेवा मे और खासकर रचनात्मक कामो मे खुद मेहनत और त्याग करके नियमित-रूप से हाथ बँटाना चाहिए।

(ज) उसे सार्वजनिक संस्थाओं में अधिकार की इच्छा छू तक नही जानी चाहिए। चढा-ऊपरी या खुशामद आदि से अधिकार प्राप्त करने की कोशिश तो वह हरगिज नही करेगा और सत्य और अहिंसा के वास्ते चाहे जितनी महत्त्व की जगह छोड देने को तैयार रहेगा।

जुलाई, १९४१

: २ :

# व्यवहार्य अहिंसा

## १

## प्रस्तावना

हिंसा और अहिंसा का विवाद अब केवल बौद्धिक चर्चा का ही विषय नही रहा, बल्कि यह विषय आज हमारे लिए इतने तात्कालिक और व्यावहारिक महत्त्व का होगया है कि जितना शायद आज तक कभी नही हुआ था।

गाधीजी ने जबसे 'सत्याग्रह' के नाम से विख्यात अपनी प्रतिकार-पद्धति का प्रचार किया और उसके सिलसिले में इस अहिंसा शब्द को राजनीति के क्षेत्र मे दाखिल किया, तबसे इस प्राचीन शब्द में एक नया अकुर निकला है। तीस से अधिक वर्षों से गाधीजी अपने लेखो और प्रत्यक्ष प्रयोगो द्वारा उसका अर्थ स्पष्ट करने मे अपनी शक्ति लगा रहे हैं। फिर भी, हममे से कई लोगो का यह विचार है कि यह विषय या तो इतना बारीक है कि वह मामूली आदमी की समझ से परे है या फिर उसका अमल करना हमारी ताकत से बाहर है।

दूसरी तरफ, हिंसा को हम सब समझ सकते हैं। थोडे में कहे तो, नये अधिकार प्राप्त करने या पुराने हको की हिफाजत करने के लिए हमारी स्वार्थ-बुद्धि हमे जो-जो भले-बुरे उपाय सुझा दे, वे सब हिंसा के क्षेत्र में आ जाते हैं। हमें रात दिन अपने चारो तरफ उसका अत्यन्त भयकर और पकड मे ही न आ सके इतने सूक्ष्म रूपो में भी अनुभव होता रहता है। आज दो वर्षों से यूरोप जोरो से उसके प्रभाव में आया है और उससे दुनिया की—या कम-से-कम हमारी—स्थिति

इतनी गम्भीर हो गयी है कि हमें अपने जीवन की रक्षा के लिए हिंसा और अहिंसा के बीच कुछ-न-कुछ निर्णय करके इस या उस रीति से अपने समाज को तैयार करना ही चाहिए।

परन्तु जबतक हमें हिंसा और अहिंसा की शक्तियों और मर्यादाओं की स्पष्ट कल्पना न हो, तबतक यह निर्णय बुद्धियुक्त नहीं हो सकेगा। इसलिए कुछ मेहनत करके भी दोनों को समझने की कोशिश करना उचित है। इन लेखों में मैंने इस विषय का अपने लिए विचार करने का प्रयत्न किया है। मुझे आशा है कि उससे पाठकों को भी स्वयं विचार करने में मदद मिलेगी।

यह विचार करने में मैंने यह मान लिया है कि जब जीने और मरने का सवाल सामने होता है, तब लाखों लोग अहिंसा की केवल नैतिक श्रेष्ठता के कायल नहीं रह सकते। कारण कि जब सामने संकट मुँह फाड़े खड़ा हो, तब बहुतेरे लोगों का नैतिक सिद्धान्त डावाँडोल हो जाता है, और उनका धैर्य तथा मनोबल काफूर हो जाता है।

परन्तु संयोगवश १९३९ के सितम्बर से यूरोप में कुछ ऐसी घटनाएँ हुई हैं कि जिनके कारण हिंसा-वादियों का भी हिंसा पर से विश्वास डगमगाने लगा है। पारसाल समाचार-पत्रों को दिये हुए एक वक्तव्य में प्रकट हुए पण्डित जवाहरलाल नेहरू के नीचे लिखे उद्‌गार सभी विचारशील लोगों की मनोदशा व्यक्त करते हैं —

"· · इस लड़ाई और उसके पहले की घटनाओं ने मुझे हिंसा की व्यर्थता जैसी साफ दिखा दी है, वैसी उससे पहले कभी नहीं दिखायी थी। हिंदुस्तान की आज की हालत में किसी बलवान् राज्य से हिंसात्मक साधनों द्वारा हिन्दुस्तान की रक्षा करने की बात तो बिलकुल फिजूल ही मालूम होती है। कम-से-कम मौजूदा लड़ाई में तो फलोत्पादक रीति से वैसा

करना नामुमकिन है।"[१]

मानस-शास्त्र का यह नियम है कि एक शक्तिशाली वस्तु भी जिसका उसपर से विश्वास उठ गया हो उसके हाथ मे शक्तिदायिनी नही हो सकती। जैसा कि वॉन दर गॉल्ज ने कहा है, "शत्रु की सेना का नाश करने की बात इतना महत्त्व नही रखती जितना कि उसकी हिम्मत तोडने की बात रखती है। अगर दुश्मन के दिल मे तुम यह बात जमा सको कि वह हार रहा है, तो तुम्हारी जीत निश्चित है।"[२]

सन्त तुकाराम ने एक अभग मे डरपोक सिपाही की मनोदशा का वर्णन किया है —

"एक हाथ मे ढाल और दूसरे मे तलवार है। दोनो हाथ उलझे हुए है। अब मै लडाई कैसे करूँ? बदन पर बख्तर और सिर पर टोप तथा कमर मे पट्टा लगा हुआ है। यह भी तो मेरी मौत का ही दूसरा निमित्त पैदा हुआ है। तिसपर, इन्होने मुझे घोडे पर बिठा दिया है। अब मै दौडूँ और भागूँ भी कैसे? इस प्रकार सारे उपाय मौजूद होते हुए भी यह उन्हे अपाय समझता है और कहता है कि क्या करूँ!"

तात्पर्य यह कि जिस शस्त्र पर से हमारा आत्म-विश्वास उठ गया हो, उसका हम सफल प्रयोग नही कर सकते। इसलिए केवल अपने स्वार्थ की खातिर भी हमारे लिए अहिसा के व्यावहारिक अगो को ठीक तरह समझ लेना जरूरी है।

'क्या हम अहिंसा-शक्ति का इस प्रकार विकास कर सकते है, कि जिससे हम अपने राष्ट्रीय स्वाभिमान, स्वतन्त्रता और जान-माल की ठीक-ठीक रक्षा करते हुए अपना जीवननिर्वाह कर सकने की बुद्धियुक्त

१. 'बाम्बे क्रानिकल' ता० २३ जून, १९४०।
२. रिचर्ड ग्रेग 'पॉवर ऑव नॉन-वायोलॅन्स'।

आशा कर सके ?''

इस सवाल का विचार करना इस लेखमाला का उद्देश्य है।

## २

## शुद्ध अहिंसा और व्यवहार्य अहिंसा

जैसा कि मै ऊपर कह चुका हूँ, हिंसा को हम सब समझ सकते है। जैसे कि द्वेष, बदला, वैर, लड़ाई, क्रूरता, पशुता (हैवानियत), दगा, जुल्म, बलात्कार, अत्याचार, शोषण वगैरा तरह-तरह की बुराइयो में हिंसा है। इसी तरह हिंसा के ठीक विपरीत शुद्ध अहिंसा के गुण को समझना भी मुश्किल नही है। जैसे कि प्रेम, क्षमा, मैत्री, शान्ति, दया, सभ्यता, सरलता, सेवा, रक्षा, दान, उदारता आदि सब प्रकार की भलाई शुद्ध अहिंसा है। यदि एक मनुष्य चाहे तो उसके लिए शुद्ध अहिंसक अर्थात् परोपकारी, उदार, नि स्वार्थ होना असम्भव नही है।

परन्तु साफ है कि यह स्वभाव जबरदस्ती से नहीं आ सकता। मनुष्य उसे अपनी राजी-खुशी से ही प्रकट कर सकता है। शुद्ध अहिंसा दिखाना और अपने अधिकारो का दावा भी पेश करना—ये दोनो बातें एक साथ नही हो सकती। मगर शुद्ध अहिंसक होते हुए भी दुष्कर्म से प्रेम नही किया जा सकता। उसकी घृणा तो रहेगी ही। अब गाधीजी जिस अहिंसा को समझाते है, उसमें हमारे अधिकार नष्ट करने-वाले की हिंसा किये बिना अपने अधिकारो का दावा पेश करने की एक बीच की पद्धति है। शुद्ध अहिंसा और इस अहिंसा के इस भेद को समझ लेना जरूरी है। इसलिए मैने इस दूसरी चीज़ को व्यवहार्य (व्यवहार में आने योग्य) अहिंसा का नाम दिया है। देश के राजनैतिक और सामाजिक प्रश्नो के लिए इस प्रकार की व्यवहार्य अहिंसा का क्या अर्थ है, उसकी क्या शर्ते है और कितनी शक्ति है, उसके जरिये हमारे मिटे हुए अधिकार

हमे फिर से कैसे प्राप्त होगे और प्राप्त अधिकारो की रक्षा किस प्रकार होगी—इसकी शोध अगर हम कर सके, तो काफी है।

क्षणभर के लिए मै 'शुद्ध अहिसा' की जगह 'अति-भलाई' और 'हिंसा' की जगह 'बुराई' शब्द लाऊँगा। थोडा-सा विचार करने से मालूम होगा कि मनुष्य की ऐसी बीच की स्थिति हो सकती है, जहाँ न तो वह अति-भला होगा और न बुरा ही। अति-भलाई का उद्भव नि स्वार्थता, दूसरे के भले के लिए खुद कष्टसहन करने की वृत्ति मे से होता है। सस्कृत में उसे 'परार्थ' कहते है। परन्तु हमेशा यह नही कहा जा सकता कि एक मनुष्य परार्थ श्रम नही करता, इसलिए वह बुरा ही है। बुराई के बिना भी स्वार्थवृत्ति हो सकती है। जैसे मै अपना खेत या उधार दी हुई रकम वापस पाने की इच्छा करूँ, तो मै अति-भला होने के श्रेय का हकदार नही हो सकता, परन्तु यदि कोई मुझपर बुरा होने का आक्षेप लगाये तो, उसे मै स्वीकार नही करूँगा और अपनी चीज वापस पाने की इच्छा मे जो स्वार्थ-वृत्ति है, उसे स्वीकार करने मे शर्माऊँगा भी नही, बल्कि जरूरत होने पर यह भी कहूँगा कि मेरी यह स्वार्थ-वृत्ति न्याय्य और उचित है।

मनुष्य-मनुष्य के बीच टण्टा एक तरफ अति-भलाई और दूसरी तरफ बुराई के बीच नही होता, वरन् एक तरफ न्याय्य और उचित स्वार्थ-वृत्ति और दूसरी तरफ से अति-बुराई के बीच होता है। इस बुराई मे खुल्लम-खुल्ला अन्यायी अथवा न्याय का जामा पहनी हुई स्वार्थ-वृत्ति होती है। अर्थात् न्यायी स्वार्थ और अन्यायी अथवा न्याया-भासी स्वार्थ का कलह होता है। और हमारी खोज का विषय यह है कि बुराई के साधनो का प्रयोग किये बिना अन्यायी स्वार्थो का मुका-बला करके हम अपने न्यायी स्वार्थ किस प्रकार सिद्ध कर सकते है ?

इसकी जो रीति होगी वही व्यवहार्य अहिंसा होगी ।

इससे मालूम होगा कि व्यवहार्य अहिंसा मे हिंसात्मक उपाय शामिल नही हो सकते, अलबत्ता शुद्ध अहिंसा की वृत्तियाँ हो सकती है। अथवा यो कह लीजिए कि हर प्रकार की स्वार्थ-वृत्ति मे बुराई का होना ज़रूरी नही है और भलाई के अश का उससे विरोध नही है।

इस तरह व्यवहार्य अहिंसा की व्याख्या नीचे लिखे अनुसार की जा सकती है —

**बुराई से रहित और भलाई के अश से युक्त न्याय्य स्वार्थ-वृत्ति व्यवहार्य अहिंसा है।**

यह आदर्श या शुद्ध अहिंसा नही है। वह तो अति-भलाई का ही दूसरा नाम है। जिस मनुष्य को अपने अधिकारो की तीव्र वासना हो, और उन्हे प्राप्त करने की उत्सुकता हो, वह अति-भलाई नही कर सकता। परन्तु विरोध करते हुए भी वह न्यायी और अहिंसक रह सकता है। विरोध का शमन होने पर उदारता भी दिखा सकता है। विरोध के चालू रहने तक उसकी भलाई की वृत्ति कुछ लुप्त हुई-सी मालूम होगी। परन्तु ऊपर की व्याख्या के अनुसार वह हृदय में तो रहेगी ही।

अब देखना यह है कि एक बलवान शक्ति के रूप मे क्या ऐसी व्यवहार्य अहिंसा का सगठन सम्भव है? और अगर सम्भव है, तो उसकी मर्यादा और पद्धति कौन-सी हो सकती है?

## ३

## साधारण आदमी

इस विषय का और आगे विचार करने के पहले कुछ मूलभूत धारणाएँ प्रस्तुत करना आवश्यक है। क्योकि, अगर इनके विषय में ही मतभेद हो, तो बाकी के विचार को स्वीकार होने में सन्देह रहेगा। मनुष्य-

स्वभाव को जाननेवाले अधिकांश लोग मेरे मन्तव्यों से सहमत होंगे, ऐसा मानकर मैं अपने विचार रखता हूँ।

मेरी राय में मनुष्य-समाज का बहुत बड़ा हिस्सा साधारण रीति से हिंसा और बुराई से घृणा करता है। वह एक हद तक भलाई करना पसन्द करता है, और हमेशा उसके प्रति आदर रखता है। जो प्रजाएँ खेती-बाड़ी और लड़ाई से संबंध न रखनेवाले उद्योग-धन्धों तथा व्यापार में लगी हुई है, उनमें यह बहुमति अधिक मात्रा में होती है। जो प्रजाएँ खानाबदोश और लुटेरों की जैसी वृत्ति की है और धन्धों तथा शस्त्रों के उद्योगों पर अपना जीवन-निर्वाह करती है, उनमें इस बहुमति की मात्रा कुछ कम होती है।

'मनुष्य-समाज का बहुत बड़ा हिस्सा हिंसा से घृणा करता है,' यह कहने से मेरा आशय यह नहीं है कि ये लोग हिंसक आचरण कर ही नहीं सकते, अथवा हिंसक नेता के नेतृत्व में उन्हें हिंसक कार्यों के लिए संगठित करना असंभव है। मैं यह भी नहीं कहना चाहता कि वे कभी स्वेच्छा से तो हिंसा करते ही नहीं। मेरा आशय इतना ही है कि हिंसा की तरफ उनका इतना स्वाभाविक झुकाव नहीं होता अथवा अहिंसा से उन्हें इतनी घृणा नहीं होती कि उन्हें दृढ़तापूर्वक हिंसा से दूर रहने की सलाह दी जाने पर भी वे उसे मानने में असमर्थ रहे। इतना ही नहीं, बल्कि मनुष्य-समाज के बहुत बड़े हिस्से को अगर हिंसा तथा बुराई और अहिंसा तथा भलाई में से किसी एक को स्वतन्त्रतापूर्वक पसंद करना हो, तो साधारण परिस्थिति में वह अहिंसा और भलाई को ही पसन्द करेगा।

मैं यह नहीं मानता कि यह बात केवल हिन्दुस्तान पर ही लागू होती है, किन्तु स्थायी-रूप से बसी हुई सभी देशों की प्रजाओं पर लागू

होती है । सामान्य दुनियादार आदमी को अपने घर, परिवार, मिलकियत और देश तथा देशवासियो से आसक्ति होती है । इन सबका बिलकुल त्याग करने को वह तैयार नही होता । इसीलिए उनके लिए लडने को भी आमादा ( उद्युक्त ) होजाता है । यह लडाई किस तरह की जाये, यह निश्चित करने का काम वह अपने राजा या नेता को सौंपता है । वह खुद भोला-भाला होता है और अगर उसे योग्य शिक्षा और मार्गदर्शन न मिले, तो बालक और जानवरो की तरह वह स्वय-प्रेरणा से बिना विचारे हिंसा करने को भी प्रेरित होगा । परन्तु अपने विश्वासपात्र नेता का मार्गदर्शन मानने के लिए वह हमेशा तैयार रहता है और बाबर, शिवाजी या हिटलर जैसे अथवा बुद्ध और गाधी जैसे, दोनो प्रकार के नेताओ का एक ही से उत्साह और सचाई के साथ अनुसरण करता है ।

परन्तु प्रत्येक युग और समाज मे कुछ असाधारण मनुष्य उत्पन्न होते रहते है । उनमे या तो असाधारण बुराई होती है अथवा असाधारण भलाई । भला व्यक्ति सिर्फ बहुत भला ही नही होता वरन् उसे अति भलाई मे आसक्ति हो जाती है, और उसी तरह बुरे व्यक्ति को भी बुराई का चस्का पड जाता है । इसके साथ-साथ इन दोनो प्रकार के व्यक्तियो में असाधारण बुद्धि और अपनी बाते लोगो के गले उतारने की अद्भुत शक्ति भी होती है । भलाई का अवतार मनुष्य की सात्विक शक्तियो को प्रोत्साहित करता है तथा दूसरा उसकी स्वार्थ-वृत्तियो को उकसाता है । कुछ लोग सात्विकता की तरफ आसानी से झुकते है और कुछ लोग बुराई की तरफ । परन्तु बहुतेरे लोग अस्थिर वृत्ति के होते है और कभी इधर को तो कभी उधर को झुकते रहते है । ऐसे लोगों के लिए दोनो वृत्तियाँ तात्कालिक उमगो जैसी मानी जा सकती है ।

मनुष्य-स्वभाव पर दोनो मे से कोई एक भी स्थायी चिह्न

छोड जाती हुई प्रतीत नही होती। थोडी देर मे अतिबुराई की लहर की तरह अति-भलाई की लहर भी शान्त हो जाती है। अन्तर इतना ही होता है कि बुराई की अपेक्षा भलाई के युग की स्मृति विशेष अभिमान और आदर से ताजा रक्खी जाती है। तिसपर भी आश्चर्य यह है कि दोनो प्रकार के नेताओ की स्मृति जनता एक ही से आदर और पवित्रता से रखती हुई मालूम पडती है। परन्तु भलाई के युग के लिए विशेष प्रेम और आदर, तथा उसे फिर से पाने की आकांक्षा के आधार पर इतना कह सकते है कि सामान्य मनुष्य साधारण रीति से हिंसा और बुराई से घृणा करता है और अहिंसा और भलाई की तरफ उसका झुकाव होता है।

## ४

## सामुदायिक भलाई तथा हिंसा के लक्षण

अब एक कदम आगे बढे।

मनुष्यो के बहुत बडे भाग का झुकाव भलाई की तरफ होता है। इतना ही नही, उनमें उस झुकाव के कुछ विशेष लक्षण भी होते हैं। उदाहरण के लिए, जहां नेताओ ने कृत्रिम रीति से लोगो की भावनाओ को उत्तेजित न किया हो, वहाँ प्रजा प्राय पास के शत्रु की अपेक्षा दूर के शत्रु के लिए विशेष उदार वृत्ति रखती है, चाहे वास्तव मे उस दूर के विरोधी से उसे अधिक नुकसान क्यो न पहुँचता हो। और—बात चाहे कुछ विचित्र-सी भले ही हो—लोग दुर्बल और गुप्त शत्रु की अपेक्षा जबरदस्त और प्रकट शत्रु के प्रति विशेष सद्भाव रखते है। उदाहरण के लिए, बहादुर-से-बहादुर लुटेरा भी लोगो को उतना कष्ट नही दे सकेगा, जितना कष्ट और त्रास अनेक यूरोपीय देशो को नेपोलियन ने पहुँचाया था। फिर भी, जब वह हार गया तो आम जनता

को ऐसा नही लगता था कि इसे मृत्यु-दण्ड देना चाहिए। कल अगर हिटलर की भी नेपोलियन की जैसी दुर्दशा हो जाये, तो मैं समझता हूँ कि लोग उसके लिए भी ऐसा ही उदार भाव रक्खेंगे। ऐसे मौके पर विरोधी राजनैतिक नेता भी शायद इसी प्रकार का निर्णय करेंगे। परन्तु जहाँ इनके निर्णय के पीछे राजनैतिक दृष्टि हो सकती है, वहाँ लोग, राजनैतिक दृष्टि से नही, वल्कि वलवान शत्रु के लिए प्रामाणिक आदर के कारण, ऐसी ही धारणा रख सकते हैं। परन्तु यदि कही उन्ही लोगो के हाथ उनके गांव पर धावा वोलनेवाले लुटेरो के गिरोह का सरदार लग जाये, तो उसे यन्त्रणाएँ दे-देकर मार डालने मे वे न हिचकेंगे।

शान्त चित्त से विचार किया जाये, तो लुटेरो के सरदार द्वारा किया गया नुकसान या अत्याचार नेपोलियन या हिटलर के अत्याचार के मुकाबले मे विलकुल तुच्छ है। परन्तु लोक-समूह की भलाई और हिंसा में इस प्रकार का विरोध होता है। कारण यह है कि जब नेपोलियन-जैसे शत्रु मे युद्ध हो रहा हो, तब भी लोक दृष्टि में लुटेरो की अपेक्षा वह अधिक दूर का, अधिक जबरदस्त और अधिक प्रकट शत्रु प्रतीत होता है और यह वात उनके आदर का पात्र वन जाती है।

इसी कारण देश के विरोधी राजनैतिक दलो की अपेक्षा अग्रेज़ और उनके नौकर तथा मुलाज़िमो के लिए लोगो के दिल मे कम द्वेष है और विरोधी दलो मे भी स्थानीय नेताओ की अपेक्षा मुख्य नेताओ से कम द्वेष होता हैं। हालाँकि अगर वे वुद्धि से विचार करे, तो समझ सकते हैं कि उनका मुख्य विरोध तो अग्रेजो अथवा विरोधी दलो के मुख्य नेताओ से ही होना चाहिए। परन्तु मुख्य नेता की अपेक्षा स्थानीय कार्यकर्त्ता अधिक नज़दीक हैं और अग्रेज़ो की अपेक्षा राजनैतिक विरोधी

दल अधिक निकट है। इसीलिए धारणा की तीव्रता में अन्तर पड जाता है।

और फिर अधिकतर लोग खून, अत्याचार, बलात्कार, लूट-खसोट जैसी स्थूल हिंसा को जिस प्रकार समझ सकते है, उसी प्रकार वे व्यसन, विलास और शोषक अर्थ-नीति आदि के द्वारा की जानेवाली सूक्ष्म हिंसा को नही समझ सकते। इसलिए वे दूसरे प्रकार की हिंसा के प्रति क्षमा या उपेक्षा-वृत्ति रखने के अधिक आदी और इच्छुक होते है। परन्तु पहली प्रकार की हिंसा से अधिक उत्तेजित होते है। इसी कारण वे किसी खास अन्याय या कठिनाई का विरोध करने के लिए जितनी आसानी से तैयार हो जाते है उतनी आसानी से सूक्ष्म रूप मे होनेवाले अन्यायो अथवा बुद्धि-प्रयोग से ही समझ मे आनेवाले अधिकारो के लिए तैयार नही हो सकते। विदेशी राज्य से होनेवाला नुकसान इतना गुप्त है और उसमे इतनी ललचानेवाली बाते मिली हुई है कि लोग यह आसानी से जान ही नही पाते कि उस राज्य से कोई वास्तविक जीवनस्पर्शी और असहनीय हानि हो रही है। हमारे जैसे देश मे यह बात विशेष मात्रा में होती है, क्योकि हमारे देश के हरएक विजेता ने देश के प्रजाजनो से सम्बन्ध रखनेवाला कारोबार देश के आदमियो द्वारा ही हमेशा चलाया है। ऐसी बात नहीं है कि लोग स्वराज की लडाई को बुद्धि से भी न समझ सकते हो, परन्तु यह इतनी धुँधली होती है कि उसकी बदौलत उनके भीतर स्वराज के लिए तीव्र जोश उत्पन्न नही होता। इसके अतिरिक्त जनता के स्वाभाविक अहिंसक झुकाव के कारण केवल स्वदेशी सरकार की अपेक्षा स्थिर और व्यवस्थित राज्य के लिए उसे अधिक आदर होता है।

सारांश यह कि आन्तरिक राज्यक्रान्ति के लिए लोकमत हिंसक साधनो की अपेक्षा अहिंसक साधनो के पक्ष मे ही पूरी तरह होता है।

इसी कारण हिन्दुस्तान के लोगो ने चाहे अब-तब राजनैतिक अत्याचारियो और क्रान्तिकारियो की थोडी-बहुत वाह-वाही भले ही की हो, तो भी उनकी महत्त्वपूर्ण मदद नही की। मै यह नही मानता कि यह हिन्दुस्तान की ही विशेषता है। मै समझता हूँ कि किसी दूसरे देश मे भी इसी प्रकार की परिस्थिति मे ऐसा ही होगा।

## ५
## दो बुनियादी सस्कृतियाँ

लोक-समूह की अहिंसक प्रवृत्ति के विषय में मै जो कुछ कह चुका हूँ, वह मेरी समझ मे समग्र मानव-जाति के विषय मे भी सच है। वह किसी खास देश, जाति या धर्म की विशेषता नही है। मेरे नम्र मत से राजधर्म तथा शत्रुओ और गुनहगारो के प्रति जो वृत्ति दूसरे धर्म और राष्ट्र धारण करते है, उससे वैदिक धर्म का शिक्षण अथवा साधारण हिन्दू का रुख कोई विशेष भिन्न प्रकार का नही होता। दूसरे धर्मों की तरह हिन्दू राजनीति-शास्त्र के अनुसार भी दण्ड अथवा, वर्तमान परिभाषा मे कहे तो, लाठी ही राजसत्ता का चिन्ह है। महाभारत और रामायण पढने मे मेरे दिल पर जो सस्कार हुए है, वे अगर गलत न हो, तो धर्मराज अथवा राम-राज मे भी सख्ती के साथ राज-दण्ड का प्रयोग—अलबत्ता, आजकल की भाषा मे, 'कानून और व्यवस्था की रक्षा के लिए'—आवश्यक है। मै नही समझता कि यहूदी, ईसाई या इस्लाम-धर्म के शिक्षण से हिन्दू-धर्म का शिक्षण भिन्न प्रकार का है।

परन्तु इन विचारो के साथ-साथ हरएक धर्म ने एक दूसरे प्रकार की भी सस्कृति का विकास किया है। मै उसे 'सन्त-सस्कृति' कहता हूँ और पहले प्रकार की सस्कृति को, इससे अलग पहचानने के लिए, 'भद्र सस्कृति' कहता हूँ। मेरा यह आशय नही है कि भद्र सस्कृति

दुष्ट, शैतानी या हिसा-युक्त ही होती है, बल्कि यह भी मानना होगा कि दुनिया की बडी-बडी प्रजाओ की जो जगमगाती अमलदारियाँ है, व उसीकी बदौलत है। भद्र सस्कृति ने अनेक बडे-बडे कार्य और पराक्रम किये है भव्य स्मारक खडे किये है, अमर साहित्य का निर्माण किया है और विज्ञान तथा कला का विकास किया है, मनुष्य मे छिपी हुई सृजन और अभिव्यक्ति की अद्भुत और अपार शक्तियो के विकास में उसका बहुत बडा हाथ रहा है। परन्तु, जहाँ देखिए वहाँ, भद्र सस्कृति हमेशा वश, जाति, धन, सत्ता, विद्या, धर्म आदि के अभिमान पर ही ठहरी होती है और उसके साथ यह अभिमान कि हम श्रेष्ठ लोग है, हमेशा पनपता है। हिन्दू-धर्म मे या दूसरे किसी धर्म मे भी उसने हिसा का सम्पूर्ण निषेध नही किया है।

हिसा और बुराई का निषेध करने का काम तो हरएक देश की सन्त-सस्कृति ने ही किया है और हरएक देश की सन्त-सस्कृति के सस्थापक अक्सर सामान्य जनता मे से ही उत्पन्न हुए हो, तो भी वे साधारण जनता के साथ एकरूप हुए दिखायी देगे। मनुष्य-मनुष्य के बीच की उच्ची-नीची श्रेणियाँ अचल है—और रहनी चाहिएँ—यह भद्र-सस्कृति का सिद्धान्त है और ये सारी श्रेणियां नष्ट होनी चाहिएँ—यह सन्त-सस्कृति का सिद्धान्त है। उनके नाश के लिए सन्त हिसा या जबरदस्ती से काम नही लेते, बल्कि अहिसा या भलाई के साधनो का ही प्रयोग करते है।

हरएक समाज मे ये दोनो सस्कृतियां साथ-साथ ही प्रवर्तित हुई मालूम होती है। सामान्य समाज एक तरफ से भद्र सस्कृति के अधीन होकर रहता है और चुपचाप उसके पीछे जाता है और साथ-ही-साथ सन्त-सस्कृति की पूजा करता है तथा अपनी शक्ति के अनुसार उसे अपने जीवन में चरितार्थ करने की श्रद्धापूर्वक कोशिश करता है।

जब-जब सन्तो का विरोध हुआ है या उन्हे सताया गया है, तब-तब उसके लिए भद्र सस्कृति ही सर्वथा उत्तरदायी रही है। परन्तु कुछ समय के बाद भद्र सस्कृति के अभिभावक इतना विनय दिखाते है कि वे सन्तो की वाह्यत. पूजा करने मे जनता का साथ देते है।

इस सारे विवेचन का सार यही निकलता है कि सामान्य जनसमूह को आमतौर पर हिंसा और बुराई से घृणा है और भलाई की तरफ उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है तथा सन्त-सस्कृति का मुकावला करने के लिए भद्र सस्कृति के पास सिवा बल के और कोई दलील नही है।

## ६

## हिन्दुस्तान की विशेष परिस्थिति

उपरिनिर्दिष्ट सामान्य मन्तव्यो मे हिन्दुस्तान की परिस्थिति की कुछ खास वाते और जोड देनी चाहिएँ —

(१) यह सच है कि हिन्दू-धर्म की भी भद्र सस्कृति में हिंसा और लडाई का निषेध नही है। परन्तु हिन्दू-समाज का चार बडे-बडे वर्गो मे विभाजन एक विशेष वस्तु है। उसके कारण हिंसा और लडाई हिन्दू-समाज के एक बहुत छोटे अग का वश-परम्परागत धन्धा बन गया। अग्रेज-सरकार ने हिन्दुस्तान की जो हालत कर दी है, उसी प्रकार की घटना हिन्दू-काल में हुई होती, तो ऐसा कहा जा सकता कि हिन्दू-समाज के शासन-कर्ताओ ने शताब्दियो पहले सिपाहीगिरी को एक ही वर्ण का परम्परागत धन्धा करार देकर हिन्दुओ के वडे हिस्से को नि शस्त्र बना दिया था। यद्यपि वास्तव में वैसा नही हुआ है, तथापि दोनो का परिणाम एक ही है। वर्ण-व्यवस्था ने जो बात अशत और अधूरे रूप मे की, वही अग्रेज-सरकार ने पूरी और पक्की कर दी है। उसने सारी की सारी प्रजा को नि शस्त्र कर दिया है।

नि शस्त्रीकरण की इस प्रवृत्ति का हिन्दू-धर्म की सन्त-संस्कृति ने कभी-कभी मूकभाव से ही क्यो न हो, स्वागत ही किया है। आजतक बौद्ध, जैन, वैष्णव, लिंगायत और दूसरे सन्तो द्वारा स्थापित बहुत से सम्प्रदायो का हिन्दू-धर्म मे निर्माण हुआ है। उनमे से कुछ एक नि.शेष हो गये, और कुछ अबतक विद्यमान है। उन सबका उद्देश्य अपनी अपनी बुद्धि और शक्ति के अनुसार समानता, अहिंसा और न्याय के सिद्धान्तो पर प्रस्थापित संस्कृति का प्रचार करना है। उनके उपदेशो ने सिर्फ लडाई से ही नही बल्कि दूसरे प्राणियो की हिंसा और मासाहार से भी घृणा का सस्कार पैदा किया है। हिन्दुस्तान ही एकमात्र ऐसा देश है जहाँ लाखो लोगो ने मासाहार का त्याग किया है और सैकडो आदमी साँप को भी नही मारेगे।

मतलब यह कि हिन्दुस्तान की स्थिति नीचे लिखे अनुसार है.—

समाज-व्यवस्था ने हिन्दू-समाज के बहुत बडे हिस्से को नि शस्त्र कर दिया है।

सन्त-संस्कृति ने लडनेवाली जातियो के भी कई लोगो से इच्छापूर्वक शस्त्र-त्याग कराया है। वे एक तरह के अयुद्धवादी[1] बन गये। यह परिवर्तन भी कई सदियो से होता आया है।

---

१. हमारे जैन, वैष्णव प्रभृति अहिंसा-धर्मियो को मैने जानबूझकर 'एक प्रकार के अयुद्धवादी' कहा है। उनकी अहिंसा स्वय किसी की जान न लेने अथवा दूसरे जीवो के प्राण बचाने तक ही मर्यादित है। वह जीवन के सभी क्षेत्रो में व्याप्त नहीं है। लडाई के लिए उपयोगी व्यापार या उद्योगो में भाग न लेने की या अप्रत्यक्ष रीति से भी लड़ाई में मदद न देने की हद तक वह बढी नहीं है। सैकडो क्षत्रियवर्गों ने स्वेच्छा से और विचारपूर्वक शस्त्रो को त्यागकर अहिंसक उद्योग-धन्धो को स्वीकार किया, वह बेशक अयुद्धवाद की दिशा में एक बड़ा कदम माना जा सकता है।

राज्य-व्यवस्था ने हिन्दू और अहिन्दू सारी प्रजा को करीब सौ वर्षो से लगभग निःशस्त्र कर डाला है।

देश की आर्थिक व्यवस्था ने इससे भी बडे हिस्से को, या यो कह लीजिए कि सारी आबादी के बहुत बडे हिस्से को, यह हालत कर डाली है कि उसे शस्त्रो की कोई जरूरत ही नही रही, क्योकि उनके पास ऐसी कोई निजी मिलकियत ही नही रही है, जिसे शत्रुओ या लुटेरो से बचाने की उन्हे चिन्ता रहे।

(२) हिंदुस्तान की परिस्थिति मे दूसरी खास बात यह है कि हमारा देश बहुत ही बडा है, याने रूस को छोडकर शेष यूरोप के बराबर। प्राचीन काल में उसे देश के बदले यूरोप की तरह खण्ड ही कहते थे। इसके संस्कृत नाम—भारतवर्ष, भरतखण्ड, आर्यावर्त आदि खण्ड-सूचक है। आज हम जिन्हे प्रान्त कहते है, उनकी गिनती जुदे-जुदे राष्ट्रो मे हुआ करती थी। परन्तु कुछ समय के बाद—और अब उसे भी हजारो वर्ष बीत गये है—एक ही प्रकार की संस्कृति के प्रचार के कारण वह खण्ड के बदले एक ही देश बन गया और उसमें बसनेवाले सभी लोगो की एकमात्र मातृभूमि माना जाने लगा। उनमें आपस में झगडे-टण्टे भले ही होते रहते हो, भिन्न-भिन्न भागो की उन्नति और अवनति के रंग भले ही बदलते रहते हो, जाति, धर्म, भाषा इत्यादि की गुत्थियाँ भले ही उपस्थित होती रहती हो, परन्तु तो भी भारतवासियो और विदेशियो के चित्त पर यह संस्कार पक्का जम गया है कि वह अनेक देशो का समूह नही है, बल्कि एक ही अखण्ड भौगोलिक प्रदेश है। इतना ही नही, यह संस्कार प्रकारान्तर से भी पक्का हुआ। अर्थात् विदेशी विजेताओ ने भी एक बार हिन्दुस्तान में आकर बसने के बाद थोडे ही समय के पश्चात् हिन्दुस्तान की सीमा के बाहर

के प्रदेशो पर अपना अधिकार जमाने या बनाये रखने की ज्यादा उत्सुकता नही दिखलायी। अधिक-से-अधिक अफगानिस्तान तक हिन्दुस्तान की हद मानी जाती थी। हिन्दुस्तान मे साम्राज्य स्थापित करने की अभिलाषा करनेवालो के लोभ की मर्यादा इससे आगे क्वचित् ही बढी है।

(३) तीसरी बात हिन्दुस्तान की लोक-सख्या है। हमारे देश की आबादी घनी है। यह सम्भव नही है कि साम्राज्य-लोभी देश हमारे देश मे अपना राज कायम कर अपने देशवासियो को यहाँ लाकर बसाये। हमारे देश पर सदा के लिए अपना प्रभुत्व बनाये रखने की उनकी आकाक्षा के पीछे इस देश की साधन-सामग्री और हमारी प्रजा की मेहनत से अनुचित लाभ उठाने का हेतु ही हो सकता है।

(४) चौथी बात यह है कि अगर हिन्दुस्तान युद्धवादी बन जाये, तो भी वर्तमान युद्ध के दौरान मे तो उसके लिए परिणामकारक रीति से शस्त्र-सज्ज होना असम्भव है। भविष्य मे भी वह विदेशी धन और निष्णातो की मदद से ही पारगत होने की आशा कर सकता है। लेकिन इस प्रकार तैयार होने की शर्तें इतनी कडी होने की सभावना है कि उनके बोझ के नीचे हिन्दुस्तान दब जाये और उसकी पूर्ण स्वतन्त्रता नाम मात्र की ही रह जाये। सहायता करनेवालो की नीयत हिन्दुस्तान को पैसो से खरीदने की रहेगी।

## साराश

इन सारी वस्तु-स्थिति से यह सार निकलता है कि—

(१) इच्छा या अनिच्छा से निःशस्त्रीकरण की दिशा मे हम इतने अधिक आगे बढ गये है कि अब तो हमे अपनी वर्तमान परिस्थिति मे से ही जीवन और समृद्धि का मार्ग खोजना चाहिए। जिस शस्त्र-वृद्धि

की नीति का हम संसार से त्याग कराना चाहते हैं, उसी का अनुसरण करना हमारे लिए निरर्थक होगा। हम अपनी इतनी विशालता और घनी बस्ती के बावजूद भी अगर शस्त्रास्त्रों के बिना अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा की आशा नहीं कर सकते, तो हमें सीधे-सीधे यह कबूल कर लेना चाहिए कि निःशस्त्रीकरण का आदर्श मूर्खतापूर्ण और भयावह है।

(२) इसके अलावा उपर्युक्त वस्तुस्थिति से ही प्रकट है कि हमारे अपने देशी सिपाहियों की भरपूर सहायता के बिना कोई भी आक्रमण-कारी हमारे देश के किसी भी हिस्से पर हमेशा के लिए कब्जा नहीं कर सकता।

(३) उसी प्रकार कोई भी विदेशी सत्ता रोजमर्रा के कारोबार में साधारण जनता के नित्य सहयोग के बिना एक दिन के लिए भी राज नहीं कर सकती। और

(४) कोई भी विदेशी सत्ता चाहे वह कितना भी यन्त्रीकरण क्यों न करे, हमारे देश की मजदूरी की सहायता के बिना हमारे देश की साधन-सामग्री का उपयोग नहीं कर सकती।

(५) इसलिए हिन्दुस्तान अगर असहयोग की नीति पर पूरा-पूरा अमल कर सके, तो अपनी रक्षा के लिए वह उँगली भी न उठावे, तो भी कोई विदेशी सत्ता उसपर कब्जा नहीं कर सकती।

यह किस दर्जे तक सम्भव है, इसका विचार आगे किया जायेगा। यहाँ तो इतना ही कह देना काफी है कि अगर हम पूरी तरह और सन्तोषजनक रीति से अहिंसात्मक तन्त्र का संगठन न कर सके, तो भी याद रहे कि हमारा हिंसक तन्त्र भी अत्यन्त निर्बल और हमारी अपनी दृष्टि से भयंकर रहेगा, क्योंकि अहिंसक तन्त्र की अपेक्षा हिंसक तन्त्र के लिए अत्यन्त मजबूत आन्तरिक संगठन कहीं अधिक आवश्यक है।

ऐसे संगठन के बिना जो सैनिक-आयोजन होगा, वह देश को स्वतन्त्र करने या रखने के बदले उसे भीतरी कलहों और अव्यवस्था में तथा बाहर के राज्यों के साथ षड्यन्त्रों और साजिशों में उलझाये रखने में ज्यादा व्यस्त रहेगा। पिछले हजार से अधिक वर्षों का हमारा यही अनुभव है। चीन का भी यही अनुभव है। इसलिए, जहांतक मुझे स्मरण है, स्वतन्त्र चीन के पिता डॉ० सुन-यात-सेन का कथन था कि अंग्रेजी राज के कारण चीन की अपेक्षा हिन्दुस्तान की हालत कई तरह से बेहतर है क्योंकि हिन्दुस्तान को सिर्फ एक ही विदेशी सत्ता से लड़ना है, परन्तु ( उनके जमाने में ) चीन कहने को तो स्वतन्त्र राज्य माना जाता था, लेकिन दरअसल वह अनेक विदेशी मालिकों के कब्जे में था।

७

## आक्रमण और अराजकता

हिन्दुस्तान को किसी विदेशी सत्ता द्वारा सदा के लिए जीते जाने से बचाने का अहिंसक संगठन ही एकमात्र उपाय है, यह मैंने अबतक बतलाया। अगर अहिंसा यह करने में सफल न हुई, तो हिंसा के सफल होने की आशा और भी कम है।

परन्तु यहां एक सवाल पूछा जा सकता है 'महमूद गजनवी, अहमदशाह अब्दाली या बाबर ने हिन्दुस्तान पर जिस प्रकार के आक्रमण किये, वैसे आक्रमणों से क्या अहिंसा उसे भविष्य में बचा सकेगी? अथवा शिवाजी ने जिस प्रकार सूरत को लूटा या नादिरशाह ने देहली को लूटा, उसी प्रकार कोई आक्रमणकारी थोड़े दिन के लिए बम्बई, कलकत्ते और देहली पर कब्जा कर ले और वहां के बैंकों, भण्डारों तथा गोदामों और लखानियों को लूटना शुरू कर दे, तो क्या अहिंसा से उसका प्रतिकार हो सकता है?'

इसके जवाब मे मैं कहूँगा कि सिद्धान्त की दृष्टि से यह मानना ही पड़ेगा कि सम्पूर्ण अथवा आदर्श अहिंसा मे इस प्रकार की शक्ति है। परन्तु हम यहाँ इस प्रकार की आदर्श अहिंसा का विचार नही कर रहे है, व्यवहार्य अहिंसा का ही विचार कर रहे है। इसलिए मुझे कबूल करना चाहिए कि इस प्रकार की अहिंसा मे ऐसे आक्रमणो को सपूर्ण रीति से रोकने की सम्भावना हम मानें, तो भी वह बहुत दूर की मानी जायेगी। परन्तु इतना कहा जा सकता है कि अगर हम सुव्यवस्थित, निष्ठावान और वीरतापूर्ण व्यवहार्य अहिंसा का सगठन कर सके, तो इस प्रकार की चढाई के सिलसिले मे जो कत्ल, जुल्म, सम्पत्ति का सरे-आम विध्वंस और दूसरे फौजी उपद्रव आम तौर पर हुआ करते हैं, उनके परिणाम और प्रकार कम होने का अच्छा सम्भव रहेगा। इससे कई गुना ज्यादा यह भी सम्भव है कि ऐसी अहिंसा के फल-स्वरूप आक्रमणकारियो मे से कुछ के हृदय में पश्चात्ताप और शर्म की भावना पैदा हो। और इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इस प्रकार की अहिंसक बहादुरी इतिहास में अमर कीर्ति छोड जायेगी। हिंसक प्रतिकार मे भी इससे ज्यादा आश्वासन नही मिलता। हिंसा में कुछ-न-कुछ आध्यात्मिक हानि होती ही है। वह अहिंसक वीरता में नही होती। परन्तु यदि आप यह कहे कि अहिंसा जब किसी भी प्रकार का भौतिक नुकसान न होने देने का आश्वासन दे सकेगी, तभी हम उसकी शक्ति सच्ची मानेंगे, तो मुझे कहना होगा कि हिंसक प्रतिकार में भी तो इस प्रकार का कोई आश्वासन नही दिया जा सकता। इसलिए अहिंसा पर ऐसी शर्त लगाना उचित नही है। निश्चयपूर्वक तो इतना ही कहा जा सकता है कि असफल हिंसक प्रतिकार से होनेवाली जान-माल की हानि की अपेक्षा अहिंसक प्रतिकार से होनेवाला नुकसान कभी भी कम ही रहेगा।

विदेशी के आक्रमण या चढाई का सामना अहिंसा मे जिस प्रकार किया जा सकता है उसी प्रकार किसी पडोसी देशी नरेश या लुटेरे के हमले का भी किया जा सकता है । लेकिन—चाहे सुनने मे वात कुछ विपरीत लगे तो भी—पहले की अपेक्षा यह दूसरा काम अधिक मुश्किल है । कारण कि देशी नरेश या लुटेरे की चढाई सैनिक आक्रमण के रूप की होते हुए भी वास्तव मे वह हमारी भीतरी लडाइयो अथवा गुनाहो की कोटि की ही होती है । इस प्रकार की चढाई किस दिन और किस तरफ से होगी, इसका कोई ठिकाना नही होता । यह भी नही कहा जा सकता कि उसकी चेतावनी हमे मिलेगी ही । उसमे शामिल होनेवाले लोग हमारे ही देश के होते है । इस तरह के हुल्लड का यही अर्थ है कि हमारे घर ही मे भीतरी फूट है और हमारे समाज-शरीर मे किसी रोग ने घर कर लिया है । यह रोग चाहे निरकुश स्वार्थ-वृत्ति का हो, अत्यन्त दरिद्रता का हो या किसी अन्याय-जनित वैर-वृत्ति का हो, है वह भीतरी रोग ही, वाहरी आघात नही ।

आज जो हमारी परिस्थिति है, उसे देखते हुए देशी राज्यो के आक्रमण की चर्चा करना व्यर्थ है । इतना कहना काफी है कि अगर ऐसी परिस्थिति उपस्थित हो जाये, तो विदेशियो का सामना जिन अहिंसक उपायो से किया जायेगा, उन्ही अहिंसक उपायो का और रियासती जनता अपनी रियासत मे प्रतिनिधिक राजतन्त्र प्राप्त करने के लिए जो उपाय काम मे लायेगी उन सब उपायो का प्रयोग करना होगा ।

लुटेरो और डाका डालनेवालो के प्रश्न को दूसरी रीति से हल करना पडेगा । व्यवहार्य अहिंसा मे यह नही माना गया है कि साधारण पुलिस और उसके साधारण हथियार भी नही रहेगे । इसलिए मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि पुलिस का ज्यादा प्रवध करना

पड़ेगा। साधारण चोरियों का बन्दोबस्त करने के लिए यह पर्याप्त माना जा सकता है, परन्तु बडी-बडी शस्त्रधारी टोलियो का मुकाबिला करने मे उनका ज्यादा उपयोग न होगा।

लेकिन, पुलिस के कामो मे एक दूसरे तरह के काम का भी समावेश होना चाहिए। पुलिस का असली काम यह होना चाहिए कि अपराधो को होने ही न दे। परन्तु वर्तमान प्रणाली मे पुलिस गुनाहो को रोक नही सकती, सिर्फ गुनाहगारो पर निगरानी रखती है और गुनाहो के हो जाने पर गुनहगार की तलाश करके उसे गिरफ्तार करने और सजा दिलाने की कोशिश करती है। गुनाहो को रोकने के लिए तो उनके कारणो का अध्ययन होना चाहिए और उन्हे हटाने की कोशिश होनी चाहिए 'क्या भुखमरापन या दूसरे किसी तरह का कष्ट है ? अथवा क्या कानूनी मार्ग मे अपना पुरुषार्थ प्रकट करने की सुविधा का अभाव है ? वैर है ? वास्तविक या काल्पनिक अन्याय को दूर कराने मे असफल होने के कारण निराशा है ? धार्मिक जनून है ? वंश या जाति से सम्बन्ध रखनेवाली कोई लडाई है ?'—इन सब बातो की छान-बीन करनी चाहिए।

परन्तु साधारण पुलिस के कार्यक्रम में इन बातो का स्थान नही होता। ये तो रचनात्मक कार्यक्रम की धाराएँ है। इस तरफ राजतन्त्र या गैर-सरकारी संस्थाओ ने अबतक पूरा-पूरा ध्यान नही दिया है। इसलिए अराजकता के वक्त कुछ न-कुछ दण्ड तो भुगतना ही पडेगा। धनिक लोग अपनी माल-मिल्कियत की रक्षा के लिए पठानो या लठैतो को रखने के बदले अगर रचनात्मक कार्यक्रम को उदारता से सहायता दें और अपने आसामियो, काश्तकारो, मजदूरो, नौकरो तथा गरीब लोगो के साथ उदारता का व्यवहार करे और उनके जीवन में अधिक समभाव

से दिलचस्पी लेने लगें, तो यह दण्ड उस अंश में कम हो जायेगा। भलाई का बदला तुरन्त ही भलाई के रूप में नहीं दिखायी देता। खास कर जब भलाई लाभ-हानि का हिसाब करके या भय के कारण की जाती हो, तब उसके तात्कालिक फल-स्वरूप सामनेवाला ज्यादा गुंडा भी हो सकता है। लेकिन उसका यह रुख देर तक टिक नहीं सकता। आखिर में तो न्याय-व्यवहार के फलस्वरूप प्रेममय संबंध ही कायम होते है। और व्यवहार्य अहिंसा में अपने तथा पराये लोगों के साथ न्याय-पूर्ण तथा उदार व्यवहार की ज़रूरत तो है ही।

## ८

## अहिंसक संगठन की सम्भावना और कठिनाइयाँ

अब अहिंसक संगठन की सम्भावना तथा कठिनाइयों पर विचार करें।

इस विषय में हमारे हक में एक बड़ी बात यह है कि कई युगों की आदत से हममें असहयोग का संगठन करने की लगभग जन्म-सिद्ध कुशलता आगयी है। असहयोग का विचार करते समय हम ऐसा आत्म-विश्वास महसूस करते हैं कि वह आला दर्जे की युक्ति है। हमने असह-योग के हथियार का उपयोग बहुत दफा किया है—कभी तलवार के तौर पर, तो कभी ढाल के तौर पर, कभी वैर वृत्ति से, तो कभी सत्याग्रह-वृत्ति से। बहिष्कार की कठोर-से-कठोर रीति के प्रयोग से हमने हरिजनों को कैसे कुचल डाला है, इसका उदाहरण तो आज भी हमारी आँखों के सामने मौजूद है। वह असहयोग का ही एक उग्र रूप है। हरिजनों के खिलाफ इस हथियार का उपयोग करके इतनी सदियाँ गुज़र गयी हैं कि किन गुनाहों के लिए उनपर यह शस्त्र चलाया गया था, यह भी आज हम जानते नहीं हैं। सम्भव है कि किसी कारणवश उनका कड़ा बहि-ष्कार किया गया हो और उसके फलस्वरूप उन्हें उनके आज के नीच

माने गये धन्धे ही सर्वनाश से बचने के उपाय प्रतीत हुए हो। अस्पृश्यता तो उस बहिष्कार का सौम्य-से-सौम्य रूप माना जा सकता है। अस्पृश्य व्यक्ति की छाया का भी स्पर्श न हो और वह नजर के सामने भी न आये, इस हदतक वह कहीं-कहीं पहुँचा। जिस प्रकार जाति की रूढि के उल्लघन के लिए कभी-कभी व्यक्तियो या कुटुम्बो को जाति से बाहर कर दिया जाता है, उसी प्रकार अगर यह अहिंसक वृत्ति से किया गया होता, तो जरूरत खत्म हो जाने पर हटा लिया जाता। हमारी अनेक जातियाँ, उपजातियाँ आदि असहयोग के शस्त्र के ही उचित या अनुचित प्रयोग मे से उपजी है।

मुसलमान इस देश मे विजेताओ और धर्मपरिवर्तन करानेवालो के रूप मे आये, तोभी उन्हे हिन्दुओ की असहयोग कायम करने की शक्ति सहन नही हुई। जो हिन्दू डर या लाभ के लालच के अधीन हुआ, उसे हिन्दू-समाज ने अपने रास्ते जाने दिया, परन्तु उससे सब तरह का सामाजिक बन्धन तोड दिया गया। प्रत्यक्ष हिंसा किये बिना असहयोग की मर्यादा मे रहकर जिस मात्रा मे हो सका, उस मात्रा तक खुद विजेता जातियो को भी समाज से बहिष्कृत रखा गया। राणा प्रतापसिंह और मानसिंह का दुःखपूर्ण झगडा—जिसके कारण अकबर से वर्षों लडाई ठनी—एक तरफ विधर्मी विजेता का सम्पूर्ण बहिष्कार करने की और दूसरी तरफ उससे मेल करने की वृत्तियो के कलह का उदाहरण है। मानसिंह ने अकबर के साथ विवाह-सम्बन्ध किया, इतने ही कारण के लिए जयपुर राज्य मे लडाई छेडने की राणा प्रताप की इच्छा नही थी। परन्तु मानसिंह का बहिष्कार करके उसके कृत्य के निषेध का अधिकार प्रताप को था। उस अधिकार का अमल करने का आग्रह उसने दिखलाया। आज की भाषा मे यो कह

सकते है कि यह हरएक नागरिक के अधिकार की बात है । परन्तु राजा लोग कोई नागरिक नही होते । और जब किसी बलवान साथी के खिलाफ किसी अधिकार के उपयोग करने का मौका आता है, तब झगड़ा हो ही जाता है । इसके अलावा राणा प्रताप अहिंसा का कायल नहीं था, बल्कि लडाई को क्षात्रधर्म का अग मानता था । इसलिए उनके बहिष्कार मे से रक्तपात और युद्ध पैदा हो गया तो क्या आश्चर्य है ?

परन्तु जहाँ असहयोग का हथियार सामान्य नागरिको ने बरता वहाँ वह प्रत्यक्ष रक्तपात से मुक्त रहे, इतनी मर्यादा सम्हाली । मुसलमानो और हरिजनो का एक हिस्सा अलग-अलग चुनाव और पाकिस्तान की जो नयी माँग कर रहा है, वह भारी निराशा का परिणाम है । खून खराबी किये बिना सफल असहयोग करने की हिन्दुओ मे जो सहज शक्ति है, उसके डर का यह परिणाम है । एक व्यक्ति दूसरे से अछूता बन कर रहे, ऐसी समाज-रचना की जरूरत अब नही रही है । अब तो एकत्र होने की जरूरत है । परन्तु पुराने अभिमान, घृणाएँ और सकीर्णताएँ अब भी नष्ट नही होती और इसीलिए एक-दूसरे के साथ उचित सम्बन्ध कायम करने के मार्ग खोजने मे बाधाएँ उपस्थित होती है परतु यह विषयान्तर होगा ।

यहाँ यह भी कह देना जरूरी है कि असहयोग की यह बुद्धि जनता ने इस्लाम, ईसाई या सिक्ख आदि धर्मों को अगीकार करने पर भी गँवाई नही है । हरिजनो में तो वह भरपूर है । उलटे यह भी कहा जा सकता है कि पाकिस्तान, अछूतस्तान आदि के आन्दोलन हिन्दू-समाज के अलग-अलग दल (जमाते) बनाने के स्वभाव को अपनाने के लक्षण है । अगर हिन्दूपन का यही आवश्यक लक्षण हो, तो कहना होगा कि अब ये पूरे-पूरे हिन्दू बन गये ।

नयी परिस्थिति के अनुकूल बनाने के लिए इस शस्त्र को नये प्रकार से सजाना और बरतना पड़ेगा, यह सच है। अहिंसा के अधिक संशोधित सिद्धान्तो के अनुसार उसे शुद्ध भी करना होगा। यहाँ मेरे कहने का मतलब इतना ही है कि हम इस शस्त्र से परिचित है। और उसके प्रयोग की कला हमे लगभग जन्म से ही विदित है। इसलिए आवश्यक इतना ही है कि इस नीति-शास्त्र के संशोधित सिद्धान्त उपस्थित किये जाये और उसके विधि-निषेध बतलाये जाये। ये बाते समझ में आने पर लोग अपनी स्थानीय परिस्थिति के अनुसार उसके प्रयोग की फुटकर ब्यौरे की बाते अपने आप सोच लेगे।

हमारे लिए दूसरी एक अनुकूल बात यह है कि हमारा देश कोई एक ऊजड भूखण्ड नही है, जिसमे हम विदेशी लोगो की मदद के बिना जी ही न सके। बीसवी सदी के नवीनतम ढगके बडे-बडे शहरो की सुविधाएँ और भोग-विलास हमे भले ही नसीब न हो सकें, तो भी साधारण सुविधा से रहना हमारे लि नामुमकिन नही है। हम यूरोप और अमरीका के वेग और चमक-दमक से कदम नही बढा सके, तो भी स्थिर कदम से आगे बढते रहने के लिए हमारे देश में काफी कुदरती साधन और मजदूरो तथा बुद्धि का बल है।

यही नही, अगर समभाव और मित्र-भाव से मांग की जाये, तो आज भी अपने देश को मर्यादित वेग से आगे बढाने में हम दूसरे देशो की प्रजाओ की मदद कर सकते है। लेकिन वे अपने बडप्पन की डीग मारते हुए, या हिंसा की धमकी देते हुए, मदद पा नही सकते। इसके लिए ऐसा बराबरी का सम्बन्ध होना चाहिए कि एक प्रजा दूसरी प्रजा का सहयोग दोनो के हित के लिए चाहे। अहिंसात्मक असहयोग का अर्थ दूसरी प्रजाओ से अलग रहना ही

परस्पर अविश्वास और सत्ता तथा नौकरी का लोभ भी है। तब अहिंसक संगठन का प्रयत्न भला निर्विघ्न कैसे हो सकता है ?

परन्तु ये पक्ष तथा वर्ग तो आखिर हिंसा पर विश्वास करनेवाले है। इसलिए वे अगर अहिंसक रचना करनेवालो के प्रयत्न को निष्फल करना चाहे तो कोई आश्चर्य नही है। उनकी तो हमें पहले से ही गिनती कर लेनी चाहिए। परन्तु इससे भी बढकर विघ्न उन लोगो की ओर से होता है, जो खुद तो हथियार उठाते नही है मगर अपने निजी या अपने पक्ष के लाभ के लिए हिंसावादियो से सहयोग करते है और अहिंसा की शर्ते पालन नही करते।

उसी प्रकार अहिंसा मे विश्वास करते हुए भी जिन लोगो की अपना अलग अड्डा करने की वृत्ति है, वे भी कई गुत्थियाँ उपस्थित करते है। इनकी असहयोग और स्वतन्त्र विचार करने की वृत्ति इतनी अधिक तीव्र होती है कि वे अपने जैसे उद्देश्यो को माननेवाले लोगो के साथ भी पूरा-पूरा सहयोग नही कर सकते। परन्तु हिंसक समाज की तरह अहिंसक समाज के लिए भी यह जरूरी है कि एक तरफ के लोग एक दिल से ही काम करे। भूलें तो होगी। लेकिन भूलो का नतीजा इतना ही होगा कि मेहनत थोडी ज्यादा करनी पडेगी और सफलता मे थोडी ढिलाई होगी। परन्तु दगाबाजी, साजिशे, बुद्धिभेद और झगडे-टण्टे तो सफलता को असम्भव ही कर देते है और कभी-कभी तो जीत को भी हार मे बदल देते है।

देश के हम दो भाग माने एक वे जो हिंसा की नीव पर देश का संगठन करना चाहते है, और दूसरे वे जो कि सिद्धान्तरूप से अथवा एक अनिवार्य संयोग के रूप में अहिंसा को स्वीकार कर उसकी बुनियाद पर देश का संगठन करना चाहते है। दोनो के अपने-अपने खास नियम, निष्ठाएँ और कार्यक्रम होंगे। उनके अमल मे जितना कच्चापन रहेगा,

उतने अश मे मुसीबतो और हार की सम्भावना अधिक होगी ।

जब किसी बलवान विपक्षी का सामना करने के लिए सगठित होना हो, तब कुछ कडी शर्ते लगाने की, कुछ त्याग करने की, कुछ व्यक्तिगत उद्देश्यो को गौण मानने की और कुछ स्वतन्त्रता छोडने की भी जरूरत होती है । हिंसक सगठन मे इन बातो मे आवश्यक आज्ञापालन कराने के लिए बलात्कार ( दण्ड, सजा) करने का अधिकार दिया जाता है । अहिंसा मे अधिक-से-अधिक इतना ही दण्ड दिया जा सकता है कि आज्ञा न माननेवाले को सस्था में से निकाल दिया जाये । लेकिन वैसा करने से मुश्किले दूर नही होती । कांग्रेस ने जहाँ-जहाँ यह कार्रवाई की, वहां जो कुछ हुआ उस से यह भी कहा जा सकता है कि इससे मुश्किलें बढ भी सकती है । इसलिए अगर यह उपाय करना ही पडे, तो याद रखना चाहिए कि वह अपने ही शरीर का एक अवयव काटने के समान है । और उस अश मे सस्था के लिए वह एक आपत्ति का ही प्रसग है । इसलिए आज्ञाभग करनेवाले की बुद्धि और उच्च भावनाओ को जाग्रत करने के सब प्रयत्न निष्फल हो और उसकी उपेक्षा करने में जोखिम हो, तभी इस उपाय से काम लेना चाहिए । इसलिए जो लोग अहिंसात्मक प्रतिकार सफल करना चाहते है, उन्हे सभी महत्त्व की राष्ट्रीय बातो मे खुद पसन्द किये हुए नेताओ की इस छोटी-सी मण्डली की आज्ञा मानने को तैयार रहना चाहिए । लोगो को एक ही वस्तु के विषय मे पूरा निश्चय कर लेना चाहिए । वह यह कि नेता व्यवहार-कुशल,चारित्र्यवान् और प्रामाणिक है और उनकी देशभक्ति शकातीत है ।

ऐसी आज्ञाधीनता आवश्यक ही है । परन्तु उसे चरितार्थ करना बहुत मुश्किल भी है । हममे स्वभाव से ही जो असहयोग-वृत्ति है, उसकी बदौलत खुल्लमखुल्ला आज्ञाभग न करते हुए भी आडे-टेढे

तरीके से विघ्न करने की नीति काम मे लायी जा सकती है। उनकी आज्ञा के खिलाफ आवाज नही उठायी जायेगी, आज्ञा पालने से इनकार नही किया जायेगा, अहिंसा के नेताओ और अनुयायियों को किसी तरह सताया भी नही जायेगा। परन्तु उनकी सलाह तथा सूचनाओ पर ध्यान ही नही दिया जायेगा तो मामला खतम है। 'तुम बकते हो, हम सुनते है'—इस असहयोग से हम लोग खूब अच्छी तरह वाकिफ है। स्थानिक स्वराज संस्थाओ को और रचनात्मक कार्यकर्त्ताओ को जनता के ऐसे क्रियाहीन असहयोग का खासा अनुभव होता है।

यह सिर्फ अज्ञान, निरक्षरता या आलस की बदौलत नही होता। जान-बूझकर भी किया जाता है। सार्वजनिक संस्थाओ के कार्य के प्रति अपनी अरुचि बताने का यह एक तरीका है। बिजली के लिए रबड की परतो मे से निकल जाना जितना सरल है, उतना लोगो का यह असहयोग भी हो, तो अहिंसक संगठन करना आसान नही है।

परन्तु इन कठिनाइयो का सामना तो करना ही पडेगा।

## १०

## हिंसक और अहिंसक लड़ाई के सामान्य अंग

हिंसक तथा अहिंसक लडाई मे कुछ अंग समानरूप से जरूरी है, उदाहरण के लिए —

लडाई की तीव्रता और क्षेत्र के विस्तार के अनुपात मे दोनो मे समाज के नित्य जीवन मे थोडे-बहुत अंश मे अव्यवस्था, असुविधा, तंगी सगेसम्बन्धियो से वियोग, फिजूल खर्च, औद्योगिक नुकसान, नफे मे कमी, राजी-खुशी के या कानूनी टैक्स, जानमाल की जोखिम, काम का अधिक बोझ, जिनकी आदत न हो, ऐसे फर्ज अदा करना—इत्यादि सहना पडता है।

इसके अलावा मृत्यु, यन्त्रणाएं, मूल्यवान सपत्ति का नाश या अपहरण और स्त्रियो पर अत्याचार आदि सकटो का सामना भी हिंसक और अहिंसक दोनो प्रजाओ को करना पडता है ।

परन्तु, जरा विचार करने पर समझ मे आ जाता है कि जहाँ दोनो ओर मे हिंसा का प्रयोग होता हो, उसकी अपेक्षा जहाँ एक ही ओर से हिंसा का प्रयोग हो रहा हो और दूसरी तरफ से अहिंसक प्रतिकार होता हो, वहाँ इन सारे खतरो का अनुपात उभय पक्ष मे कम हो जाता है । जब आक्रमणकारी यह जानता हो कि विपक्षी के पास लडने के लिए बन्दूके भी नही है, तो उसे उतने ही टैंक, जगी हवाई जहाज, बेडे, बम वगैरा बनवाने या लाने पडेगे जितनो की वह अहिसक प्रजा पर आतक जमाने के लिए जरूरत महसूस करता हो । हिंसा के साधनो से अरक्षित प्रजा का वह समूल सहार कराना चाहे और वह सहार अपनी आँखो से देखने की व्याकुलता टालने के लिए अपने शिकार के सामने न आना चाहे, तोभी जिस मात्रा मे आज उसे यान्त्रिक सेना का उपयोग करना पडता है, उतना नही करना पडेगा । हिन्दुस्तान तथा अमेरिका की जगली जातियो की जो स्थिति हुई है, वही गति अहिसक प्रजा की कर दी जायेगी, यह आशका हो सकती है । परन्तु निष्फल हिंसक विरोध की अपेक्षा अहिसक विरोध मे क्या हमारी ज्यादा दुर्दशा हो सकती है ? हिंसा मे विजय पाने के लिए तुम्हे शत्रु की अपेक्षा अधिक भयकर हिंसा करनी चाहिए, अधकचरी या निष्फल हिंसा से कुछ नही बन आयेगा । अहिंसा अगर सफल हो गयी, तो मानव-परिवार की एक दूसरी शाखा के साथ तुम्हारा शान्ति तथा प्रेम का सम्बन्ध कायम होगा । और अगर उसका कोई असर न हुआ और आधे रास्ते मे ही तुम हिम्मत हार गये, तोभी १९१८ ई० मे जर्मनी की

या १९४० ई० में फ्रांस की जो दुर्गति हुई, उससे बदतर तुम्हारा हाल नही होगा।

मतलब यह कि अहिंसक लडाई मे भी हिंसक लडाई की तरह जोखिम तो उठानी ही पडती है। हिंसा मे सामनेवाले को हराने के लिए क्रूर बहादुरी की जरूरत होती है। अहिंसा मे बिना हाथ उठाये जोखिम का सामना करने की शान्त बहादुरी की जरूरत होती है। शस्त्रधारी सिपाही की क्रूर बहादुरी के पीछे हो सका तो लडाई की जोखिमो से बच जाने की वृत्ति होती है। यह वृत्ति केवल आत्मरक्षण या जान बचाने की ही नही होती, मारक और आत्मरक्षक दोनो तरह की होती है। शान्त बहादुरी मे जोखिम से भागने का तो प्रयत्न ही नही होगा। इसलिए बचने की वृत्ति का सवाल ही नही है। और मारक वृत्ति तो हरगिज हो ही नही सकती। मध्ययुग में अपनी निर्दोषता सिद्ध करने के लिए जिस प्रकार की अग्नि-परीक्षाएँ--जैसे कि तपे हुए लोहे का गोला उठाना आदि--ली जाती थीं, उनसे इस प्रसंग की उपमा दी जा सकती है।

इसके अलावा लडाई की तैयारी के रूप और लडाई के दौरान में भी हिंसा और अहिंसा दोनो मे वेगवान रचनात्मक कार्यक्रम की एक-सी जरूरत होती है। जैसा कि विनोबाजी ने अपने एक लेख मे कहा है--

"यूरोप की लडाई हिंसक साधनो से हिंसक उद्देश्यो की पूर्ति के लिए हो रही है। हमारी लडाई अहिंसक साधनो से अहिंसक उद्देश्यो की पूर्ति के लिए होगी। इन दोनो में यह बहुत बडा अन्तर होते हुए भी उस हिंसक लडाई से हम कई बातें सीख सकते है। लडाई के साधन चाहे जैसे क्यो न हो, आजकल का युद्ध सामुदायिक तथा सर्वांगीण सहयोग का एक जबर्दस्त प्रयत्न होता है। यद्यपि इस प्रयत्न का फलित

विध्वंसक होता है, और यद्यपि यह भी मान लिया जाये कि उसका उद्देश्य भी विध्वंसक होता है, तथापि यह प्रयत्न स्वयं प्रायः सारा-का-सारा विधायक ही होता है। कहते हैं कि जर्मनी ने सत्तर लाख फौज खड़ी की है। आठ करोड़ के राष्ट्र का इतनी बड़ी फौज खड़ी करना, उतने बड़े पैमाने पर लड़ाई के हथियार, औजार तथा साधन-सामग्री प्रस्तुत करना, चुने हुए लोग फौज में भरती करने के बाद बाकी के लोगों द्वारा राष्ट्रीय संसार चलाना, सम्पत्ति की धारा अव्याहत गति से प्रवाहित रखने के लिए औद्योगिक योजनाएँ यथासम्भव अखंड जारी रखना, तमाम पाठशालाएँ आदि बन्द करना, नित्य की जीवन-सामग्री के व्यक्तिगत स्वामित्व के अधिकार पर सरकारी कब्जा जमा लेना, जिस प्रकार विश्वरूप-दर्शन में आँख, कान, हाथ, पैर, सिर, मुँह अनन्त होते हुए भी हृदय एक ही दिखाया गया है, उसी प्रकार, मानो सारे राष्ट्र का हृदय एक करना---यह सब इतना विशाल और इतना सर्वतो-मुख विधायक कार्यक्रम है कि उसके संहारप्रवण होते हुए भी हम उससे बहुत कुछ सीख सकते हैं।"

## ११
## अहिंसा की शर्तें

अब अहिंसक संगठन की शर्तों का विचार करें।

इसका विचार करते हुए साधारण मनुष्य में जितनी अहिंसा या हृदय की उदारता होती है, उससे अधिक की उम्मीद मैंने नहीं की है। जैसा कि पहले अहिंसा की व्याख्या करते हुए कहा जा चुका। व्यवहार्य अहिंसा में हिंसा का अभाव और उदारता की ओर झुकाव या रस होता है। इसमें स्वार्थ-वृत्ति का सम्पूर्ण अभाव नहीं है। परन्तु न्यायी स्वार्थ-वृत्ति है।

मतलब यह कि जनता को नीचे लिखी बातें अच्छी तरह समझ लेनी चाहिएँ —

१ हर परिस्थिति में—गुस्से के लिए चाहे कितना ही बड़ा कारण क्यों न उत्पन्न हुआ हो या हिंसा करने या चोट पहुँचाने की कितनी ही अनुकूलता क्यों न हो, उसे हिंसा में परहेज ही रखना चाहिए।

२ विरोधी ने चाहे कितना ही खराब और दुष्टता का वर्ताव क्यों न किया हो, तोभी उसका बदला लेने की या बदला लिया जायेगा ऐसी उम्मीद नहीं करनी चाहिए। उसे अपनी उदारता बताने को तैयार रहना चाहिए और नेता हमेशा उदारता दिखायेंगे ही, ऐसा मान लेना चाहिए।

३ सफलता मिलने पर भी किसी प्रकार के अनुचित लाभ उठाने की इच्छा नहीं रखनी चाहिए।

४ अगर ऐसे अनुचित लाभ या हक प्राप्त हुए हों जो विरोधी के साथ या जनता के किसी वर्ग के साथ अन्याय करनेवाले हों तो उन्हें छोड़ने के लिए तैयार हो जाना चाहिए।

५ जिनकी स्थिति अच्छी हो, उन्हें अपनी दौलत अपने से कमनसीब लोगों के साथ बाँटकर भोगनी चाहिए। दलित और बेकार जनता के लाभ के सारे कार्यक्रमों को उन्हें उदारता से बढ़ाना चाहिए।

६ जिस तरह का असहयोग ज़मानों से हमारे देश में चलता आया है, उसमें और जिस तरह का अहिंसात्मक असहयोग आज हमारे सामने पेश किया गया है उसमें जो अन्तर है, वह भी लोगों को समझ लेना चाहिए। रूढ असहयोग में शरीर पर प्रत्यक्ष प्रहार किये बिना विरोधी की जितनी हिंसा की जा सके, उतनी की जाती थी। उसमें विरोधी के प्रति प्रेम, करुणा, उदारता जैसी भावनाएँ नहीं थीं। सख्त दण्ड दिये बिना अथवा उसे नीचा दिखाकर झुकाये बिना, उसके खिलाफ असहयोग

बन्द नहीं किया जा सकता था। विरोधी हमारा टेढ़े रास्ते गया हुआ भाई है और उसे हमें फिर-से सही रास्ते पर लाना चाहिए, यह भावना उसमें नहीं थी। बल्कि यही भावना थी कि वह हमारा दुश्मन है और उसे कुचल डालना चाहिए। अहिंसात्मक असहयोग में विरोधी की तरफ कुछ दूसरी निगाह से देखना होता है। यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि अहिंसात्मक लड़ाई का मकसद प्रतिपक्षी को कड़ी हार देना या उसपर सोलह आने विजय पाना नहीं है, वरन्, जिसमें दोनों के आत्म-गौरव की रक्षा हो, इस प्रकार की स्थायी सुलह स्थापित करना है। इसमें पुश्त-दर-पुश्त चलनेवाली अदावत कायम करने की वृत्ति नहीं होती। बल्कि उचित परिस्थिति उत्पन्न होते ही उस असहयोग को खत्म करने देने की मन्शा होती है। असहयोग की मात्रा भी परिस्थिति की ज़रूरत के अनुसार बढ़ायी या घटायी जाती है।

७ जैसा कि पहले कहा जा चुका है लोगों का अहिंसात्मक प्रतिकार में रही हुई सलामती के बारे में गलत कल्पनाएँ नहीं करनी चाहिएँ। युद्ध की सारी जोखिमें इसमें भी हैं। लेकिन वैर या बदला लिया गया, ऐसी बड़ाई मारने का संतोष प्राप्त करने की आशा इसमें किसी कदर नहीं है। गम्भीर धीरज और दृढ़ता से अग्नि-परीक्षा देने की लोगों की तैयारी होनी चाहिए।

८ लोगों को अपने नेताओं पर पूरा-पूरा भरोसा रखना चाहिए। नेताओं को पसन्द न आये, ऐसा कोई समझौता उन्हें स्वीकार नहीं करना चाहिए और न किसी दूसरे की सलाह से उनके सुझाये हुए कार्यक्रम में हेर-फेर ही करना चाहिए। उनको अपने नेताओं में यह विश्वास होना चाहिए कि न तो वे देश को किसी के हाथ बेचकर बरबाद करनेवाले हैं, और न जनता को ज़रूरत से ज्यादा तकलीफ या जोखिम में डालनेवाले।

## १२
## संचालकों की योग्यता

इतना तो हुआ सामान्य जनता के समझने के लिए ।

परन्तु जब देशव्यापी सगठन करना हो, तब प्रातीय और स्थानीय नेताओ और कार्यकर्ताओ का भी एक खासा समूह होना चाहिए । देश के नेताओ द्वारा ठहरायी गयी राष्ट्रनीति और अहिंसात्मक लडाई के सिद्धान्त उन्हे अच्छी तरह समझने और हजम करने चाहिएँ । यही नही वरन् जनता को वे बाते समझाना और स्थानीय परिस्थिति के अनुसार उन्हे लागू करने मे खूब शक्ति भी दिखानी चाहिए । गाधीजी का 'बलवान की अहिंसा' वाला सूत्र खासकर उनपर लागू है। मेरी समझ मे उसका अर्थ यह है कि जो ऐसा मानते है कि हमारे पास हथियार और दूसरे साधन नहीं है, इसलिए हमे अहिंसा का उपाय ग्रहण करना पडता है, उन्हे इस आन्दोलन के समझाने का या मार्गदर्शन, सगठन या नियत्रण का भार अपने ऊपर नही लेना चाहिए। इस आन्दोलन का सचालन उन्ही व्यक्तियो द्वारा होना चाहिए, जिनका विश्वास है कि अहिंसा हिंसा की बनिस्बत केवल नैतिक दृष्टि से ही नही वरन् व्यावहारिक दृष्टि से भी बढिया है और वह न सिर्फ हमारे ही लिये, बल्कि जो देश सिर से पैर तक नये-से-नये हथियारो से लैस है, उनके लिये भी है । और यह कि कमजोरी, आत्म-विश्वास का अभाव तथा लाचारी से अहिंसा की नहीं, बल्कि हिंसा की वृत्ति उसी तरह पैदा होती है, जैसे कि कोरी खुदगरजी द्वेष से ।

सुनने में बात कुछ अटपटी भले ही लगे, तोभी सच यह है कि डर से भरा मनुष्य हमेशा शरण ही नही लेता, बल्कि जनूनी (उन्मत्त) लडाका भी बन जाता है । जब उसके अपने या उसके बच्चो की जान का खतरा

हो, तब बिल्ली मे कितना जनून पैदा हो जाता है, सो हम जानते है। फिर यह भी नही कि सिर्फ कायर ही शरण चाहते हो। वीरो को भी शरण मे जाने की नौबत आती है। लडाई के शुरू मे तो हरएक प्रजा यही कहती है कि जबतक हमारा एक भी आदमी जिन्दा है, तब-तक हम बराबर लडते रहेगे। हम मरेगे, लेकिन झुकेगे नही। परन्तु राजस्थान के इतिहास के थोडे-से उदाहरण छोड दिये जाय, तो दुनिया की तवारीख मे अक्षरश इस प्रकार के कितने उदाहरण पाये जायेगे? हाँ, हरएक देश और युग मे मुट्ठी-भर ऐसे वीर तो पैदा होते ही रहेगे, जो बदनामी से जीना कभी पसन्द नही करते। परन्तु सारी सेना या प्रजा के नाम पर ऐसी वीरता आम तौर पर पायी नही जाती। सेनापति और सिपाही स्वाभिमान के लिए लडते तो है। उसके लिए कुछ दिन तक अपना सारा तन, मन, धन जोखिम मे भी डालते है। और यह भी हो सकता है कि उसे बचाने की कोशिश करने पर भी उसकी आहुति हो जाये। परन्तु सारी आशा नष्ट हो जाने पर भी स्वाभिमान के लिए जान देनेवाले लोगो की सख्या बहुत बडी नही होती। ज्यादातर लोगो में स्वाभिमान की अपेक्षा जीने की तृष्णा अधिक बलवान होती है। और न हमेशा यह भी देखा गया है कि जो बहादुरी के लिए मशहूर है, ऐसे जुझारू वृत्ति के लोग भी स्वाभिमान के बिना जीना पसन्द ही नही करते। 'सिर सलामत तो पगडी पचास'वाली कहावत में बहुतेरे आदमियो का विश्वास होता है और इसलिए दरअसल मर जाने की बनिस्बत बदनामी से और कमरतोड मेहनत मशक्कत करके भी ज़िन्दगी निबाह लेना ही वे पसन्द करते है।

मतलब यह कि ऐसा मानने के लिए कोई सबूत नही है कि जान-बूझकर निहत्था रहकर मरने का निश्चय करनेवाले वीर की अपेक्षा

शस्त्रधारी मनुष्य का उसी प्रकार का निश्चय अधिक बलवान होगा लेकिन जिसे इसके बारे में शक हो, उसे अहिंसक लडाई का अगुआ नह बनना चाहिए। बाहर सुरक्षित अन्तर पर रहकर वह उदारता दूसरी मदद देता रहे, तो उससे भी वह आन्दोलन और प्रजा की अधि सेवा कर सकेगा।

दूसरे, स्थानीय नेता और कार्यकर्त्ता अगर लोगो के प्रेम और इज्ज के पात्र न हो, तो वह आन्दोलन लोकप्रिय नही हो सकता।

वे अप्रिय और प्रतिष्ठाहीन दो कारणो से हो सकते है —

लोगो का उनमे यह विश्वास नही कि वे निःस्वार्थ, सच्चे औ अपने पक्ष से बेईमानी न करेंगे। अथवा सरकारी अधिकारिय या सन्यासियो की तरह वे लोगो से अलग और दूर रहते है, उनके सा मिल-जुल कर नही। इसके कारण उनके और जनता के बीच एक गहरी खाई पैदा हो जाती है और ऐसा हो जाता है कि मानो दोनो अपनी अपनी जुदी-जुदी दुनियाओ मे रहते हो। कार्यकर्ता जनता की कम जोरियो को जानते तो है, लेकिन उसकी झझटो, हौसो और भावनाओ की वे कदर नही कर सकते। राष्ट्रीय आन्दोलन मे जनता के मूक अस हयोग का कारण कई बार कार्यकर्ता और जनता के बीच पडा हुअ फासला ही होता है। जाहिर है कि जबतक जनता के विश्वास क पात्र न बन सकनेवाला पहला वर्ग दूर नही होगा और जनता से अल रहनेवाला दूसरा वर्ग अपने बर्ताव मे उचित सुधार करके जनता नजदीक नही आयेगा, तबतक अहिंसा का सन्तोष-कारक सगठन नह हो सकेगा।

तीसरे, व्यवहार्य अहिंसा तथा अहिंसात्मक लडाई के क्या माने यह अगर अच्छी तरह समझ लिया जाय, तो काग्रेस की रचनात्म

प्रवृत्तियो को पक्की बुनियाद पर रखने और तेजी से चलाने का महत्त्व समझने मे मुश्किल नही होगी। जनता मे स्वावलम्बन का आग्रह, आत्म-विश्वास का बल और राष्ट्र के अन्दर छिपी हुई आत्मशक्ति का भान जाग्रत करना है। अलग-अलग कौमो मे इस प्रकार की एकता कायम करनी है कि जिससे वे एक ही शरीर के जुदे-जुदे अवयवो की तरह एक-दूसरे से जुडी रहे। समानता, न्याय और मेल-मिलाप की बुनियाद पर उनके आपसी सम्बन्ध मजबूत करने है। कही भी बडप्पन या छोटेपन का खयाल न रहने पाये। न तो जनता मे गुण्डेपन से डरने या स्वाभिमान-शून्य आजिजी करने की आदत रहनी चाहिए न दूसरो को झुकाने का बदमिजाज या लाचार होकर अपमान सहनेने की वृत्ति रहनी चाहिए, और न दम्भ, धोखेबाजी या खुशामदी वृत्ति ही रहनी चाहिए। और यह सब तालीम बिना जबरदस्ती किये देनी है। सिर्फ कवायद में ही नही, परन्तु अधिकारी व्यक्तियो के साथ सभी तरह के व्यवहार में सीना तानकर खडे होने की हिम्मत लोगो में आनी चाहिए—मगर बिना अपनी शराफत छोडे। दलित, भूखे, परित्यक्त और बुरे रास्ते पर चलनेवालो मे भी भाईचारा कायम करना है। धनवानो को समाज के हित के लिए अपने भण्डार खोलना सिखाना है। यह सब तभी हो सकता है, जबकि रचनात्मक कार्यक्रम को तेजी से चलाया जाये और धनी नेता और कार्यकर्ता खुद त्याग, सादगी और हाथ खोलकर दान करने की मिसाल पेश करें।

चरखा चलाना तो रचनात्मक कार्यक्रम को गति देने की कार्यकर्ता की लगन का एक पहला कदम-सा है। नेताओ और कार्यकर्ताओ के लिए वह स्वराज्य की कीमत का उनका पूरा हिस्सा नही है—सिर्फ बानगी है। रचनात्मक कार्यक्रम की जुदी-जुदी विगतो का प्रचार तथा

सुधार करते रहकर उन्हे बाकी की कीमत चुकानी है। स्वराज का अर्थ सिर्फ विदेशी सत्ता और हमारे सम्बन्धो का आखिरी फैसला करना ही नही है, वरन् देश के जुदे-जुदे राज्य, प्रान्त, कौमो तथा संस्कृति, भाषा, समाज-रचना और आर्थिक हितो के कारण अलग-अलग वर्गो मे बँटे हुए लोगो के साथ हमारा अपना तथा उनका आपस का सम्बन्ध ठीक करना भी है। इतने पर भी जो स्वराज और रचनात्मक कार्यक्रम का सम्बन्ध न समझ सकते हो, उन्हे कम-से-कम ऐसा स्थान स्वीकार करना चाहिए, जिससे वे प्रगति को रोकनेवाले ब्रेक न बन जाये।

## १३
## सर्वोपरि मण्डल

अब जनता के सर्वोपरि मण्डल के स्वरूप और कर्तव्यो के बारे में थोडा विचार करता हूँ।

अगर हिन्दुस्तान को एक स्वतन्त्र और अपने अहिंसात्मक राज्य तथा समाज-रचना के द्वारा जगत को पदार्थ-पाठ देनेवाला देश बनाना हो, तो हमे ऐसी स्थिति को पहुँचना चाहिए, जिसमे प्रजा-हित की हरएक बात में आखिरी मार्गदर्शन कराने का अधिकार किसी एक सर्वोपरि सत्ता को दिया हुआ हो। उसका स्थान मनु, मूसा या मुहम्मद के समान होना चाहिए। यह सर्वोपरि सत्ता जनता के किसी एक ही सर्वमान्य नेता के हाथो में है या सम्पूर्ण सहयोग से काम करनेवाले किसी छोटे-से मण्डल को सौंपी गयी है—यह बहुत महत्त्व की बात नही है। अगर उस नेता या नेता-मण्डल ने अहिंसा को अपनाया है और अगर जनता के प्रेम और आदर पर ही उसकी सत्ता की डोरियाँ हिलती हुई है, तो विश्वास किया जा सकता है कि वह नेता या नेता-मण्डल जान-बूझकर लोगो का अहित नही करेगा।

इस सर्वोपरि सत्ता की तरफ से कार्य के बारे मे जो-जो सूचनाएँ निकले, उनपर लोगो को बिना हेर-फेर किये विश्वास और उत्साह से अमल करना चाहिए। फौजी तन्त्र मे 'ऐसा क्यो ?' पूछने का भी अधिकार नही होता। अहिंसक तन्त्र मे एक हदतक 'ऐसा क्यो ?' सवाल किया जा सकता है। लेकिन जब अगुआ विनती करे कि मेहरबानी करके अब सवाल पूछना बस कीजिए, तो प्रश्न बन्द करने चाहिएँ और अमल शुरू करना चाहिए। अहिंसक नेता ज़बरदस्ती कुछ नही करा सकता। इसलिए आमतौर पर वह अपनी सूचनाओ के मूलभूत (बुनियादी) कारण भरसक स्पष्टता से समझाने की कोशिश करेगा ही।

मै समझता हूँ कि कोई भी व्यक्ति या मण्डल लगभग सारी प्रजा के सर्वोपरि पद पर तभी पहुँच सकता है, जबकि सभी महत्त्व की कौमो, जातियो और वर्गो के आन्दोलन करनेवाले मण्डलो के बहुत भारी बहुमत का विश्वास उसे मिला हो। सम्भव है कि आन्दोलन करनेवाली एक संस्था जिस जाति या वर्ग के लिए बोलने का दावा करती हो, उसके भी बहुत बडे हिस्से के सच्चे हितो की हिफाजत दरअसल वह न करती हो। लेकिन, फिर भी, वह अपने आदमियो मे और दूसरे लोगो मे शका, ना-समझी, बुद्धि-भेद और अस्पष्ट विचार पैदा करने के लायक ताकत जमा लेती है। इसलिए या तो प्रामाणिक विरोधी से समझौता करने की पूरी-पूरी कोशिश करनी चाहिए या फिर उस मण्डल की अप्रामाणिकता इतनी खुल जानी चाहिए कि जिससे उसकी जाति के और दूसरे लोगो में भी उसकी कोई वकत न रहे।

## १४

## सगठन की जरूरत

सगठित प्रयत्नो की जरूरत विस्तार के साथ समझाने की आवश्य-

कना नही होनी चाहिए। लेकिन कुछ लोगो का यह खयाल है कि "अहिंसा मे सगठन से ज्यादा फायदा नही होता—खासकर तब जबकि उसका हेतु हिंसा का विरोध करना हो, क्योकि बहादुरी एक व्यक्ति का स्वाभाविक तेज है और चाहे वह व्यक्ति अकेला हो या एक झुण्ड में हो, उसका वह तेज प्रकट हुए बिना नही रहेगा। लेकिन डरपोकपन एक मनुष्य मे रहा हुआ अँधेरा है, इसलिए कई डरपोक आदमियो की बनी हुई टोली मे कुल मिलाकर घना अँधेरा ही होगा। इसलिए सगठित करने का प्रयत्न न करने से ही अहिंसा का अच्छे-से-अच्छा सगठन होता है।" यह भी कहा जाता है कि "सगठन केन्द्रीकरण (सेन्ट्रलाइजेशन) की ओर झुक जाता है, और उसका रुख हिंसा की ही तरफ होता है, इसलिए सगठन का झुकाव हिंसा की ओर होता है और असगठन का अहिंसा की ओर।"

मेरे नम्र मत से ये सब विधान वाजिब से ज्यादा व्यापक भाषा मे पेश किये गये है। बहादुरी और कायरता, ताकत और कमजोरी छूत के रोग जैसे है। यह हो सकता है कि दो जनो में अकेले जोखिम मे उतरने की हिम्मत न हो। यदि वे दोनो अपने अपने डर की पोटलियाँ लेकर जोखिम के मौके पर इकट्ठे हो और अपने साथी में जो कुछ साहस-वृत्ति हो उसे घटाने में ही उसका उपयोग करें, तो इन दोनो के सगठन से उत्पन्न हुई कायरता उनकी हरएक की कायरता से भी बढ सकती है। लेकिन अगर हरएक का हेतु जोखिम का सामना करने में एक-दूसरे से ताकत हासिल करना हो, तो उनके सगठन से कमजोरी घटेगी और ताकत बढेगी। मतलब यह कि उचित वृत्ति से और अच्छी तरह किये हुए सगठन में हरएक सदस्य की व्यक्तिगत शक्तियो के जोड की बनिस्बत ज्यादा शक्ति पैदा होनी चाहिए।

फिर केन्द्रीकरण (सेन्ट्रलाइज़ेशन) और विकेन्द्रीकरण (डिसेन्ट्रलाइज़ेशन) के सिद्धान्त में से किसी एक ही को अपने मे पूरा उसूल मान लेना भूल है। हरएक मे कुछ फायदा है और कुछ नुकसान। न तो हमे केन्द्रीकरण की भव्यता से चौंधियाना चाहिए और न विकेन्द्रीकरण की सादगी पर रीझ जाना चाहिए। केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण के आखिरी सिरे छोडकर, जिस परिस्थिति का सामना करना हो, उस परिस्थिति में जनता के लिए ज्यादा-से-ज्यादा हितकर क्या होगा, इस दृष्टि से जीवन के क्षेत्र मे और हरएक कदम पर इन दोनो का उचित मिलाप कहाँ करना चाहिए, इनकी खोज करके उनमे उचित फेर-बदल करने चाहिएँ। व्यवहार्य अहिंसा मे स्वार्थ-वृत्ति का सम्पूर्ण अभाव नही है। इतना ही कि वह अन्यायी नही है। और इसलिए वह शुद्ध अहिंसा अथवा अति भलाई के नाम के लायक नही है। लेकिन उस तरफ को झुकती है, इतना ही। वही बात अहिंसक सगठन की भी है। केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण का उचित मिलाप करने की हमेशा कोशिश करते रहना होगा। यह मिलाप हरएक जगह और हरएक समय पर अलग-अलग तरह का होगा। परन्तु, जब-कभी किसी ध्येय को सिद्ध करने के लिए कोई जोरदार काम करना हो, तब सगठन के बिना काम ही नही चलेगा। कुछ बातो मे उसका सचालन और नियन्त्रण केन्द्र से करना पड़ेगा। कुछ बातो मे हरएक शाखा का मार्ग स्वतन्त्र होगा।

## १५
## छोटे-से-छोटा संगठन

इसपर से हिन्दुस्तान मे छोटे-से-छोटे सगठन के स्वरूप और कार्य-क्षेत्र के विचार पर आता हूँ। इसकी निस्बत में यहाँ जो विचार रख रहा हूँ, उन्हे कोई मेरे आखिरी और पके हुए विचार न माने। इस समय मेरे

जो विचार है, उन्हींको प्रकट कर रहा हूँ, उनमे हेर-फेर होने की पूरी सम्भावना है।

कई कारणो से मेरा ऐसा मत बनता जा रहा है कि आम तौर पर एक-एक गाँव को सगठन या पञ्चायत का छोटे-से-छोटा क्षेत्र या इकाई बनाना ठीक नही है। एक कस्बा ( करीब दस हजार की आबादी का ) और उसके आस-पास के गाँवो को इकाई का छोटे-से-छोटा हलका या महाल बनाने मे मुझे कोई हर्ज नही मालूम होता। मैं यह जरूरी समझता हूँ कि एक ग्राम-मण्डल या महाल में दस या पन्द्रह हजार से कम आबादी न हो और उतनी बस्ती के गाँवो के समुदाय का एक ही क्षेत्र हो। उसी प्रकार बडे शहर और उनके आसपास की बस्तियो का एक ही मण्डल मानना चाहिए।

हरएक ग्राम-मण्डल मे कार्यकर्ताओ के एक ही तन्त्र को सेवा करनी चाहिए और उन सबको सम्मिलित जिम्मेदारी से काम करना चाहिए। हाँ, वे अपनी प्रवृत्तियो के अलग-अलग महकमे बना सकते हैं और हरएक महकमे की अलग-अलग समितियाँ भी बना सकते है। उसी प्रकार ग्राम-मण्डल के एक-दूसरेसे जुडे हुए उप-विभाग भी बनासकते है।

यह जरूरी नही है कि इस तन्त्र की रचना के लिए बाकायदा चुनाव हो। वे अपने आप ही मुकर्रर हो जाये, तो कोई हर्ज नही है, क्योकि एक बात पक्की है कि अगर जनता के सभी प्रमुख दलो को ग्राम-मण्डल में विश्वास न हो और अगर वह नौजवानो को बडी तादाद मे आकर्षित न कर सकता हो, तो वह ज्यादा काम कर ही नही सकेगा। लोग उसके कामो में योग दें, यही उसके बाजाप्ता चुने हुए होने की निशानी है।

जिला, प्रान्तीय, मध्यस्थ जैसी ऊपर की सस्थाओ के उसे मजूरी देने की बाबत यह नीति हो सकती है कि अगर एक ही ग्राम-मण्डल में

काम करनेवाले बहुत-से तन्त्रो मे नाम कमाने के लिए होड हो रही हो, तो एक को भी मजूरी न दी जाये। हरएक से कह दिया जाये कि या तो वह मजूरी के बिना काम करे, या सब मिलकर काम करने का कोई रास्ता निकाले। तन्त्र के भीतरी झगडे उन्हे अपने आप निपटाने चाहिएँ, ऊपर की सस्था को उनमे दखल देने से इनकार करना चाहिए और जबतक वे अपने झगडे निपटाते नही है, तबतक किसी भी तन्त्र को मजूरी नही देनी चाहिए।

हरएक तन्त्र को अपना विधान और नियम बना ही लेने पडेगे। मार्ग-दर्शन के लिए कुछ नमूने सुझाये जा सकते है। लेकिन उनमे अपनी योग्यता के मुताबिक हेर-फेर करने की आजादी हरएक को होनी चाहिए। कुछ बुनियादी सिद्धान्त बेशक सबके लिए समान रहेगे ही। तन्त्र की प्रवृत्तियो मे नीचे लिखी प्रवृत्तियो में से कुछ तो जरूर गिनी जायेंगी —

१ अहिंसा के पालन में चुस्त रहनेवाले सेवको का एक दल बनाना, जो जरूरत होने पर चौकी या पहरा दे और लूट-खसोट, हमला, हुल्लड, आग, बाढ या दूसरे सकटो के मौके पर सेवा करे,

२ ग्राम-मण्डल का आर्थिक सगठन, याने उसकी पैदावार आयात-निर्यात, उत्पत्ति, बँटवारा, बिक्री वगैरा का नियमन करना,

३ ग्राम-मण्डल के खादी तथा दूसरे उद्योगो का सगठन करना,

४ बेकारी मिटाने के काम शुरू कराना,

५ बूढे, बीमार, अपाहिज, कगाल वगैरा के लिए राहत के काम या दान खोलना,

६ गुण्डे, शराबी, बदचलन वगैरा को सुधारने के काम शुरू करना,

७ हरिजन तथा दूसरे लोगो की तरक्की के काम करना और उनकी सामाजिक तथा दूसरी दिक्कते दूर करना,

८ (साक्षरता-प्रचार के अलावा) लोगो का सामान्य ज्ञान बढाना

९. ( सरकारी या खास सस्थाओ की प्रवृत्तियो में रही हुई कमी को पूरा करने की गर्ज़ से ) स्त्री-शिक्षण,

१० ( इसी तरह कमी पूरी करने के लिए ) बुनियादी तालीम तथा साक्षरता-प्रचार;

११ ( इसी तरह कमी पूरी करने के लिए ) दवा, स्वास्थ्य और सफाई ( सैनिटेशन ) के काम;

१२ प्रजा के चरित्र को ऊपर उठाना,

१३ ग्राम-मण्डल मे बसनेवाली अलग-अलग कौमो, जमातो और दलो के आपसी सम्बन्ध सुधारना,

१४ जीव-दया,

१५ लोक-प्रिय, सस्ते और नैतिक दृष्टि से हितकर मनोरंजन खेल-कूद, उत्सव, कथा-कीर्तन, गायन, भजन, मेले, प्रदर्शिनियो वगैरा का आयोजन करना,

१६ रास्ते, नाले, पुल वगैरा दुरुस्त करने जैमे लोकोपयोगी काम अपनी मेहनत से करना। ( यह सरकारी कामो के अलावा या उसकी मदद लेकर भी हो सकता है ),

१७ पडोस के ग्राम-मण्डलो से सहयोग करना,

१८. ऊपरी और मध्यस्थ सस्थाओ से निकट सम्बन्ध रखना।

इसके साथ-साथ पैसो या चीज़ो के रूप में चन्दा इकट्ठा करने का एक महत्त्व का काम हरएक तन्त्र के ज़िम्मे रहेगा। उसके लिए बराबर हिसाब-किताब और नोध ( विवरण ) रखना भी एक काम माना जा सकता है।

यह ज़रूरी नही है कि हरएक तन्त्र इस तरह की हरएक विगत

उठा ले। अगर किसी ग्राम-मण्डल मे इनमे से किसी काम मे निपुण कोई स्वतन्त्र सन्तोषजनक सस्था हो, तो वह मण्डल उस काम को अपनी सूची मे से कम कर सकता है।

## १६

## उपसहार

परचक्र के किसी प्राचीन काल मे हिन्दुओ के पूर्वजो ने—वर्ण-व्यवस्था से भिन्न, मगर उसके अनुकरण में—ज्ञाति या जाति-व्यवस्था जारी की। उसकी रचना केवल धन्धे पर नही, बल्कि अनेक भेद-दर्शक निमित्तो पर हुई—जैसे, जाति ( रेस ) वतन, धन्धा, धर्म, भाषा वगैरा। कुछ अर्से तक यह व्यवस्था काठ के समान जड नही थी, बल्कि रबड-जैसी लचीली थी। इसलिए विदेशियो को हज़म करके और समाज में हरएक का उचित स्थान नियत करके सारी जनता का एक ही महान प्रजा के रूप मे पहचाना जाना सम्भव हुआ। इस प्रकार बनी हुई प्रजा का प्राचीन 'आर्य' नाम ही जाता रहा और जातियो की एक-दूसरे से कुछ हद तक बिलकुल अलग रहने की खासियत होने पर भी सारी प्रजा ने 'हिन्दू' नाम मे एकत्व पाया। आगे चलकर—जैसा कि सभी सजीव शरीरो और तन्त्रो में होता है—उस व्यवस्था में बुढापे की, खराबियाँ पैदा हुई। वह जीर्ण और शीर्ण होकर काठ के समान कठिन हो गयी और बाद मे आनेवाले विदेशियो को उचित रीति से अपने आप मे मिला लेने की या जाति-व्यवस्था के बाहर रहे हुए अथवा बहिष्कृत किये गये समूहो को अपने आपमें समा लेने की शक्ति गँवा बैठी। इसलिए अब सुधरी हुई नीव पर भारतीय प्रजा की एक नयी व्यवस्था का निर्माण करना आवश्यक हो गया है।

वर्ण-व्यवस्था और जाति-व्यवस्था की कल्पना में अहिंसा का ही

बीज था, परन्तु वह बरायनाम था। ममाज के कमजोर या रोष- बने हुए लोगो का शोपण करना, उनके स्वाभिमान को ठेस पहुँचाना या उनकी ढोरो जैसी हालत कर डालना आदि की तरह की सू- हिंसा का उसमे निषेध नही था। इसके अलावा सभी जातियों की सामाजिक समानता और हरेक मनुष्य की राजनैतिक तथा नागरिक अधिकारो की समानता उसमे मजूर नही की गयी थी।

फिर भी, अहिंसा की नीव पर समाज-रचना करने का वह प्रयत्न था और उसकी बदौलत निःशस्त्र लोगो ने सफल रीति से अपनी ताकत दिखाने की शक्ति पायी थी। सदियो तक वह व्यवस्था उपयोगी साबित हुई।

उस जमाने मे यात्रा करने और सन्देश भिजवाने के साधनो की कमी को देखते हुए एक तरफ से इस ज्ञाति-व्यवस्था के अखिल भारतीय स्वरूप पर और दूसरी तरफ से उस व्यवस्था के जगह-जगह पैदा किये हुए रूपो की विविधता पर हमें अचम्भा हुए बिना नही रहता। इसका यही अर्थ है कि किसी ने एक नया विचार जनता के दिल मे पैदा कर दिया और बाद में लोगो ने उस विचार को स्वय-प्रेरणा और सद्बुद्धि से व्यवहार में विकसित किया। उसी विचार को नये और विशेष शुद्ध रूप में प्रजा में फिर से बोना चाहिए और यह विश्वास रखना चाहिए कि लोग उसे समझेंगे और बढायेंगे।

गीता में कहा गया है कि हरएक को अपनी प्रकृति द्वारा नियोजित कर्ममार्ग का धार्मिक रीति से अनुसरण करना चाहिए। इसी को उसका स्वधर्म कहना चाहिए। स्वधर्म के आचरण में यदि मृत्यु आवे, तो वह उसे भी अच्छा समझे, परन्तु परधर्म को भयकर समझे। (अ० ३।३५) यह विचार प्रकृति के नियमो के अनुसार ही है।

हरएक प्राणी और योनि मे एक अत शक्ति मौजूद है। उसकी बदौलत वह अपने शरीर के अवयवो मे और अपनी जीवन-निर्वाह-पद्धति, रहन-सहन और व्यवस्था मे इस तरह के हेर-फेर कर सकता है और खास ढांचे पैदा कर सकता है, कि जिससे इर्द-गिर्द की परिस्थिति में वह टिक सकता है और शक्तिमान होता है। इतना ही नही, वरन् कुछ दर्जे तक अपने शत्रुओ के सामने डटे रहने की और उनका मुकाबला करने की ताकत भी हासिल करता है। ऐसा करने मे वह प्राणी (या योनि) अपने प्रतिकूल परिस्थितियो का अनुकरण नही करता। बल्कि अनुकूल परिस्थितियो से ही बोध लेता है। वह शत्रु के आयुधो और रीतियो को ग्रहण नही करता, वरन् बिल्कुल ही नयी और कभी-कभी शत्रु से उल्टी ही तरह की युक्तियाँ खोजता है। जैसे घास का टिड्डा जिस तरह की पत्तियो मे रहता हो, उसी तरह के रूप-रग धारण करता है। साँप और नेवले के बीच सनातन वैर माना जाता है। इसलिए हरएक ने अपने-अपने खास तरीके और हिकमते खोजी है, जिनकी बदौलत किसी का सर्वथा नाश नही हो सकता।

मनुष्य-मनुष्य के बीच इस तरह का योनि-भेद तो नही है। परन्तु जब कोई मानव-जाति सस्कृति की पसन्दगी के कारण या बाह्य परिस्थितिवश शेष मानवजाति से बिल्कुल जुदी परिस्थिति और सयोगो मे जा पडी हो, तब कहा जा सकता है कि उस जाति के लिए एक अलग तरह की नियति (भाग्य) या एक खास कर्त्तव्य (मिशन) पैदा हो गया है। इसलिए उसे आक्रमणकारी जातियो का सफलता से मुकाबला करने के लिए अपने जीवन-निर्वाह और समाज-व्यवस्था के खास तरीके का विकास करना चाहिए। कारण कि इस दृष्टि से वह एक अलग ही योनि के प्राणी जैसी परिस्थिति मे है। उसीके अनुकरण

से हम ताकत नही कमा सकते—खास कर जब हमे ऐसा मालूम होता हो कि समग्र मानव-जाति के हित में भी हमे सौंपा हुआ विशेष कर्तव्य (मिशन) अथवा हमारे लिए नियत संस्कृति ही विशेष उचित है।

ऐसी विशेषता प्रकट करने की अत शक्ति हमारे अन्दर मौजूद है ही —प्रकृति के नियम से होनी ही चाहिए। परन्तु उल्टी दिशा में ले जानेवाले प्रलोभनो के बावजूद भी जब हम दृढता से उसमें चिपटे रहेंगे तभी वह बढ सकेगी।

अगर हमें अपनी विशेष नियति या मिशन मे श्रद्धा हो, तो हम निश्चय ही यह आशा कर सकते हैं कि ससार मे से हिंसा को बिल्कुल मिटा देना मुमकिन न हो तो भी, हिंसा का सफल मुकाबला करने के लायक शक्ति तो अहिंसा में है ही।

: ३ :

# मनुष्य की स्वभावगत अहिंसावृत्ति

## १

## भूमिका

कई वर्ष बीत गये। शायद सन् १९२२ या २३ की बात है। अमलनेर का तत्त्वज्ञान-मन्दिर देखने गया था। महाराष्ट्र[१] के एक प्रसिद्ध अध्यापक, जो अब दिवगत हो चुके हैं, उस वक्त वहाँ काम करते थे। उन्होंने मुझसे कहा कि उस संस्था में रहनेवाले विद्वान् पौर्वात्य और पाश्चात्य तत्त्वज्ञान का सूक्ष्म अध्ययन करके पौर्वात्य तत्त्वज्ञान, विशेषकर वेदान्त, कितना श्रेष्ठ और पूर्ण है—यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। अपनी संस्था की बहुत-सी जानकारी देने के बाद उन्होंने मुझसे सत्याग्रहाश्रम का हाल पूछा। मैंने बतलाया। बाद में वे मुझसे कहने लगे, "देखिए, मैं सच कहता हूँ। आप बुरा न मानिए। हम लोगो को आपकी यह अहिंसा बिलकुल नही जँचती। यह तो गाधीजी का एक खब्त है। वह मनुष्य स्वभाव के विरुद्ध है।" वगैरा वगैरा।

ऐसा कहा जा सकता है कि यह राय—अगर सारी महाराष्ट्रीय जनता के मन की नही, तो कम-से-कम जिस शिक्षित वर्ग ने आजतक महाराष्ट्र का जनमत बनाया है और उसका नेतृत्व किया है—उस वर्ग के मत की प्रतिनिधिरूप है।

अपनी जो राय बन गयी हो उसे साहित्यिक और तार्किक शक्ति

---

१. यह लेखमाला मराठी 'पुरुषार्थ' मासिक के लिए मूल मराठी में लिखी गयी थी, इसलिए इसमें महाराष्ट्र का उल्लेख अधिक है।

से वडी कुशलतापूर्वक प्रतिपादन करने की कला मे यह विद्वान्वर्ग सिद्धहस्त है। इसलिए लोगो मे दूसरे किसी मत के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करने के लिए पहले इस विद्वान्वर्ग के मत मे क्रान्ति कराना जरूरी हो जाता है। जवतक हम इनका मत-परिवर्तन नही कर सकते तवतक चाहे सावारण जन-स्वभाव दूसरी तरह का और अहिंसा-शक्ति के अनुकूल क्यो न हो, तो भी लोगो की सारी शकाओ का निराकरण हम नही कर सकते। चैतन्य की सभी शक्तियो का यह धर्म है कि साशक अवस्था मे वे अपना पूर्ण और बलवान स्वरूप प्रकट नही कर सकती। कारण स्पष्ट है। स्वस्थ शरीर मे किसी रोग के जन्तु पैदा कर देना जितना आसान है उतना आसान उसका निरसन करना नही है। इसी तरह भ्रम उपजा देना आसान है, हटाना कठिन है। उसके लिए केवल साहित्यिक और तार्किक कला ही काफी नही है। वल्कि वार-वार अनेक प्रत्यक्ष प्रयोगो द्वारा अनुभव करा देने की तथा लोगो की वृत्तियो को भिन्न सस्कारो द्वारा नये ढांचे में ढालने की ज़रूरत होती है। इसलिए इस काम के लिए अहिंसा-शक्ति का प्रतिपादन करनेवाले साहित्यकारो और तार्किको की अपेक्षा उस शक्ति के कुशल सेनापति अधिक योग्य है। उन्हे अपने अहिंसा के प्रयोगो द्वारा विद्वानो के मतपरिवर्तन का प्रयत्न करना चाहिए। वे सफल ही होगे यह कहना तो मुश्किल है, क्योकि छुटपन से जो मत कायम हो जाता है वह एकाएक नही वदलता। और अगर मत वदल भी जाये तो भी स्वभाव नही वदलता, और मत वदलने की चेष्टा करनेवाले के प्रति मत्सर का भाव पैदा होना सभव है। यह विषय केवल मत से सम्बन्ध रखनेवाला नही है। यह स्वभाव का सवाल है। इसलिए मत-परिवर्तन कराने का प्रयत्न करनेवाले पर क्रोध भी आता है। फिर भी, यद्यपि वर्तमान विद्वानो का मत न वदले, तो भी अहिंसा के सफल प्रयोग नयी पीढ़ी

के जीवन को नये ढांचे मे ढालने मे सहायक होगे और साधारण जनता जल्दी ही उन्हे मान्य करने लगेगी।

मतलब यह है कि जिनका आज अहिंसा मे थोडा-बहुत विश्वास है, उन्हे जो विद्वान उसे नही मानते उनका साहित्य और तर्क द्वारा मत-परिवर्तन कराने की झझट मे पडने की जरूरत नही है। बल्कि वे अहिंसा के सफल प्रयोग कर दिखाने का और नयी पीढी मे अहिंसा-वृत्ति निर्माण करने का प्रयत्न करे। पृथ्वी अपने आपकी और सूर्य के चारो तरफ घूमती है। ऐसा कहनेवाले लोग किसी जमाने मे पागल समझे जाते थे। किसी जमाने के वैज्ञानिको को यह असम्भव प्रतीत होता था कि हवा की अपेक्षा भारी पदार्थ के बने हुए विमान भी हवा मे उड सकेगे। इसी प्रकार आज के मानसशास्त्री और विज्ञानवेत्ता इस बात पर जोर देते हुए पाये जाते है कि 'अहिंसा साधारण जनस्वभाव के प्रतिकूल है," और "प्राणिमात्र में कुदरती तौर पर रही हुई आत्मरक्षा की प्रेरणा में से हिंसा का उद्भव हुआ है, इसलिए अहिंसा कुदरती नियम के विरुद्ध है।" लेकिन इसके बावजूद भी जिन लोगो की बुद्धि को अहिंसा जँचती है, अनुभव की दिशा मे अपना कदम लगातार आगे बढाते रहना चाहिए।

## २

## सामाजिक विशेषताओं के बारे में भ्रम

आजकल यह कहने का रिवाज जोर पकड रहा है कि "हर एक मनुष्य की एक खास प्रकृति होती है और प्रत्येक समाज की भी एक प्रकृति-विशेष होती है। महाराष्ट्रीय स्वभाव अमुक प्रकार का होता है, गुजराती अमुक तरह का, बगाली ऐसे होते है, कानडी वैसे होते है मुसलमान में फलाँ खासियते होनी ही चाहिएँ"—आदि-आदि तरह की बाते हम आजकल बहुत जोरो से कहने लगे है। सारी की सारी कौम या प्रान्त के विषय में इस

तरह की कोई राय कायम कर लेना अल्प अनुभव का परिणाम है। समझ
दार लोगो को ऐसे विचार हरगिज नही फैलाने चाहिएँ। बल्कि उन्हे तो
विषय में इस तरह कोई अपने प्रान्त के लोगो की ऐसी धारणाएँ दू
करने की कोशिश करनी चाहिए। ऐसी गलत धारणाओ की बदौलत प्रान्त
मे परस्पर विद्वेष पैदा होता है। फिर ये धारणाएँ बिल्कुल ऊपरी होती
है। उनके कारण आक्षेपित समाज के लोगो का स्वभाव बदलना हो, य
बात नही। उदाहरण के लिए, महाराष्ट्र मे अगर यह धारणा हो कि
गुजराती लोग भावना-प्रधान होते है या महाराष्ट्र के देशस्थ ब्राह्मणो की
ऐसी धारणा हो कि कोकणस्थ ब्राह्मण भावनाशून्य होते है, अथवा कोक
णस्थ ब्राह्मणो की यह धारणा हो कि देशस्थ फूहड होते है, तो उसकी
बदौलत जो गुजराती व्यवहारकुशल है, जो कोकणस्थ भावुक है, या ज
देशस्थ व्यवस्थित है उनका स्वभाव बदलने की कोई सम्भावना नही है

फिर, जब किसी समाज के लेखक या वक्ता अपने समाज
विषय मे यह कहने लगते है कि "हम ऐसे है और वैसे है, हमे फला
चीज जँचती है और ढिमकी हरगिज नही जँच सकती, हमारे खून
यह है और वह नही है, हमारी परम्परा अमुक है" आदि-आदि—त
एक खतरा पैदा हो जाता है, क्योकि ऐसी बाते बार-बार दोहर
से जो सस्कार स्वभावगत न हो, वे भी उन बातो के लगात
सुनते रहने से पैदा होने लगते है। "गाधीजी गुजराती है इसलिए
पसन्द नही है; अहिंसा भावनामय है, इसलिए हम उसके खिलाफ
लोकमान्य ने अहिंसा का प्रतिपादन नही किया, इसलिए उसे हम न
चाहते, श्री समर्थ रामदास के साहित्य मे हिंसा या मुसलमानो के
को स्थान है इसलिए हम अहिंसा और साम्प्रदायिक एकता की ब
सुनना नही चाहते, तुकाराम महाराज ने भी दुष्टो का नाश करने

पक्ष में अपनी सम्मति दी है, इसलिए अहिंसा धर्म हमारे प्रान्त के लिए अनुकूल नही है, अहिंसा जैनो और बौद्धो की है, वह हिन्दुओ की नही है।"—इस प्रकार के संस्कार करते रहने से, अहिंसावृत्ति उत्पन्न होना सम्भव और उचित हो, तो भी वह चित्त मे घर नही कर सकती।

मतलब यह कि बुद्धिमान मनुष्य को यह उचित नही है कि वह हर एक सत् या असत् वृत्ति को प्रान्त-स्वभाव बनाने की चेष्टा करे। अगर हिंसा ही उचित हो तो उसकी नीव केवल महाराष्ट्र मे ही मजबूत हो, यह काफी नही है। अगर अहिंसा ही उचित हो तो केवल गुजरात मे उसका विकास होने से काम नही चलेगा। हिंसा, अहिंसा या दोनो के कम-अधिक मेल—जो कुछ भी मनुष्य-जाति के लिए उपयुक्त हो—का विकास प्रत्येक मनुष्य मे कराने की कोशिश होनी चाहिए। हिंसा-अहिंसा, दया-क्रोध, क्षमा-दण्ड आदि गुण-वृत्तियाँ है, न कि कर्म-वृत्तियाँ या धन्धे-पेशे। गुणो मे व्यक्तिगत कम-ज्यादापन हो सकता है। लेकिन, भौगोलिक या जातीय कारणो से विशेषता नही होनी चाहिए। कम से कम वह पैदा करने की कोशिश तो कभी नही करनी चाहिए। कर्म-वृत्तियो—धन्धो—मे वैसा प्रयत्न किया जा सकता है। उदाहरण के लिए समुद्र के किनारे रहनेवाले लोगो मे परम्परा से नाविक-विद्या की निपुणता उत्पन्न की जाये तो उसमे कोई दोष नही। समतल भूमि पर रहनेवाले लोगो को खेती-बाडी की कुशलता सिखायी जाये तो हर्ज नही। लेकिन अहिंसा, शौर्य, भय, उदारता, कृपणता आदि गुणो की वृत्तियाँ आम तौर पर सर्वत्र विकसित होनी चाहिएँ। तात्पर्य यह है कि अगर अहिंसा एक हीन या हानिकारक वृत्ति हो तो वह कही भी नही होनी चाहिए। और अगर वह उदात्त और लाभदायी हो,—मगर महाराष्ट्र मे उसके विकास के लिए काफी कोशिश न की गयी हो—तो अब

वह चेष्टा करनी चाहिए। केवल प्रान्त या जाति के अभिमान से उसकी अवगणना या निपेध करना न तर्कसगत है न स्वार्थसाधक।

## ३

## केवल प्राकृत प्राणी

काम, क्रोध, लोभ, भय आदि के समान अहिंसा दया, क्षमा, उदारता आदि वृत्तियाँ भी प्राणिमात्र में निसर्गत मौजूद है। ऐसा एक भी जीव नही है जिसमें अहिंसा लेशमात्र भी न हो। मै यह भी स्वीकार करता हूँ कि हिंसा का नाम निशान भी न हो ऐसा देह-धारी अवतक कभी पैदा नही हुआ है। मनुष्य को छोडकर दूसरे जीवो की हरएक योनि में विविध वृत्तियो का विकास विशेप प्रकार से हुआ है। 'यह गाय सीधी है, वह उदण्ड है', इस तरह के कुछ व्यक्तिगत भेद भले ही पाये जाते हो, लेकिन अक्सर ये भेद बहुत छोटे दायरे मे रहते है। शायद ये भेद पालतू जानवरो में ही पैदा होते है। कौवे, चिडियाँ, गीदड, चीले वगैरा आजाद प्राणियो मे उनके जाति-स्वभाव ही पाये जाते है। व्यक्तिगत स्वभाव-भेद कम-से-कम इतने स्पष्ट तो नही होते कि वे नजर आयें।

लेकिन मनुष्य की बात कुछ और हो गयी है। वहाँ प्रत्येक व्यक्ति तथा भौगोलिक, राजनैतिक, धार्मिक या जातीय बन्धनो से सबद्ध मानव समूह ने इस वृत्ति का विकास या ह्रास भिन्न-भिन्न परिमाण मे किया हुआ पाया जाता है। मनुष्य केवल प्रकृति के वस नही रह गया है वह अपनी वृत्ति मे प्रयत्नपूर्वक फर्क भी करता है।

फिर भी, एक पीढी या एक व्यक्ति के जीवन में यह परिवर्तन एक खास मर्यादा में ही हो सकता है। प्रकृतिधर्म में आमूल परिवर्तन नही किया जा सकता। इसीलिए गीताकार को कहना पडा कि.—

सदृशं चेष्टते स्वस्या. प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृति यान्ति भूतानि निग्रह. किं करिष्यति ॥

और अर्जुन का जाति-स्वभाव जानकर उससे कहना पडा —

यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे ।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ॥
स्वभावजेन कौन्तेय निबद्ध स्वेन कर्मणा ।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात् करिष्यवशोऽपि तत् ॥

तात्पर्य यह कि मनुष्य में भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वभाव तथा वृत्ति ...दा करने का सतत प्रयत्न प्राचीन काल से ही होता आया है । लेकिन एक अवधि मे या व्यक्ति में उस प्रयत्न को मर्यादित सफलता ही मिल सकती है । इसी प्रयत्न के पर्यायवाची शब्द हैं--सस्कृति, सस्कारधर्म, शिक्षा, तालीम, सिविलिज़ेशन, कल्चर आदि ।

इन प्रयत्नो की और भी एक मर्यादा है । सस्कार बदलने का ...चाहे कितना ही प्रयत्न करने पर भी मूल वृत्तियो का आमूल उच्छेद कभी नही हो सकता । अर्थात् अगर अहिसा मानव-स्वभाव की एक मूलवृत्ति हो तो उसका किसी एक व्यक्ति या समाज से अत्यन्त उच्छेद होना असम्भव है । वह अपने विकसित रूप मे भले ही न रहे, किन्तु बीज रूप मे तो अवश्य रहेगी । चाहे यह वेलि बहुत बडे क्षेत्र में न फैले, तो भी वह अपने छोटे-से नपे-तुले दायरे में तो अवश्य रहेगी । उसमें बडे-बडे फल भले ही न लगे, लेकिन छोटे अवश्य लगेगे । एक पीढी में वह सूख गयी-सी मालूम हो, तो भी दूसरी पीढी मे वह फिर पनपेगी । परन्तु अहिसा-शून्य व्यक्ति या समाज बन ही नही सकता । उसी तरह अगर हिंसा भी मूलवृत्ति हो, तो उसके लिए भी यही कहना पडेगा ।

तब हमें सबसे पहले इस बात की खोज-बीन करना जरूरी है कि

हिंसा और अहिंसा में से मनुष्य की मूल वृत्ति कौन-सी है ? और यदि ये दोनों उसकी मूल वृत्तियाँ हों, तो एक दूसरे में उनका मेल कैसे कराया जाये ?

इसका शोध करने के लिए 'हिंसा' और 'अहिंसा'—दोनों शब्दों का एक निश्चित अर्थ देना जरूरी है। अन्यथा, बहुत-सी चर्चा फिजूल जायेगी।

## 'हिंसा' और 'अहिंसा' की व्याख्या

बीज रूप से देखा जाये तो अहिंसा का अर्थ है—अपनी खुद की शारीरिक, वाचिक या मानसिक इच्छाएँ, कल्पनाएँ, आदर्श, सुख, आवश्यकताएँ आदि का दमन कर दूसरे जीव का सुख बढ़ाने या दुःख घटाने के लिए संतोषपूर्वक त्याग करने की वृत्ति। और हिंसा का अर्थ है दूसरे जीवों की शारीरिक, वाचिक या मानसिक इच्छा, कल्पना, आदर्श, सुख, आवश्यकता आदि की पर्वाह न करते हुए अपना ही सुख बढ़ाने या दुःख घटाने की वृत्ति।

इसमें दो बातें हैं। अहिंसा में दूसरे के लिए खुद खपने की और उसमें संतोष मानने की स्पष्ट वृत्ति होती है। हिंसा के लिए दूसरे को दुःख देने की, या उससे राजी होने की स्पष्ट वृत्ति आवश्यक नहीं है। केवल अपने को सुख हो, अथवा दुःख न हो और दूसरे के सुख-दुःख की पर्वाह न हो, इतना काफी है। यानी अहिंसा में स्पष्ट भावना खुद कुछ त्याग सहने की है। और हिंसा में स्पष्ट भावना स्वार्थ-सिद्धि की और जीवनाभिलाषा की है। जब जीवनाभिलाषा सुगमता से सिद्ध नहीं होती तब इस लापर्वाही में कठोरता पैदा होती है। यह कठोरता प्राणिमात्र में जो सहज हिंसा है उसका परिस्थिति के कारण बना हुआ विकृतरूप है। वह हमेशा आवश्यक नहीं होती। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि वह प्राणि-स्वभाव है।

कोई प्राणी जब दूसरो के प्रति उदासीन या निष्ठुर होता है, तब वह हिंसक बनता है। जब वह दूसरो के प्रति मोहवश, करुणा या अन्य किसी भावना से प्रेरित होकर अपनी उदासीनता या कठोरता छोड़कर उसकी चिन्ता करने लगता है, तब वह अहिसक बनता है। हरएक प्राणी मे ये दोनो वृत्तियाँ निसर्गसिद्ध है। दूसरो के लिए त्याग करने की वृत्ति का अगर कुदरत से ही अभाव होता और वह वृत्ति बाद मे कृत्रिमरूप मे प्राप्त की गयी होती, तो ससार मे प्राणि-सृष्टि सभव ही न होती। जन्तुमात्र अपनी सतान के लिए, और कई बार अपनी जाति तथा बन्धुओ के लिए, और कभी-कभी तो दूसरी जातियो के लिए भी नित्य या नैमित्तिक त्याग करता है, इसीलिए प्राणियो का सृजन और पालन हो सकता है। जिन योनियो में सामूहिक जीवन का विकास हुआ है उनमे यह वृत्ति विशेष परिमाण में बढी है। इन प्राणियो मे से मनुष्य एक है।

एक दृष्टि से देखा जाये तो मनुष्येतर प्राणियो में स्वार्थ-साधन की वृत्ति की अपेक्षा त्याग की वृत्ति अधिक बलवती पायी जाती है। स्वार्थ-सिद्धि के लिए वे दूसरे प्राणियो का नाश करते तो है, लेकिन उसमें बहुत-सी मर्यादाएँ होती है। कभी-कभी एक ही जाति के दो व्यक्तियो में लड़ाई होकर वे एक दूसरे की जान भी ले लेते है। परन्तु हिंस्र प्राणियो मे भी कभी ऐसा नही देखा जाता कि एक ही योनि के दो दल, एक दूसरे पर आक्रमण कर युद्ध कर रहे हो। एक जाति के चूहे दूसरी जाति के चूहो को भले ही मार डाले, लेकिन एक ही योनि के चूहो का एक समूह स्व-योनि के दूसरे समूह से दल बनाकर लडाई नही करता। मत-लब यह कि मनुष्येतर प्राणियो के जीवन मे आमतौर पर व्यक्तिगत हिंसावृत्ति है। दूसरी योनियो के प्राणियो के नाश के लिए हिंसा का

तात्कालिक सगठन भी क्वचित् पाया जाता है। परन्तु आमतौर
हिंसक सगठन अर्थात् सगठित हिंसा नही पायी जाती।

लेकिन जिन प्राणियो मे समूह-जीवन पाया जाता है उनमे थोड़े
अधिक परिमाण मे अहिंसक सगठन होता ही है। यह कहा जा सकता
है कि अहिंसावृत्ति के विकास के बाद ही प्राणियो मे समूह-जीवन की
योग्यता पैदा होती है। या यो कह लीजिए कि किसी कारण से समूह-
जीवन की अभिलाषा पैदा होने पर अहिंसक सगठन की आवश्यकता
प्रतीत होने लगती है। परन्तु प्राणि-जीवन का निरीक्षण करने से
निश्चितरूप से ज्ञात हो जायेगा कि अहिंसक सगठन और समाज-जीवन
का पारस्परिक समवाय-सबध है।

अहिंसक सगठन मे मनुष्य कोई अपवादरूप जन्तु नही है। मनुष्य
चाहे बिलकुल बर्बर अवस्था में हो या बिल्कुल अद्यतन 'सभ्यता'
अवस्था मे हो उसके लिए एक समाज के रूप मे जीवित रहना त
सभव है जबकि व्यक्ति व्यक्ति तथा परिवार के लिए, परिवार ज
के लिए, जाति राष्ट्र के लिए और राष्ट्र अखिल समाज के लिए, विवेक
या भावनाबल से त्याग करता है, चाहे यो कह लीजिए कि व्यवस्थि
समाज की स्थापना का ही दूसरा नाम अहिंसक सगठन है।

लेकिन मनुष्य और दूसरे प्राणियो मे एक बडा भेद है। पा
जानवरो के सिवाय दूसरे सारे प्राणी केवल प्राकृत है। वे प्रकृति
प्रेरणा से व्यवहार करते है और उसके नियमो के अधीन होकर र
है। स्वप्रकृति या बाह्यप्रकृति मे कोई परिवर्तन करने की कोशि
नही करते। मनुष्य भी अन्त में प्रकृति की प्रेरणाओ और नियमो के अ
ही तो है। लेकिन एक हदतक वह अपनी और बाह्य प्रकृतियो मे पार
वर्तन कर सकता है। यह परिवर्तन विकृत और सस्कृत दोनो तरह का

हो सकता है। अर्थात् मनुष्य प्राकृत, विकृत और संस्कृत—ऐसा त्रिविध प्राणी है। त्रिगुण (सत्त्व, रज, तम) के समान प्रकृति संस्कृति और विकृति भी हरएक मनुष्य मे थोडे या अधिक परिमाण में होती ही है।

इसलिए हर बात मे मनुष्य का व्यवहार दूसरे प्राणियो की अपेक्षा कुछ भिन्न रूप का होता है। उदाहरण के लिए मैं ऊपर कह आया हूँ कि मनुष्येतर जीवो मे नैमित्तिक संगठन का अपवाद छोडकर हिंसक संगठन नही होता। जीवनाभिलाषा होते हुए भी आमतौर पर स्वजाति-शत्रुत्व नही होता। बल्कि उनके व्यवहार से तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानो अहिंसक संगठन से ही जीवन का धारण-पोषण सुचारु-रूप से हो सकता है—ऐसी उनकी धारणा हो। अपने खाद्य प्राणियो के अतिरिक्त दूसरे प्राणियो को मारने की वृत्ति उनमे साधारण रूप से पैदा नही होती परन्तु मनुष्य में जिस प्रकार अहिंसक संगठन का विकास हुआ है उसी प्रकार हिंसक संगठन का भी बहुत बडा विकास हुआ है। स्वयोनि-शत्रुत्व-रूपी विकृति बहुत भद्दी तरह से प्रकट हुई है। इसलिए उस संगठन का उपयोग केवल खाद्य या पीडक जन्तुओ के संहार तक ही सीमित न रहकर वह निर्दोष प्राणियो की हत्या तथा स्वयोनि के लिए भी बेहद काम मे लाया जाता है।

हिंसक संगठन का, यानी लडाई की तैयारी का सवाल हमारे सामने क्यो उपस्थित होता है ? इसका एक ही कारण है। वह यह कि मनुष्य मे स्वयोनि-शत्रुत्व अमर्याद है। हजारो वर्षो के अनुशीलन से मनुष्यो में यह गुण रूढ हो गया है। परन्तु इतना ध्यान में रखना आवश्यक है कि यह गुण चाहे कितना ही प्राचीन क्यो न हो उसकी बदौलत प्रकृति में संस्कृति के बदले विकृति ही हुई है। जिस प्रकार तपेदिक या कोढ मनुष्य-समाज मे वेद-काल से विद्यमान होते हुए भी विकार ही है,

विकार ही रहेंगे और उखाड फेंकने के ही योग्य समझे जायेंगे, उसी प्रकार स्वयोनि-शत्रुत्व भी, चाहे बाबा आदम के जमाने से ही क्यो न चला आता हो, एक विकार ही है और उसकी जडे खोदना सस्कृति का उद्देश्य है।

## ४
## अहिंसा, न्याय और साहाय्य

उपर्युक्त सारी बाते स्वीकार करने पर भी एक प्रश्न रह जाता है "जो दूसरे के लिए सतोषपूर्वक त्याग करता है, उसके विषय में हमें कोई शिकायत नही है। लेकिन जब एक तरफ स्वार्थ-तृप्ति की विकृत वृत्ति हो और दूसरी तरफ, सतोषपूर्वक नही, वरन् लाचारी मे, त्याग करने की परिस्थिति हो, तो उस समय उस दूसरे पक्ष की स्थिति न तो 'प्राकृत' कही जा सकती है और न 'सस्कृत' ही। उसे तो विकृति ही कहना होगा। आपकी ही व्याख्या के अनुसार जिसमे त्याग हो परन्तु सतोष न हो, उसे अहिंसा नही कह सकते। चाहे उसे 'भय' या 'नि सहायता' या और किसी दूसरे नाम से पुकारिए। लेकिन यह तो मानना ही पडेगा कि वह विकृति है। इस प्रकार जब उभयपक्षो में विकृति हो तब न्याय के रूप में एक विवेक पैदा होता है, जो स्वार्थ-साधु पक्ष का निग्रह और त्रस्त पक्ष की सहायता के लिए नि स्वार्थी मनुष्य को प्रेरित करता है। चिडिया बिल्ली का भक्ष्य है। इसलिए अगर बिल्ली चिडिया को पकड ले तो दरअसल हमें बिल्ली पर गुस्सा आने का या दखल देने का कोई कारण नही होना चाहिए। लेकिन हम यह साफ देखते है कि चिडिया अपनी खुशी से बिल्ली का शिकार नही बनती। बल्कि विवश होकर अपनी प्राण-हानि सहन कर लेती है और अधिक निर्बल है। इसीलिए, हमारे अन्दर एक न्याय-वृत्ति जाग्रत होकर वह हमे चिडिया

को वचाने की गरज से विल्ली का निग्रह करने को प्रेरित करती है इसमे विल्ली को वाज दफा एकाध धौल भी खानी पडती है। यदि विवेक से देखा जाये तो विल्ली पर गुस्सा आने का कोई कारण नही है उस-पर भी दया ही आती है। लेकिन फिर भी अगर दुवारा वैसा मौका आये तो हम फिर वही करेगे जो अब किया है, क्योकि जब वलवान और निर्वल मे अपने-अपने स्वार्थ के लिए सघर्ष पैदा होता है, तो वलवान का निग्रह और निर्वल की मदद करने की एक वलवान वृत्ति हमारे अन्दर उठती है। इसे अहिंसा कहा जाये या हिंसा? अव अगर सयोग से हम या दूसरी चिडियाएँ उस चिडिया के अन्दर किसी उपाय से विल्ली को हराकर आत्मरक्षा करने का वल पैदा कर सके, तो उस वल को विकृति क्यो कहा जाये? वल्कि यह क्यो न कहा जाये कि हम या वह चिडिया अधिक सस्कारी वनी?

यहाँ चिडिया और विल्ली भिन्न योनि के जन्तु है, यह वात सही है। कदाचित् आप कहेगे कि उनके लिए दूसरा नियम होगा और मनुष्य मनुष्य के व्यवहार के लिए दूसरा, लेकिन यह क्यो? अगर आदमियो मे भी एक व्यक्ति या समूह विल्ली जैसा वन गया हो और दूसरा चिडियो जैसा तो वहाँ भी यही नियम क्यो न लागू किया जाये? इसलिए आपके इस हिंसा-अहिंसा के पृथक्करण में न्याय-वृत्ति का स्थान कहाँ है? सो तो समझाइए।"

अव इसका विचार करे।

विचार करने से ज्ञात होगा कि न्यायवृत्ति केवल मानवी वृत्ति है। दूसरी प्रकृतिवश प्राणियो मे न्यायवृत्ति जैसी कोई प्रेरणा नही है, उनमे मातास्नेह-वृत्ति की प्रेरणा है। खुद कष्ट सहकर भी स्वयोनि के या दूसरी योनियो के जन्तुओ की सहायता करने की वृत्ति प्राणिमात्र में पायी जाती

है। इसी के मानुषरूप को हम "न्यायवृत्ति" सज्ञा देते हैं। मतलब न कि न्याय-वृत्ति प्राणि मात्र मे पायी जानेवाली साहाय्य-वृत्ति का ही ए रूप है।

साहाय्य वृत्ति के क्षेत्र मे व्यक्ति केवल अपने लिए काम नहीं क सकता। दूसरे प्राणी या दूसरो के साथ वह स्वय आ सकता है। केव अपने लिए प्रयत्न करना साहाय्य वृत्ति नही है। वह तो महज जीव भिलाषा—प्रकृति-धर्म-गत हिसा—है दूसरो के लिए खपना साहाय्य वृ है। उसमे सतोषपूर्वक खुद त्याग करने की वृत्ति है। इसलिए वह अहि के क्षेत्र में आती है।

लेकिन दूसरी सारी वृत्तियो की तरह साहाय्य वृत्ति ने भी मानव योनि मे विकृत और सस्कृत दोनो रूप लिये है। मूलभूत प्रश्न यह नह है कि न्यायवृत्ति अहिसक है या हिसक, वल्कि यह कि उसके कौन से त प्राकृत है, कौन से विकृत और कौन से सस्कृत? न्यायवृत्ति—साहाय्य वृत्ति—अहिसा से भिन्न नही है। इसलिए अहिसा की शुद्धि, वृद्धि और सस्कृति मे ही न्यायवृत्ति का परिपोष हो सकता है।

इसलिए यह प्रश्न छोडकर हम अहिसक सगठन के मूल प्रश्न क ही विचार करें।

## ५

## आत्म-रक्षा का प्रश्न

इसपर भी पाठक शायद पूछेगे—

"थोडी देर के लिए आपका यह सारा कथन मान भी ले तो भी हमारे सामने सवाल यह है कि स्वयोनि-शत्रुत्व चाहे एक विकार भले ही हो परन्तु आज वह मनुष्य-समाज में विलकुल दृढ हो गया है। इसलिए हमें यह डर सदा बना रहता है कि मनुष्यो की कोई न कोई

टोली हमपर धावा न बोल दे। इन टोलियो पर दूसरी तरह के सस्कार करने का कोई साधन हमे प्राप्त नही है। उनके नेता तो उनका यह विकार बढाने की ही कोशिश करते रहते है और निर्बल टोलियो के सहार के लिए बहुत बडी तैयारी करने मे जुटे रहते है। ऐसी दशा मे सिवाय बलवान हिंसक सगठन के हमारे सामने दूसरा चारा ही कौन-सा है?"

यदि यह सवाल आज हमारे सामने व्यवहार्य रूप मे उपस्थित हो जाये——यानी हमे दरअसल पूर्ण स्वराज्य हासिल हो जाये और अपने देश का भला-बुरा जो चाहे सो करने की आज़ादी मिल जाये——तो मै यह मानता हूँ कि देश की रक्षा के लिए मौजूदा हालत मे हमे किसी-न किसी परिमाण मे हिंसक सगठन की आवश्यकता रहेगी, क्योकि देश की रक्षा के लिए जो विशेष अहिंसक सगठन चाहिए उसकी तैयारी हम अब तक नही कर पाये है। इसलिए जिस प्रकार काग्रेस की प्रातीय सरकारो को पुलिस की नित्य और फौज की नैमित्तिक मदद लेनी पड रही है और उस रूप में हिंसक सामग्री तैयार रखनी पड रही है उसी तरह यदि आज ही स्वराज मिल जाये तो अखिल भारतीय काग्रेस सरकार को भी—बावजूद इसके कि उसका ध्येय अहिंसक है—वही करना पडेगा।

लेकिन हमारे सामने आज यह प्रश्न उसके व्यवहार्य रूप में प्रस्तुत नही है। आज जिनपर देश-रक्षा की जिम्मेदारी है, उनका इस सम्बन्ध मे इतना निश्चय है कि भले ही भारतवर्ष एक आवाज से हिंसक साधनो का निषेध क्यो न करता रहे और उस दिशा मे उनके प्रयत्न में बाधा क्यो न डालता रहे, तो भी वे अपना स्वार्थ जानकर हिन्दुस्तान को विदेशी आक्रमण से बचाने के सब आवश्यक उपाय करेगे।

इसलिए हमारे सामने यह प्रश्न आज ही समाधान के लिए उपस्थित

नही है। वल्कि इस रूप मे पेश है कि भविष्य मे अगर अहिंसा मे त
हल करना हो, तो वह कहाँ तक सभव है और अगर मभव हो तो उस
लिए आज ही से कौन-से उपाय करने चाहिएँ ?

इस सम्बन्ध मे एक महत्त्वपूर्ण वात ध्यान मे रखनी चाहिए। व
यह कि जितना ही किसी प्रजा का अहिंसक सगठन वलवान होगा उतना
ही उसका हिंसक सगठन भी वलवान हो सकता है। अगर अहिंसा का
सगठन निर्वल हो तो हिंसा का सगठन भी निर्वल रहेगा, क्योंकि
जिस मात्रा मे कोई प्रजा सुसगठित, व्यवस्थित, स्वावलम्वी और एक
होगी उसी मात्रा मे वह दूसरी प्रजा का सामना करने के लिए सुसग
ठित, व्यवस्थित और एकदिल हो सकेगी। जिस प्रजा मे भीतरी
फूट, अव्यवस्था, परावलम्वन, वहुशाखावुद्धि आदि दोष हो वह वल
वान हिंसक सगठन भी नही कर सकेगी। अगर हिंदुओ को मुसल
मानो के खिलाफ, मुसलमानो को हिन्दुओ के खिलाफ, या सारे हिन्दु
स्तानियो को अग्रेजो के खिलाफ अथवा सारे साम्राज्य को जापान,
जर्मनी आदि के खिलाफ हिंसक उपाय काम मे लाने हो, तो हरएक को
अपने-अपने उद्देश्य के अनुसार अपने-अपने दायरे मे--यानी सारे हिंदुओ
को, सारे मुसलमानो को, सारे हिन्दुस्तानियो को या साम्राज्यान्तर्गत
सारी प्रजाओ को आपस में--सच्चे दिल से एकता करनी पडेगी।
अगर हिन्दुओ मे आपस की फूट हो, मुसलमानो मे भीतरी सघर्ष हो
या हिन्दुस्तानियो मे आपसी झगडे हो अथवा साम्राज्य की भिन्न-भिन्न
प्रजाओ में अन्त कलह हो तो दुश्मन के खिलाफ वलवान हिंसक सगठन
भी नही किया जा सकता।

मतलव यह कि जिस तरह असत्य की कोई स्वतन्त्र प्रतिष्ठा नहीं
है उसे किसी न किसी सत्य के आधार पर ही खडा होना पडता है उसी

तरह हिंसक संगठन की भी कोई स्वतंत्र प्रतिष्ठा नहीं है। अहिंसक संगठन की नींव पर ही उसका निर्माण हो सकता है।

इतना तो हमें निर्विवाद रूप से मानना ही पड़ेगा कि स्वाधीनता प्राप्त होने पर अफगानिस्तान, रूस, जर्मनी, जापान वगैरा का मुकाबला करने के लिए हमें हिंसक साधनों से काम लेना पड़े या न पड़े, तो भी हमारे अपने देश का बलवान अहिंसक संगठन करना नितान्त आवश्यक है। इसके बिना न तो हम हिंसा का बलवान संगठन कर सकेंगे और न आत्मरक्षा ही।

हिंसा के संगठन से हम युद्ध का साज-सामान, फौजी तालीम और वफादार फौज—इतना अर्थ समझते हैं। इसमें युद्ध का साहित्य कितना और किस प्रकार का हो यह तो उस जमाने के वैज्ञानिक आविष्कारों पर निर्भर रहेगा। आखिर वह निर्जीव साधन है। वहां सवाल सिर्फ पैसे का और भंडार भरने का ही है। लेकिन फौज जीवित साधन है। इसलिए उसका उचित प्रकार से शिक्षित होना मुख्य चीज है। अगर आज्ञा पालन करनेवाले शिक्षाप्राप्त निष्ठावान सिपाही न हों तो सारे अद्यतन साधनों के होते हुए भी विजय प्राप्त नहीं हो सकती।

किसी भी देश में इस प्रकार के सैनिकों की संख्या कुल जनसंख्या का एक छोटा-सा अंश ही होती है। लड़ाई छिड़ जाने पर भी प्रत्यक्ष युद्ध-कार्य में लगे हुए सैनिक या सेना के साथवाले लोग बहुत नहीं होते। उनसे कई गुने ज्यादा सैनिकेतर नागरिक अपने-अपने घरों में होते हैं। वे कई तरह की असुविधाएँ सहकर और कई प्रकार का त्याग करके सारा काम चलाते हैं और सैनिकों की मदद करते हैं। सैनिक वर्ग में आम तौर पर केवल हट्टे-कट्टे नौजवान ही होते हैं, शेष सारी आबादी उनका अहिंसक संगठन के द्वारा, लेकिन हि

श्रद्धा हो जाने के कारण युद्ध जारी रखने मे मदद करती है। सुद त्याग करके सहायता करने की आम जनता की यह तत्परता ही बहुत वडी मात्रा मे युद्ध की सफलता का कारण होती है। हिंसक युद्ध के लिए भी असैनिक जनता का यह अहिंसक सगठन अनिवार्य है।

आंकडे देखने से विदित होगा कि सौ में पच्चीस आदमी भी हिंसा के प्रत्यक्ष कार्य मे भाग नही लेते। लेकिन इन पच्चीस नौजवानो को मौका आने पर खून करने को प्रवृत्त करने के लिए हमे जनता के दिल मे यह विकार निरन्तर पैदा करना पडता है कि मानो हिंसा ही जीवन-निर्वाह की कुजी हो। सुनने मे मजेदार मालूम हो, ऐसी युद्ध-कथाएँ रचकर जिन्हे हमने अपना दुश्मन मान लिया है उनके प्रति वचपन से ही द्वेष पैदा करने के लिए सच्ची और झूठी वाते गढ कर द्वेप-वुद्धि से ओतप्रोत वातावरण वनाना पडता है। इस सारे प्रयास का फल इतना ही निकलता है कि होनहार तरुणो का एक ऐसा छोटा-सा दल तैयार होता है जो विपक्ष के जितने आदमी हाथ उठा सके उनके प्रति आततायी के जैसा व्यवहार करने के लिए प्रवृत्त होता है और मनुष्यो में स्वयोनि-शत्रुत्व रूपी विकृति जीवित रखता है। यह विकृति प्रकृति विरुद्ध, नीतिविरुद्ध, और अध्यात्मविरुद्ध है।

अव मान लीजिए कि व्यापक हिंसा करने के लिए प्रजा में जिस अहिंसक सगठन की आवश्यकता है, वह सव हम अच्छी तरह कर रहे है। सारी प्रजा में एकता स्थापित करते है। आपस के धार्मिक, प्रान्तीय, जातीय और आर्थिक कलह और अन्याय निपटाते है। जनता को स्वावलम्वन से अपने सारे काम करने की शिक्षा और प्रेरणा देते है। उसे सयम और परिश्रमशीलता की आदते डालते है। एक दूसरे के लिए त्याग करने की निसर्गदत्त वृत्ति का सिंचन और अनुशीलन कर उसे पुष्ट

करते है। "मनुष्य जाति को दूसरे प्राणियो की अपेक्षा स्मृति, तर्क, विवेक, भाषा आदि की जो विशेष देन मिली है उसका उद्देश्य मनुष्य-जाति के एक छोटे-से अग के भोग-विलास की सिद्धि नही है। बल्कि इसके द्वारा समग्र मानव-जाति का और दूसरे प्राणियो का भी हित-सम्पादन होना चाहिए।"—इस प्रकार के सस्कार भी देते जा रहे है तो जिस प्रकार हिंसक राज्य हिंसक सेना के लिए विकारवश जनता मे से कुछ बहादुर और साहसी सिपाही पाने की उम्मीद रखते है, उसी प्रकार ऐसे सस्कारी जनता मे से कुछ बहादुर, साहसी परन्तु अहिंसक सैनिक पाने की आशा क्यो न की जाये ?

'प्राणास्त्यक्त्वा धनानि च' की वृत्तिवाले बहादुरो की जरूरत दोनो तरह के सगठनो के लिए होगी। दोनो में स्वदेशभक्ति की जरूरत समान होगी। परन्तु जहाँ हिंसक फौज को, जिसे उसने अपना शत्रु माना है उस जनता के प्रति घोर द्वेषबुद्धि से विकृत होना पडता है, वहाँ अहिंसक सेना को शत्रु के प्रति भी करुणा तथा दया की और उसके हित के लिए त्याग करने की प्रफुल्लतर वृत्ति का विकास अपने अन्दर करना पडेगा। उचित पद्धति से प्रयत्न करने पर यह असम्भव क्यो माना जाये ?

शूरता सिर्फ हिंसा मे ही बसनेवाला गुण नही है। वह एक स्वतत्रवृत्ति है। वह हिंसक मनुष्य मे भी हो सकती है और अहिंसक मनुष्य मे भी। हमारे देश के सतो ने यह भेद बहुत पुराने जमाने में ही जान लिया था।

सती शूर अरु संत का, तीनो का एक तार।
जरे मरे, सुख परिहरे, तब रीझे करतार॥
तब रीझे करतार, सर्व संसार सहावे।
नहि तो होत खुवार, हार जित सद ही जावे॥

शाश्वत ब्रह्मानन्द महा दृढ अचल मनो का ।
तीनो का एक तार, शूर अरु मंत, सतो का ॥

६

## अहिंसक संगठन की अमूल्यता

लेकिन इतने से शायद पाठक को संतोष नहीं होगा । वह कह
कि, "मान लीजिए कि सन्तो के वृन्द बनाने के अभिप्राय से आ
सिपाहियो की सेना नही बनायी । लेकिन आपकी अहिंसा-निष्ठ म
प्रस्तुत होने से पहले ही कोई शत्रु हमारे देश पर धावा बोल दे तो द
की क्या हालत होगी ? आप तो लोगो को अहिंसा की ही शिक्ष
रहेगे और उनपर उसी के सस्कार करते रहेगे, तब सिपाहियत के लि
कठोरता के जिन गुणो की जरूरत है, उनका विकास कैसे होगा औ
ऐसी स्थिति में क्या हमारी फजीहत नही होगी ?"

थोडा विचार करने से मालूम होगा कि इस प्रकार का अन्दे
करने की वजह नही है । अहिंसक सगठन जितना दृढ होगा, उतना ह
उसकी बदौलत, मौका पडने पर, सशस्त्र फौज तैयार करना आस
होगा, न कि मुश्किल, क्योकि जनता मे एकता, सहयोग, त्यागवृ
स्वावलम्बन आदि गुणो का विकास हुआ होगा और जैसा कि ऊ
कहा जा चुका है, अनुशासनयुक्त वीरता का भी उसमें उत्कर्ष ह
होगा । ऐसी जनता के लिए युद्ध का कर्तव्य उपस्थित ही हो जाये
उसे सज्जित होने में देर नही लगेगी । अबतक सन्तो की सेना नहीं
सकी, इसका इतना ही अर्थ है कि लोगो मे किसी न किसी अश
मारकवृत्ति विद्यमान है ।

इसके अलावा, सूक्ष्म हिंसा, यानी जीवनाभिलाषा, देहधारियो मे
कभी पूर्णरूप से नष्ट नहीं होगी । वह अनुशासन में रह सकती है, विक्

हो सकती है, किन्तु नष्ट नही होगी। संस्कृति की अपेक्षा विकृति एक बडी भारी क्षमता यह है कि उसका वेग गुणाकार पद्धति से ता है। ऊपर चढने के लिए हर कदम पर परिश्रम करना पडता है, क्ति लगानी पडती है, लेकिन नीचे गिरने के लिए केवल एक धक्का फी है। वाकी की सारी क्रिया उत्तरोत्तर अधिक वेग से अपने आप ती है। आवश्यकता तो उस वेग के नियमन की होती है। मतलब कि विकृति को अनुशासन के बन्धन की जरूरत है। सुसंगठित नता मे अहिंसा का अनुशासन थोडा-सा शिथिल होते ही हिंसा अपने ाप जोर पकडती है। इसलिए अहिंसा के संस्कार की बदौलत हिंसक विन नष्ट होने का अन्देशा कतई नही है।

सच तो यह है कि प्राणिमात्र को जिस वस्तु का ज्ञान अनजाने, भाविक रूप से, मिलता रहता है, उसका महत्त्व तथा उसके विकास में ायी हुई सफलता या रही हुई त्रुटियाँ, वे विचार के बिना महसूस नही रते। परन्तु जिस चीज के पीछे उन्होने कृत्रिमरूप से बहुत मेहनत ी हो उसका महत्त्व और उसमे की हुई प्रगति वे कभी नही भूलते। म अपनी मातृभाषा बाल्यावस्था से ही अनजाने सीखते रहते है। अन्य ापाभाषी पडोसी हो तो उनकी भाषा भी बोलने लगते है, लेकिन सका महत्त्व या उसमे की हुई तरक्की का अन्दाज लगाने की हमें भी नही सूझती। लेकिन अंग्रेजी भाषा हम बडी मेहनत से सीखते है, सलिए उसका महत्त्व महसूस करते है और उसमे की हुई तरक्की भी मय-समय पर नापते है।

अबोधपूर्वक हुई प्रगति और ज्ञानवृद्धि के विषय मे हमे इतना अज्ञान ोता है कि उसमे बुद्धिपूर्वक प्रगति करने की बात छेडनेवालो को कभी-ी विरोध का सामना करना पडता है। जिनके दोनो पैर साबित है,

उसके लिए चलना, दौडना या अटारी पर चढना सहज है। वह सम-
है कि इसमे सीखने की कोई बात ही नही। इसलिए अगर कोई व्याय-
विशारद यह कहने लगे कि चलना, दौडना और चढना भी एक क-
है, जो हमे परिश्रम से सिद्ध करनी चाहिए, तो कई लोग उसपर हँसें
परन्तु बिच्छूचाल चलना, तैरना, घोडे पर सवारी करना, सा-
चलाना आदि श्रमसाध्य कलाओ का महत्त्व हमारी समझ में तुरन्
जाता है।

अहिंसा-हिंसा पर भी यही नियम घटित होता है। ससार में अ-
की—दूसरे के लिए खुद खपने की—एक बलवान प्रेरणा जन्तुमात्र
स्वभाव से ही है। इसीलिए अनेक प्राणी झुड बनाकर रह सकते हैं
दीमक, मधुमक्खी और चीटियो से लेकर मनुष्य तक अनेक जन्तु अ-
अपनी हैसियत के अनुसार व्यवस्थित समाजरचना तथा छोटी
रूप-रचना भी करते है। उन सबमे नियमन, दड, शासन आदि होते
सही लेकिन यह मानना गलत होगा कि हर घडी समाज इन्ही की बदौ-
चलता है। ये बाते अपवाद रूप है और जिस मात्रा मे अहिंसक स-
बलवान होगा उसी मात्रा में ये साधन कम काम मे लाये जायेंगे।

इन उपायो के उपयोग की आवश्यकता दवा या इजेक्शन की आ-
श्यकता के समान विकृति का लक्षण है। कभी-कभी विकृति स-
बीमारी की तरह फैल सकती है। उस मौके पर इन उपायो का
पैमाने पर और व्यवस्थित रूप में लाने की नौबत आती है। ले-
इन कभी-कभी होनेवाली विकृतियो का इलाज करने के लिए मनु-
समाज ने हद से ज्यादा मेहनत की है। इसलिए उसकी ऐसी श्रद्धा
गयी है कि विकृति का इलाज करना ही अध्यात्म है, वही ध- है
वही विज्ञान है, वही एकमात्र जीवनकला है, समाज-व्यवस्था और

कारण मे वही नीति है। दण्डनीति और युद्ध-कला के बडे-बडे जबरदस्त शास्त्र मनुष्यो ने बनाये है।

मै मानता हूँ कि मनुष्य ने बडी मेहनत और सैकडो साल के तजुर्बे से ये शास्त्र बनाये है। लेकिन यह प्रश्न अवश्य विचारणीय है कि समाज से जो दोष नष्ट करने के लिए यह उपाय-योजना करनी पडती है, वे दोष अबतक नष्ट क्यो नही होते? कहा जाता है कि यूरोप से कोढ रोग बिलकुल मिट गया, चेचक भी जाता रहा है। इसलिए मै यह मानने को तैयार हूँ कि जिन उपायो से ये बीमारियाँ नष्ट हुई उनमे कुछ उपाय-योजना थी। लेकिन स्वयोनि-शत्रुत्व के मर्ज पर ऐसा कोई असर होता हुआ नजर नही आता। इसलिए मेरी यह धारणा है कि इसमे कोई-न-कोई गलती जरूर है।

यह नुक्स कौन-सा हो सकता है? हमारे समाज-जीवन की नीव ही, जिसपर हमने यह सारा हिंसक सगठन का ढाँचा खडा किया, कमजोर है। उसपर इमारत बनाने के पहले जितनी मेहनत ली गयी, जिन पत्थरो से उसे पाटा गया और जिन तत्त्वो से उन पत्थरो की जुडाई की गयी—वह सारा सामान रद्दी था, उसका वैज्ञानिक शोध भी ठीक-ठीक नही हुआ। उसपर मेहनत तो बहुत ही कम ली गयी। फलस्वरूप जिसप्रकार नालन्दा के विश्वविद्यालय की इमारतो की अटारियो और ऊपर के हिस्सो में भव्य और विशाल रचना होते हुए भी नीव की जमीन ही कच्ची होने के कारण कई बार इमारते बनाने पर भी वे सब निकम्मी ठहरी और उनको छोड देना पडा। उसीतरह हमारी समाज-रचना तथा संस्कृति का बाह्यरूप भव्य और शोभनीय दिखायी देता है, लेकिन ज्योही वह पूर्णता को पहुँचना चाहता है, त्योही अपने ही बोझ से दबकर ढह जाता है।

इसलिए हमें सम्स्कृति की बुनियाद का ही विचार करना चाहिए और उसीका शास्त्र पहले सीखना चाहिए। और अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि समाज-रूपी मदिर की सुरक्षितता उसके अहिंसक सगठन पर निर्भर है न कि हिंसक सगठन पर। हरएक आदमी चल और दौड सकता है, लेकिन फिर भी चलने दौडने का एक खास शास्त्र है ही। उसी तरह प्राणिमात्र की कुदरती अहिंसा-वृत्ति का शास्त्रीय ढग से अनुशीलन होना और समाज-रचना मे उसका शास्त्रीय ढग से सगठन होना जरूरी है। उसपर बनायी हुई इमारत भले ही देखने में सीधी-सादी लगे तो भी वह टिकाऊ और सुखदायी होगी, लेकिन कच्ची बुनियाद पर बनी हुई खूबसूरत लगनेवाली इमारत न तो मजबूत होगी और न आरामदेह।

चश्मा, बूट-सूट, बेत और अपटूडेट वेष-भूषा से सजे हुए किसी चिररोगी युवक के विषय में यह कहना कि वह सलोना दीखता है, विरूप को सुरूप कहने के बराबर है। उसी प्रकार मनुष्यो की हिंसा पर मनुष्यो ने जिस समाज-रचना का निर्माण किया है, उसे सस्कृति के नाम से पुकारना विकृति को ही सस्कृति मानना है।

सब प्राणियो में हिंसावृत्ति भी है ही। जीवनाभिलाषा का ही वह दूसरा नाम है। लेकिन उसका इलाज हिंसात्मक सगठन नहीं बल्कि शास्त्र शुद्ध अहिंसात्मक सगठन है। उचित उपायो और उचित ढग से हरएक को जीवननिर्वाह का सुयोग मिले तो यह हिंसा-वृत्ति सतुष्ट हो जाती है। किसी व्यक्ति में एकाध मर्ज की तरह, या बाज दफा, सारे समाज में छूत की बीमारी की तरह, वह फट पडे तो उसका निवारण करना चाहिए। लेकिन ऐसा करने में भी ऊपर-ऊपर के उग्र उपचार करने की अपेक्षा, 'व्यक्ति अथवा समाज की नीव में कहां कमजोरी पैदा हो गयी है'—इसी की धैर्य से खोज करनी चाहिए।

## ७

## वीरता और अहिंसा

हम लोगो मे इस वहम ने घर कर लिया है कि हिंसावृत्ति और शूरता एक ही गुण है और हिन्दुस्तान मे अहिंसा पर ही वेहद जोर दिया गया, इसलिए वह पराधीन होता गया।

मै ऊपर कह चुका हूँ कि हिंसा और शौर्य ये दोनो बिल्कुल भिन्न वृत्तियाँ है। कोई जीव हिंसक होकर भी कायर हो सकता है और अहिंसक होकर भी बहादुर हो सकता है। बहुधा ऐसा देखा गया है कि जहाँ हिंसा होती है वहाँ भय भी है। जिसमे स्पष्ट साहसिकता है ऐसी शूरता शायद अहिंसा के साथ हमेशा न पायी जाये। लेकिन वह अहिंसा के साथ होती ही नही ऐसी बात नही है। हिंसा, अहिंसा, साहस, शौर्य आदि एक वृत्ति के रूप में मनुष्य मे सहज है। लेकिन गुण के रूप मे ये मेहनत के साथ किये हुए अनुशीलन मे ही प्रकट होते है।

यह कोई नही साबित कर सकता कि हमारे देश मे किसी भी जमाने मे वीरता का गुण बहुत कम रहा हो। कम-से-कम खास जातियो ने निरन्तर परिश्रमपूर्वक उसका विकास किया। लेकिन अहिंसा—विशेषकर संगठित सामाजिक अहिंसा—के गुण की कमी हमेशा पायी गयी है। चाहे महाभारत-काल का, चाहे राजपूतो का, चाहे मुगलो का, चाहे सिक्खो या मराठो का इतिहास ले लीजिए। आप यही पायेगे कि अश्वत्थामा-कृष्णविवाद, शल्य-कर्ण विवाद, जयचन्दी फूट की परम्परा अविच्छिन्नरूप से चली आयी है। कुरुक्षेत्र के युद्ध से लेकर पानीपत के युद्धतक सेनापति के मरने पर सेना मे अन्धाधुन्धी, आपस मे लड़ाई और अन्त में पलायन—यही हमारा इतिहास रहा है। इसमे व्यक्ति की हैसियत से सेनापति या सैनिको मे वीरता का अभाव नही दिखायी देता। बहादुरी

और हिम्मत की कमी नही है। परन्तु प्रेम, अनुशासन और कर्तव्यबुद्धि की व्यापकता तथा उनका सगठन बिल्कुल नदारद है।

वह नेताओ मे ही नही है, इसलिए जनता मे भी नहीं है। बुद्धि भेद और वैमनस्य पैदा करनेवाला तर्ककौशल सदा सुलभ रहा है। लेकिन सबसे मेल करनेवाली बुद्धि और कर्मकौशल सदा दुर्लभ रहा है, क्योकि हमारे अन्दर आम तौर पर अहिंसा एक असंस्कृत और मूढवृत्ति के रूप मे होते हुए भी उसका सामाजिक अनुशीलन कभी नहीं किया गया।

हम बडे गर्व से कहते है कि हमारे देश में 'अहिंसा परमोधर्म' 'सत्यमेव जयते' आदि घोष ( नारे ) विद्यमान है। हमारे सन्तो ने ब्रह्मचर्य, सयम, इन्द्रियनिग्रह, आत्मानात्मविवेक, भूतदया, वैराग्य आदि का बार-बार और जोर से उपदेश किया है। इसलिए साधारण रूप से हमारी ऐसी धारणा हो गयी है कि हमारी आध्यात्मिक सस्कृति देशव्यापी है। कोई-कोई तो ऐसा भी मानते है कि हमने इन गुणो का अतिरेक ही कर डाला है।

लेकिन इन उपदेशो का एक दूसरी दृष्टि से भी विचार किया जा सकता है। जो गुण किसी समाज में व्यापक रूप मे पाये जाते हो, उनका बार-बार उपदेश करने की प्रवृत्ति साधारणत नही होनी चाहिए। जिन गुणो का समाज मे अधिक अनुभव नहीं होता, मगर जिनकी आवश्यकता तो प्रतीत होती है, उन्ही पर उपदेशक जोर देगा। उपर्युक्त गुणो का सन्तो ने निरन्तर उपदेश दिया, इसका यही कारण हो सकता है कि उन्होने समाज में इन गुणो का अस्तित्व पर्याप्त परिमाण मे नही पाया। यह उपदेश करनेवाले सन्तो ने दूसरी भी कुछ बातें समय-समय पर कही है। उन्होने कहा है कि "ससार स्वार्थमय है, हमारे आत्मीय और सगे सम्बन्धी सभी अपना-अपना स्वार्थ देखते है, कोई किसी का नि स्वार्थ

ाप्त नही है।" इसमे यह पता चलता है कि उन्हे जीवन मे क्या
नुभव होता था, पारमार्थिक वित्तवालो के लिए उस वृत्ति के विकास
, रास्ते मे हमारा समाज कौन कौन-सी कठिनाइयाँ उपस्थित करता
ा और इसलिए सबका त्याग करना ही एकमात्र मार्ग क्यो समझा गया ?

इसके विपरीत हमे उन गुणो का भी विचार करना चाहिए जो
हममे नही थे और न जिनके लिए हमारी भाषा मे कोई शब्द ही थे।
बल्कि जिनके समान वृत्तियो का हमारे सन्तो ने निषेध भी किया।
उदाहरण के लिए, 'स्वदेशभक्ति' या 'स्वदेशाभिमान' शब्द हमारे पुराने
साहित्य में नही पाये जाते। वर्णाभिमान, जात्यभिमान आदि का सन्तो ने
प्रबल निषेध किया है, क्योकि इस देश मे ऐसा विरला ही कोई रहा
होगा जो अपनी भूमि से प्रेम न करता हो। अपना खेत, अपना गाँव या
अपना प्रान्त छोडने की वृत्ति हममे बडी मुश्किल से पैदा होती है।
उनसे बिछुडने मे हमे अत्यधिक दुःख होता है।

किसानो मे तो इतना जबरदस्त भूमिप्रेम पाया जाता है कि खेत
की कानूनी मालकियत से हाथ धो बैठने पर भी उसपर अपना कब्ज़ा
जमाये रखने के लिए वे अपनी जान लडा देंगे। हमारा वर्णाभिमान
और जात्यभिमान तो मशहूर ही है। स्मृतिकारो ने उसका इतना ज़बर-
दस्त शास्त्र बना रखा है कि बुद्ध और महावीर से लेकर आजतक हर-
एक सन्त के उसकी निन्दा करने पर भी, हमारे समाज से उसकी प्रबलता
नष्ट नही हुई।

बुद्ध से लेकर गाधी तक इस देश मे जो महान् प्रवर्तक हुए उन
सबने साधारण जनता के लिए पाँच ही नियम बतलाये है।—चोरी न
करो, व्यभिचार न करो, शराब न पिओ, मास न खाओ, झूठ न बोलो।
इन पांच मे से मास का निषेध करने की तो आज किसी की हिम्मत ही

नही होती। और अगर कोई हिम्मत करे भी तो उसकी कोई मा
नही। लेकिन इसपर से कि ढाई हजार वर्षो मे हमे लगातार अन
ही नियमो का उपदेश करना पड रहा है, हमारी सर्वसाधारण सम
के रूप का पता चलता है।

मतलब यह कि, अहिसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय आदि के विषय में ह
देश मे विपुल साहित्य और प्रचुर उपदेश उपलब्ध है। इससे
अनुमान करना गलत होगा कि सत्वगुणसपन्न सम्पत्ति हमारी जनता
प्रकृति ही है। इतना ही कहा जा सकता है कि हमारी प्रकृति का
गुणो द्वारा सस्कृत करने का प्रयास सैकडो वर्षों से हो रहा है। व
महापुरुषो ने इसके लिए अपनी सारी उम्र बिता दी। लेकिन फिर
यह नही कहा जा सकता कि हमने कोई विशेष प्रगति की। कारण
कि उनके कार्य मे विकृतिग्रस्त लोगो ने विघ्न डालने में कुछ उठा
रक्खा। तथापि अहिसा-प्रेरित मनुष्य उस प्रयत्न को छोड नही सक

## ८
## वास्तविक आवश्यकता

"अगर जर्मनी या जापान का आक्रमण हो जाये तो हम कौन
अहिसक इलाज करे यह आज ही बतलाओ।"—ऐसा प्रश्न अप्रासं
है। आज हमारे सामने जो प्रश्न उपस्थित है वह तो यह है कि "अंग्रे
के और हमारे बीच परतन्त्रता का जो बन्धन है वह कैसे का
जाये, और हम स्वाधीन किस तरह बने?" हिसावादी भी यह महस
करते है कि इसका कोई व्यवहार्य हिसक उपाय अबतक प्राप्त न
हुआ है। यह उन्हे भी हमारी अहिसा शुद्ध भले ही न रही हो, लेकि
मानना पडेगा कि जैसी कुछ अशुद्ध और स्थूल अहिसा का हमने प्रयो
किया उसकी बदौलत हमे थोडी बहुत सफलता भी मिली। इसलि

व्यवहारचातुर्य तो इसी मे है कि समझदार लोग हिंसा के बाल की खाल निकालने के बदले अहिंसा के सेनापति के बतलाये हुए तरीके से उसे शुद्ध और सगठित करने की कोशिश मे जुट जाये।

अगर हम आजादी चाहते हैं तो सारा देश एक होना चाहिए। जात, पाँत, वर्ण, धर्म और प्रान्त के द्वेष नष्ट होने चाहिएँ, प्रजा का आन्तरिक व्यवहार न्याय और नीति के अनुसार चलना चाहिए। बलवानो को निर्बलो के लिए खपना चाहिए। उनके शोषण से बाज आना चाहिए। हरएक को पेटभर रोटी, शरीर-भर कपडा और आरामभर मकान मिलने का प्रबन्ध करने मे सारे समझदार लोगो को एकमत हो जाना चाहिए। यह सब जुटाने करने के लिए व्यक्तिगत तथा समाजव्यापी अहिंसा की, यानी दूसरे के लिए सन्तोष, कर्त्तव्यबुद्धि और प्रेम से खपने की आवश्यकता है, न कि हिंसा या द्वेष की, जरूरत निःस्वार्थबुद्धि की है, न कि स्वार्थबुद्धि की। सर्वव्यापी ममता की है, न कि तग दडबो में बन्द किये हुए अह-ममत्व के भाव की।

यदि हम अपने जीवन तथा सस्कारो मे इस प्रकार की क्रान्ति कर सके तो जर्मनी या जापान के आक्रमण से अपना बचाव करने की अहिंसक योजना भी हमे अपने आप सूझ जायेगी, क्योकि यह क्रान्ति तो अहिंसा के अनुशीलन से ही हो सकेगी। तबतक आज कितना ही सिर क्यो न खुजाये, तो भी वह तरीका नही सूझेगा। जो कुछ सुझाया जायेगा वह अबाध कल्पना मे शुमार होगा, क्योकि उसको सुझाने के लिए जिस पूर्व-परिस्थिति की आवश्यकता है, वही आज नही है। आज बेतार के तार से एक क्षण मे एक शब्द सारे ससार में भेजा जा सकता है। पर अगर कोई पूछ बैठे कि फर्ज कीजिए कि शब्द के समान एक विनाशक किरण भी दुनिया भर मे फैलायी जा सके तो उससे अपनी

रक्षा का कौन-सा उपाय किया जाये ?—तो समझदार वैज्ञानिक इतना ही जवाब दे सकेगा कि पहले उस तरह का यन्त्र तो बनने दो, तब म दिमाग मे विचार आने लगेगे ।

आज हिंसक साधनो से हम अपनी रक्षा करते है । लेकिन उसके लिए हमारे पास कितनी सेना है, किस किस्म की कितनी तोपें, वायुयान जहरीली वायु के गोले, मास्क आदि साधन है, वे कहाँ-कहाँ रखे गये है, अच्छी हालत मे है या नही ?—इसकी चर्चा या जाँच-पड़ताल हम कहाँ करते है ? हिन्दुस्तान के सरकारी सेनापति से इस सम्बन्ध मे कितनी जानकारी माँगते है ? हम तो यही मानते है कि जो लोग युद्धकला के विश्वासपात्र विशेषज्ञ है वे उचित प्रबन्ध करेगे ही, और इस विश्वास से युद्ध के दिनो मे भी निश्चिन्त होकर सोते है ।

अगर अहिसा के क्षेत्र में भी इसी प्रकार हमारी एक विशेष साधना हो जाये तो क्या उसके भी कुछ विशेषज्ञ पैदा नही होगे ? हमारे देश में अहिसाधर्म में प्रवीण और अहिसा से जनता की रक्षा कर सकने का आत्मविश्वास रखनेवाला जो वीरपुरुष होगा उसीको हम अपना युद्धमत्री बनायेगे और उसकी सूचनाओ पर चलेगे । तात्पर्य यह कि, 'जर्मनी के खिलाफ अहिसक योजना क्या हो ?'—यह सवाल उतना महत्त्व नही रखता जितना महत्त्व यह सवाल रखता है कि हम अपने नित्य के जीवन के छोटे-बडे कलह अहिसा से किस प्रकार मिटाये ? अगर दो आदमियो में युद्ध करने के शास्त्र का आविष्कार हो जाये तो सैकडो और लाखो की लडाई का शास्त्र भी खोजा जा सकेगा । यही नियम अहिसा पर भी लागू है ।

अन्त में "गाधी-विचार-दोहन" से इस सम्बन्ध में दो परिच्छेद उद्धृत करके यह लम्बा लेख समाप्त करता हूँ —

"अहिंसा मे तीव्र कार्यसाधक शक्ति भरी हुई है। इस अमोघ शक्ति की अबतक पूरी-पूरी खोज नही हुई है। 'अहिंसा के समीप सारे वैर-भाव शान्त हो जाते है',—यह सूत्र शास्त्रो का कोरा पाडित्य ही नही है, बल्कि ऋषियो का अनुभव-वाक्य है। इस शक्ति का सम्पूर्ण विकास और सब अवसरो और कार्यों मे इसके प्रयोग का मार्ग अबतक स्पष्ट नही हुआ है। हिंसा के मार्गो के सशोधनार्थ मनुष्य ने जितना सुदीर्घ उद्योग किया है और उसके फलस्वरूप हिंसा को बहुत बडे परिमाण मे एक विज्ञानशास्त्र-सा बना दिया है, उतना उद्योग यदि अहिंसा-शक्ति के सशोधन मे किया जाये, तो मनुष्यजाति के दु खो के निवारणार्थ यह एक अनमोल, अव्यर्थ तथा अन्त में उभय पक्षो का कल्याण करनेवाला साधन सिद्ध होगा।

"जिस श्रद्धा और अध्यवसाय से वैज्ञानिक प्रकृति के बलो की खोज-बीन करते है और उसके नियमो को विविध रूप से व्यवहार में लाने का प्रयत्न करते है, उतनी ही श्रद्धा और अध्यवसाय से अहिंसा की युक्ति का अन्वेषण तथा उसके नियमो को व्यवहार में लाने का प्रयत्न करने की आवश्यकता है।"[१]

---

१. 'गाधी-विचार-दोहन' 'अहिंसा' १०,११

: ४ :

# सामाजिक अहिंसा की बुनियाद

## १

### अहिसा या वनियागिरी ?

१९३०-३२ के सत्याग्रह के दरमियान तथा वारदोली आदि सत्याग्रह मे लोगो ने अहिसक वीरता के जो सवूत दिये, उनकी तारी सुनकर एक मित्र वोले, "जवतक हम यह तारीफ मिर्फ विदेशी लोगा सुनाने के लिए करते है, तवतक तो ठीक है। लेकिन जव हम अपने मे वैठकर वाते करते है, तव मेहरवानी करके इम वीरता की मगत न कीजिएगा। सच पूछिए तो लडाई मे जिस प्रकार की वहादुरी जरूरत होती है, उसका आपको खयाल ही नही। उदाहरणार्थ, चारो त दुश्मन के विमान (हवाई जहाज) मँडरा रहे है, ऐमी हालत में नौजवान अपना विमान लेकर अकेला उनके वीच घुसा चला जाता और यह जानते हुए भी कि उसका जिन्दा वापस आना नामुमकिन केवल शत्रु के एक या दो विमानो के नाश करने की आशा से ही इतना साहम करता है। अथवा, जिस वहादुरी से मवमेरीन (पनडु में डुवकी लगाता ह, उसकी वहादुरी के साथ आपके धारासणा के पुरुपो का क्या मुकावला करें ? आज हमारे देश मे से कितने नौज मवमेरीन या विमानी मैनिक की सिर्फ तालीम लेने के लिए भी तै होगे ? दूमरे के वदन मे खून निकलता हुआ देख वेहोश हो जाने हम व्राह्मण और वनिये अहिमक वीरता तक पहुँच गये, इसका इतन मतलव ममझना चाहिए कि हम कायरता से मिर्फ एक कदम आगे वढे

"अशोक की तरह मे जो लोग हिंसात्मक जीवन मे से अहिमा

गेर गये, उन जैसे अगर आप भी क्षत्रिय होते तो आपकी अहिंसा मुझे अद्भुत लगती। लेकिन जिस अहिंसा की आज आप तारीफ कर रहे हैं, वह सिर्फ आपकी हिंसा-शक्ति के अभाव का उपनाम है। मुझे शक है कि जब हिंसा का स्वाद आपको मिलेगा तब आपकी यह अहिंसा कहाँ तक टिकेगी ?"

स्वय गान्धीजी के बारे मे भी इसी प्रकार की शका दूसरे रूप मे प्रगट की गयी है। हाल ही मे सर स० राधाकृष्णन् द्वारा सम्पादित 'गान्धी-अभिनन्दन ग्रथ' मे श्री एडवर्ड टामसन लिखते हैं—

"वह गान्धी गुजराती हैं अर्थात् ऐसी जाति मे उत्पन्न हुए हैं जो युद्धप्रिय नही रही है और जो विशेषतया मराठो द्वारा बहुधा पददलित की गयी और लूटी गयी है।' वह अहिंसा को जो इतना महत्त्व देते हैं, वह उनके एक शान्तिप्रिय जाति मे जन्म लेने का लक्षण है। मेरा विचार है कि मराठे इस बात को कभी नही भूलते कि वे मराठे हैं और गाधी गुजराती हैं। राजपूतो के बारे मे भी यही बात कही जा सकती है, क्योंकि वह भी एक युद्धप्रिय जाति है।"

यह दलील बल्कि उलाहना मैंने पहिली बार नही सुना, इसलिए मैंने खुद अपने आपमे यह प्रश्न कई बार पूछा है, कि गाधीजी जिस अहिंसा का प्रचार कर रहे हैं और जो मुझ जैसे अनेक लोगो को मानो स्वभाव ही मे पसन्द आती है, और हिंसा के प्रति जो घृणा पैदा होती है वह क्या मुझमे जन्मत रही हुई बनिये की डरपोक वृत्ति तथा वैष्णव संस्कारो का परिणाम है, या अहिंसा का—यानी मैत्री, प्रेम, करुणा आदि कोमल गुणो का—परिपाक है ?"

कुछ हद तक इस सवाल पर मन्थन करने के बाद मैं जिस नतीजे पर पहुँचा हूँ वह प्रस्तुत करता हूँ।

यह तो मैं विना सकोच के स्वीकार करूँगा कि युद्ध-विरोध अग
शान्तिप्रियता कई पीढियो से मेरा खून के द्वारा उतरा हुआ स्वभा
है। उसके अनुशीलन के लिए, स्वय मुझे अशोक के जैसे अनुभवो में
जाने की या वुद्धि को वहुत कमने की जरूरत नहीं हुई। मेरे नि
पूर्वजो ने सैकडो वर्ष पूर्व हिंसक विचारो को छोडकर वौद्ध या जैन
वैष्णव सप्रदाय को स्वीकार किया होगा, वे वेशक इरादतन हिंसा
अहिंसा की ओर गये होगे। अनेक पीढियो तक अपने इस परिवर्तन
हृदय मे दृढ करते-करते मेरे इन पूर्वजो ने अहिंसावृत्ति की जड अ
स्वभाव में इतनी मजवूत जमा दी कि वाद में वह मेरे लिए एक हद त
अपने प्रयत्न से प्राप्त करने की सम्पत्ति नही रही वल्कि पूर्वजोपार्जि
सम्पत्ति के रूप में मुझे विरासत मे मिली।

परन्तु सम्पत्ति पूर्वजोपार्जित होने ही से वह कोई कुसपत्ति या विप
तो नही हो जाती, और न उसमें शरमाने जैसी ही कोई वात होती
हमारे लिए अपनी कोशिश से उस सम्पत्ति को वढाना शक्य
वैसा न किया जाये तो दूसरी भौतिक सम्पत्तियो की तरह यह भी क्ष
हो सकती है, और जिस तरह पुरखो के जमाने का वर्तन धीरे-धीरे घिस
घिसकर फूट जाता है और फिर वह सिर्फ एक स्मारक का काम देता है
उसी तरह यह भी एक क्षीण और दुर्वल सस्कार वनकर रह सकता है।

तव मेरे लिए गौर करने का सवाल यह है कि, क्या मैं इस सहज
प्राप्त स्वभाव का ही अधिक विकास करूँ, या फिर से उस हिंसक स्वभाव
को प्राप्त करने की कोशिश करूँ जिसका उसे एक कुसम्पत्ति समझकर
मेरे पूर्वजो ने सोच-समझकर त्याग किया था ? क्या हिंसा से अहिंसा की
ओर जाने में मेरे पूर्वजो ने कुछ अमानुषिकता (गैरइसानियत) की ?

यह सच है कि कुछ लोगो का ऐसा ही खयाल है। वे मानते है

क्योंकि आज एक ऐसा जमाना आया है कि जिसमे हिन्दुस्तान या दूसरी किसी भी कौम का उद्धार हिंसक बनने से ही हो सकता है। लेकिन कोई भी मानव-हितचिंतक इस विचार का नही है। हिंसा में रही हुई भीषण पशुता को पूजनेवाला वर्ग इना-गिना ही है, हिन्दुस्तान मे भी उनका क्षेत्र साफ नष्ट नही हुआ है। आज भी हिन्दुस्तान मे लडाकू जातियां है। कई लोगो का कहना है कि जिनमें लडाई की वृत्ति और कला है ऐसे लोगो के अभाव और न्यूनता के कारण ही हिन्दुस्तान परतन्त्र हुआ। लेकिन इस कथन मे कुछ भी ऐतिहासिक सत्य नही है। इसलिए हिंसा द्वारा देश का उद्धार करने के सम्प्रदाय की तरफदारी के लिए कोई जोरदार कारण नही है। सच्चा रास्ता तो आज भी वही है जो सदियो पहले हमारे बडो ने बताया था। वह है—'खून न करो', क्योंकि 'अहिंसा ही परम धर्म है।'

मतलब यह कि उन वंश और संस्कार द्वारा प्राप्त अहिंसावृत्ति के लिए शरमाने की कोई वजह नही। बल्कि जन्म ही से यह विरासत पाने के लिए ईश्वर और अपने पूर्वजो के प्रति कृतज्ञता भाव रखने के लिए पर्याप्त कारण है।

फिर भी मुझे यह भी कबूल करना होगा कि मेरे अहिंसक स्वभाव के साथ मुझमे बहुत-सी कमियां भी पैदा हो गयी है। वे ऐसी है कि ऊपर-ऊपर से वे अहिंसावृत्ति का ही परिणाम मालूम होती है। डरपोक-पन और शारीरिक साहस करने की हिम्मत का अभाव इन कमियो में मुख्य है। हिंसक आहार-विहार तथा जंगल के नजदीक की बस्ती में इन कमियों को दूर करने के कुदरती मौके मिल जाते है। शिकार और लडाई-झगडो के बीच जिन्दगी बितानेवाले स्त्री-पुरुष अपना या दूसरे का रक्तपात देखने के बचपन से ही आदी हो जाते है। इस तरह का साहस

उनका रोज का जीवन हो जाता है। उनके लिए डरपोकपन और अमाहम शरमाने योग्य चीज़े हो जाती है, और उनके ममाज मे वैसे व्यक्तियो का तिरस्कार होगा। लेकिन ब्राह्मण-बनियो के समाज में अगर कोई आदमी हिम्मत करके अपना हाथ तोड ले या खतरे की जगह दौड़ कर चला जाये तो उसकी हिम्मत के लिए उसका जयकार नही किया जायेगा। बल्कि उससे कहा जायेगा कि क्यो इतनी बेवकूफी करने गये ' इन समाजो मे बच्चो को हौए और अंधेरे के डर मे, और 'अरे गिर जायेगा' 'अरे, लग जायेगा' जैसी सावधानी की सूचनाओ के साथ बढाया जाता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि हमारा यह समाज कु का पुरुष सा बन गया है। इसमें शक नही कि यह बडी शरम की बात है

परन्तु हम ठीक-ठीक सोचेगे तो पता चलेगा कि ये कमियाँ अहिंसा का आवश्यक परिणाम नही है। हमारे पूर्वजो ने अहिसा को स्वीकार किया यह तो अच्छा ही किया, लेकिन उस वक्त उन्हे यह बात न सूझी और उस जमाने में सूझ भी नही सकती थी, कि जिस तरह हिंसक आहार-विहार के साथ साहस और शौर्य्य आदि गुणो का पोषण होता है और उनके सगठन का शास्त्र निर्माण होता है, उसी तरह अहिंसक जीवन के अप्रतिकूल तरीको मे इन्ही गुणो के विकास के निमित्त इनके सगठन का शास्त्र भी खोजना होगा।

इसे कुछ विस्तार से समझ लेना चाहिए।

## २

## अहिंसा की वैज्ञानिक शिक्षा

अगर हम युद्धो के इतिहास बारीकी से पढे तो मालूम होगा कि किसी भी लडाई में जीवन के लिए सिर्फ सिपाहियो की बडी संख्या, उनकी व्यक्तिगत बहादुरी और लडाई का अच्छे-से-अच्छा सरजाम

काफी नही है। जीत के लिए एक बहुत ही महत्त्व की बात है सैनिको का सगठन। युद्ध की परिभाषा मे उसे उम्दा फौजी तालीम, कुशल सेनापतित्व और चतुर व्यूह-रचना कहा जायेगा। एक ओर बडी बहादुर और अच्छी तरह से साधन-सम्पन्न, मगर बिना तालीम और बिना सेनापति की दस हजार सिपाहियो की सेना हो, और दूसरी तरफ एक हजार ही सिपाहियो की फौज हो पर वह अच्छी तालीम पायी हुई और कुशल सेनापति के नेतृत्व मे हो तो इतिहास मे ऐसे कई उदाहरण पाये जायेगे कि जहाँ छोटी सेना ने बडी सेना को हरा दिया। हिन्दुस्तान मे कितनी ही लडाइयो मे इन्ही कारणो से अग्रेजो की जीत हुई थी। फिर बहादुरी भी कोई व्यक्तिगत गुण नही है। 'प' 'फ' 'ब' 'भ'—सभी छोटे-छोटे बहादुर भले ही हो लेकिन अगर वे चारो लडाई की तालीम प्राप्त करे और कुशल सेनापति के नेतृत्व मे एक होकर लडे तो उनकी बहादुरी का जोड सिर्फ चौगुना ही नही बल्कि कई गुना हो जायेगा। इसके विपरीत वे व्यक्तिगत रूप से बडे ही शूर-वीर क्यो न हो फिर भी अगर हरएक आदमी अपने घमण्ड के खुमार मे रहकर ही लडना पसन्द करे तो व्यक्ति के नाते बढिया पराक्रम दिखाने पर भी वे हारेगे, और उनका कुल पराक्रम पहले चार की अपेक्षा कम होगा। शायद एकाध उसमे से निराश भी हो जायेगा। मतलब यह है कि इस तरह हिंसा का भी एक विज्ञान है और उसके अनुकूल उसका विकास करना पडता है। सब लडाकू जातियाँ इस बात को अच्छी तरह समझती है और इसीलिए तरह-तरह के उपायो से युद्ध-विज्ञान का विकास करने के लिए सैकडो वर्षो से मेहनत उठायी गयी है।

जिस तरह एक हिंसापरायण समाज मे बचपन से ही लोगो मे हिंसक वृत्ति पैदा करने बडी उम्र मे लडाई की तालीम देने और युद्ध

के समय उन्हे सगठित करने की जरूरत होती है, और इसलिए उसका व्यवस्थित शास्त्र बनाना पडता है, उसी तरह एक अहिंसा-परायण समाज को भी अपने लोगो मे बचपन से अहिंसावृत्ति का पद्धतिपूर्वक विकास करने, उसकी तालीम देने और जब-जब प्रसग उत्पन्न हो तब-तब उन्हे सगठित करने की ज़रूरत है। परन्तु यह बात अहिंसको के ध्यान में भली भाँति आयी नही है। उल्टे अहिंसा-धर्मी ने आमतौर पर एकाकी और निवृत्तिमय जीवन बिताना ही पसन्द किया है। निवृत्ति में नम्रता, अभिमानशून्यता, अपमान, बलात्कार आदि की जानबूझकर तितिक्षा इत्यादि अहिंसा-पोषक वृत्तियो को बढाने का प्रयत्न ज्यादा आसान होता है। प्रवृत्तिमय जीवन मे यह साधना कठिन होती है। इसलिए योग्य तालीम के अभाव में जब प्रवृत्तिमय जीवन बितानेवाले अहिंसक लोग इन वृत्तियो के अनुकूल बर्ताव करने लगे, तब उससे कुछ विपरीत परिणाम निकले। इन विपरीत परिणामो को हम 'बनियागिरी' के तिरस्कारसूचक नाम से पुकारते है। इस शब्द से जिससे शरीर को भय हो वैसे किसी भी प्रकार के साहस के प्रति अरुचि, भय-स्थानो का दूर ही से त्याग, शरीर और सम्पत्ति बचाने के लिए चाहे जितनी अपमानजनक स्थिति मे रहने की तैयारी वगैरा कायरता के गुणो का समावेश किया जाता है। निवृत्ति मे रहनेवाला अहिंसक यह चिन्ता करता है कि दूसरो की हिंसा न हो, लेकिन प्रवृत्ति मे पडा हुआ अहिंसा-धर्मी खुद अपने शरीर की हिंसा न हो, इस रीति से अपने जीवन की रचना करता है। भय से दस कोस दूर रहकर ही वह अपना अहिंसा-धर्म सँभालता है। इसका नतीजा यह हुआ कि अहिंसक को चाहे जो तमाचा जड दे, गालियाँ दे दे या लूट ले, वह 'बेचारा' बनकर चुप रहता है।

मगर ऐसा स्वभाव होते हुए भी प्रवृत्ति-परायण अहिंसा-धर्मी को

संसार में टिकने की इच्छा तो है ही। इसलिए बाहर से अहिंसा का त्याग किये बिना सूक्ष्म हिंसा करने की कुछ रीतियाँ उसने खोज ली है। खेती, गोपालन और (विशेषकर) व्यापार के द्वारा धन बढाने की कला में उसने निपुणता प्राप्त की है। और उसमे हिंसा का गुमान करने-वाले को उसके मिथ्याभिमान द्वारा ही मिठास के साथ लूटने, बिना खून बहाये ही खून चूसने, कुटिल नीति से परास्त करने, और व्यक्तिगत कम-खर्ची और हिसाबी दान करने की युक्तियाँ निकाली है। इन सबका भी बनियागिरी मे समावेश होता है। इस प्रकार की बनियागिरी का आभास देनेवाली बहुत-सी लोककथाएँ भी है। मतलब यह कि 'बनिया-गिरी' शब्द कायरता और चालाकी का मिलाप बताता है। ये सब अहिंसा के व्यवस्थित विकास के अभाव के परिणाम है।

इसका हमे संशोधन करना होगा और जो लोग स्वभाव से, धर्म के संस्कार से, अपनी सारासार विवेक-बुद्धि से या आखिर दूसरो द्वारा जबरदस्ती ही निःशस्त्र किये जाने से अहिंसक बनकर रहे है, उन्हे अपनी उस अहिंसा का एक बल के रूप में परिवर्तन करने का विज्ञान निर्माण करना होगा। चैतन्य का यह स्वभाव ही है कि वह चाहे जितनी कठिन परिस्थिति मे मूल स्वभाव को बिना छोडे अपना स्वत्व बराबर बनाये रखने की, अपना सम्पूर्ण विकास सिद्ध करने की और अपने ध्येय को प्राप्त करने की अचूक पद्धति खोज ही सकता है। इस खोज मे अपने मुख्य स्वभाव पर बिल्कुल दृढ रहने [illegible] यदि वह उसे बदलने और दूसरे किसी स्वभाव को व्यर्थ अप-[illegible] की चेष्टा करता है, तो उतनी हदतक उस खोज मे वह निष्फल [illegible]। चाहे आप डार्विन का 'उत्क्रान्ति-शास्त्र', क्रोपाटकिन का [illegible] मैटरलिंक का 'दीमक' या 'मधुमक्खी का जीवन'

पढे या किसी भी प्राणी के जीवन का अवलोकन करे, आप पायेंगे कि चैतन्य की इस शक्ति के द्वारा ही इस ससार में विवि योनियो के जीव अपना-अपना जीवन विता रहे है। जो लायक हो जीवे (सर्वाइवल ऑव द फिटेस्ट) का मतलब जो शरीर मे बलवान वही जी सकता है इतना सकुचित नही है, बल्कि ईश्वर-दत्त प्रकृति एक शक्ति के रूप मे परिवर्तन करके जो अपनी परिस्थिति का साम कर सकता है, "वही जी सकता है" ऐसा होता है।

तात्पर्य यह है कि मुझे या मुझ-जैसे दूसरे सबो को हमारे स्व मे वश-परम्परागत उतरी हुई अहिंसा का ही विकास करना चाहिए। इ अहिंसा का विकास करके स्वाभिमान, निर्भयता और सफलतापूर्वक हिं वृत्ति के मनुष्य या प्राणी का सामना करने का मार्ग हमे खोजना चाहि

अब हम इसी का आगे विचार करेंगे।

## ३. अहिंसा के प्राथमिक नियम

अहिंसा-विज्ञान की खोज मे नीचे लिखी वाते मेरी समझ में प्रा मिक नियमो के रूप मे मानी जानी चाहिएँ।

(१) अहिंसा के ही विकास और सस्कार-द्वारा शक्ति पैदा कर का हमारा निश्चय होना चाहिए। तत्कालीन लाभ-हानि की दृष्टि हिंसा के तरीके आजमाने से या हिंसा-वृत्ति पैदा करने की चेष्टा करने यह शक्ति उत्पन्न नही की जा सकती।

(२) अहिंसा का डरपोकपन, असाहस आदि से तलाक करा चाहिए और वचपन से ही अहिंसक साहस और वीरता वढाने के उपा की योजना करनी चाहिए।

(३) अहिंसा का एक व्यक्तिगत गुण या विभूति के रूप मे नही, वल्कि सामाजिक शक्ति के रूप मे विकास होना चाहिए। एक उद

हरण देकर इसे समझाता हूँ। 'दूरदर्शन' 'दूरश्रवण' आदि सिद्धियाँ योगाभ्यास की विभूति के रूप मे कोई व्यक्ति प्राप्त करता है, यह प्राप्ति उसकी अपनी व्यक्तिगत ही रहती है, परन्तु विज्ञान-द्वारा प्राप्त तार, टेलीफोन, रेडियो आदि सिद्धियाँ सामाजिक है। अथवा एक दूसरा दृष्टान्त लीजिए। महाभारत मे 'मोहास्त्र', 'आग्नेयास्त्र', 'वरुणास्त्र' आदि अनेक अस्त्रो का जिक्र है। भिन्न-भिन्न मन्त्रो के अधीन होने के कारण इन सब अस्त्रो का उपयोग उसी व्यक्ति द्वारा हो सकता था, जिसने वे मन्त्र सिद्ध किये हो। परन्तु आज के हिंसा के साधन वैज्ञानिक होने के कारण उनकी अपेक्षा बहुत ज्यादा समाजगत है। इसी तरह जिस अहिंसा को हमे सिद्ध करना है वह किसी 'राग-द्वेषविषातिरहित' 'पूर्ण विरागी' पुरुष द्वारा सिद्ध किये हुए गुण के रूप मे नही, लेकिन सामाजिक जीवन व्यतीत करनेवाले, काम-क्रोधादिक विकारो से कुछ न कुछ पराभूत होनेवाले और फिर भी स्वभाव और बुद्धि दोनो से शान्ति चाहनेवाले लोग जिस तरह रेडियो या फोन का उपयोग कर सकते है, उस तरह जिसका उपयोग कर सके ऐसी अहिंसा सिद्ध करनी है।

(४) सगठन से पैदा होनेवाली हरएक सामाजिक शक्ति की एक मर्यादा हमे भूलनी न चाहिए। हमारा सगठन हिंसक हो या अहिंसक, एक हदतक उसमे जान-माल का खतरा रहता ही है। जब हम फौज द्वारा अपनी रक्षा करने की सोचते है तब हम यह अपेक्षा नही करते कि हमारे देश के एक भी व्यक्ति की मृत्यु के बिना और देश की कुछ भी हानि हुए बिना ही उसका बचाव हो जायेगा। लेकिन इस श्रद्धा से हम इन साधनो को जुटाते है कि थोडी-सी हानि सहन कर लेने से बहुत बडा लाभ होगा, अथवा सर्वस्व-नाश से बचने के लिए इतनी हानि सहना अनिवार्य है। अहिंसक सगठन के विषय मे भी इसी तरह

सोचना चाहिए। अब उचित व्यवहार्य सवाल तो यह है कि समाज का अहिंसक संगठन से ज्यादा खतरा है या हिंसक संगठन से? यद्यपि इसका निश्चित उत्तर तबतक नहीं दिया जा सकता जबतक कि हम एक निष्ठावान, कुशल और अहिंसक शिक्षण पाया हुआ समाज निर्माण नहीं कर सके हैं, तो भी, इतना तो जरूर कह सकते हैं कि इसमें हमें और हमारे शत्रु को भी आर्थिक और शारीरिक क्लेशों का कम से कम खतरा है।

(५) आज की परिस्थिति में हमारे देश में एक हदतक हिंसा और अहिंसा को साथ-साथ चलना होगा। संख्या में अहिंसक समाज बड़ा होने पर भी, हिंसक समाज बिल्कुल ही नगण्य नहीं है, और वह साधनों से सुसम्पन्न है। साम्राज्यवाद, वर्ग-विग्रह आदि नामों से हम जिसे पहचानते हैं उसका सच्चा स्वरूप यदि देखा जाये तो हिंसा के साधनों में सम्पन्नता और उसका अभाव ही हिंसक और अहिंसक समाजों की परिस्थितियों के बीच का भेद है। जो लोग हिंसा के साधनों से सम्पन्न हैं उनकी रक्षा की जिम्मेदारी की चिन्ता करने की अहिंसक समाज को जरूरत नहीं, बल्कि जरूरत तो यह है कि अगर वह साधन अहिंसक समाज के विरुद्ध प्रयुक्त किया जाये तो वह निकम्मा किस प्रकार किया जा सकता है?

इसका ज्यादा स्पष्टरूप से विचार किया जाये तो शस्त्र, धन, शरीर बल, अधिकार, उम्र, लिंग, कौम, विद्या, बुद्धि, धर्म या दूसरे किसी बल का उपयोग, जो लोग उन बलों से वंचित हैं, उनकी सेवा और भलाई के लिए किये जाने के बदले जब उन कमजोर लोगों का दमन करने के लिए किया जाता हो, तो अहिंसक समाज के पास ऐसी शक्ति होनी चाहिए, कि जिससे वह उस गलत रास्ते से जानेवाली शक्ति को निकम्मा

ठहरा सके। याने निःशस्त्र, निर्धन, निर्बल, पराधीन, बालक, स्त्री, दलित, अनपढ, मंदबुद्धि, साधु आदि लोगो की वह विशेष परिस्थिति एक कमी के रूप मे नही बल्कि एक शक्ति के रूप मे प्रकट होनी चाहिए। यह अनुभव तो थोडा बहुत सभी को है कि बालक, स्त्री और साधु अपनी स्थिति का शक्ति के रूप मे सफल उपयोग कर सकते है। बाज दफा वह उपयोग शक्ति के भान से नही बल्कि लाचारी की भावना से होता है। कभी-कभी कपट से भी होता है। इसलिए उसमे गुस्सा, दुःख, दम्भ आदि दोष भी होते है। शायद इस ओर हमारा खयाल नही गया कि मनुष्य समाज मे निर्बल, अपंग और निर्धन लोग अक्सर अपनी उस कमी की बदौलत ही अपना जीवन टिका सकते है। साग और नीरोग भिखारी की अपेक्षा अंधे, लूले, लँगडे, रोगी भिखारियो को क्यो ज्यादा दान मिलता है ? चारो ओर बेकारी हो तो भी इनकी यह अपगता ही उन्हे जिलाने मे समर्थ होती है। बहुतेरे भिखारी यह जानते है कि अपगता भी एक शक्ति है, इसलिए जान-बूझकर अपग बनने या अपने बालको को अपग करने की युक्तियाँ भी वे काम में लाते है। लेकिन ये सब मार्ग अज्ञान और वैयक्तिक सकुचित दृष्टि से खोजे गये है। उनका ज्ञानपूर्वक और समाज-हित की दृष्टि से शोधन नही हुआ। फिर भी, इन विकृत युक्तियो की एक निश्चित अनुभव पर रचना हुई है। वह यह कि प्रत्येक मनुष्य मे कोमलता और समभाव होता है, दीन के प्रति बन्धुभाव और आदरभाव होता है, और जो उसे जाग्रत कर सकता है वह जीवन मे निभ सकता है। कभी-कभी उसके बल पर अन्याय्य और अनुचित मांगे भी पूरी करा ली जाती है। तब जहाँ अपने पक्ष में न्याय हो वहा सफलता के विषय मे सदेह की कम गुंजाइश है।

एक उपमा देकर इसे स्पष्ट करता हूँ। अहिंसक कलह अथवा सत्या-

ग्रह एक पुरुष और उसकी मानिनी स्त्री के झगडे की तरह है। मानिनी अपने पति से रूठती है, लेकिन उससे द्वेष नही करती। अपने पति के अहित की इच्छा तो वह तनिक भी नही कर सकती। उसका त्याग करने के लिए नही वल्कि उसे और भी ज्यादा वश मे करने के लिए वह उससे रूठती है। लेकिन इसके लिए वह उसके पैरो पडना, आजिजी करना, भीख माँगना या अपना स्वाभिमान खोना आदि उपाय नहीं करती। इस मूल वात को पकडकर कि उसका पति उससे या वह अपने पति से प्रेम करती है वह अपनी शक्ति प्रकट करती है। मतलब यह कि जिस वात को हमारा प्रतिपक्षी एक विपत्ति या निसहायता समझता है उसीको अपनी शक्ति वनाने में हमारी सफलता की कुजी है।

(६) विग्रह चाहे हिंसक हो या अहिंसक, अन्त मे जीत किस तरह होती है? शुद्ध द्वद्व-युद्धो के कुछ प्रसग छोड दे, तो दूसरे सब झगडो के अवलोकन से पता चलेगा कि जीत का अन्तिम आधार किसी पक्ष का स्थूल वल नही, वल्कि जैसे-जैसे विग्रह वढता जाये वैसे-वैसे प्रतिपक्षी के दिल में हमारी शक्ति के प्रति आदर और खुद अपने प्रति अश्रद्धा या शका आदि की वृद्धि है। अग्रेज, देशी नरेश या किसी कौम के हृदय मे हमसे लडते हुए भी अगर हमारे प्रति आदर बढता रहे तो हम यह निश्चय मानले कि अन्त मे जीत हमारी ही होगी। मगर यदि उनके दिल में हमारे प्रति अनादर वढता जाये तो एकाध वार वे हमारी शरण में आ भी जाये तो भी हमे समझना चाहिए कि वे फिर लडने खडे होगे। यह आदरवुद्धि हिंसक और अहिंसक साधनो के अनुसार अलग-अलग निमित्तो से पैदा हुई है। हिंसक साधनो मे जिन निमित्तो के जरिये स्वनाश का डर पैदा होता है, उनके कारण आदर वढना है। अहिंसक साधनो में हमारे चारित्र्य का परिचय होने से

आदर बढता है। "आदर-वुद्धि" को सस्कृत मे 'भय' भी कहते है (अग्रेजी मे इसके लिए 'ऑ' (Awe) शब्द है) इसी अर्थ मे ईश्वर को "भयाना भय" कहा है—अर्थात् आदरणीयो के भी आदरणीय। यही अर्थ इस कहावत का भी है कि 'भय बिनु होइ न प्रीति'। आजकल हम 'भय' शब्द मे सिर्फ "आपत्ति का डर" ही समझते है। पर यह सकुचित अर्थ है। दशरथ-सा बाप और राम-सा पुत्र हो तब भी पुत्र के मन मे पिता के लिए एक तरह का आदर-युक्त भय रहता है। गुरु इनाम देनेवाले है, यह जानते हुए भी विद्यार्थी उनके पास जाते हुए अक्सर कॉपता है। इस तरह अपने मे श्रेष्ठ पुरुष के लिए आदर के कारण डर होता है, ऐसा आदर-रूप भय होने मे दोष नही है और आखिर में इस प्रकार का भय ही कलह का अन्त करता है। इस अर्थ में 'भय बिनु होइ न प्रीति' वाली कहावत ठीक ही है। यदि काग्रेस की ओर देखें तो साफ मालूम होगा कि जितने अश मे उसके प्रति विपक्षी या जनता के दिल में आदर है, उतनी ही उसकी शक्ति है।

मतलब यह कि हिंसक दल की तरह अहिंसा का ध्येय भी प्रतिपक्षी के दिल मे आदर उत्पन्न करता है। इसके लिए शरीर, मन और वाणी का सयम, धन और स्त्री के विषय मे उच्च शील, सरलता, अगुप्तता, प्रतिपक्षी का सम्पूर्ण अभय दान अपने पक्ष के अनुशासन का उत्कृष्ट पालन, उद्योगिता, विविध त्याग, कष्ट-सहन आदि उसके साधन है। और क्योकि इनमे पशुबल का त्याग है इसलिए ये ही अहिंसा के साधन है। इनमे वाणी का जहर, गुप्त चालबाजी, प्रतिपक्षी को धोखा देने, डराने, परेशान करने आदि की हिकमते, आलस, चोरी, तिकडम, स्वार्थ-साधन आदि बाजियो का प्रयोग सफल हो जाये तो भी ये सब छल-प्रपच अनादर उत्पन्न करनेवाले होने के कारण अहिंसक युद्ध मे आखिर हमारी

ही हानि करते है। इस तरह अहिंसक युद्ध मे उच्च चरित्र जीत के लि
अनिवार्य है।

(७) और एक महत्त्व की बात यह है कि अहिंसक मार्ग पर रहन
वाले समाज को अपने मन मे यह खूब अच्छी तरह समझना चाहिए कि
कितना ही विकट और जीवन-मृत्यु का विग्रह क्यो न हो उसमे प्रतिपक्ष
के अहित की इच्छा नही की जा सकती, जिससे उसके मन मे हमारे प्रति
क्रोध, तिरस्कार या वैर पैदा हो ऐसी भाषा या व्यवहार लडाई के दौरान
में भी नही किया जा सकता। उसका जान-माल खतरे में है, ऐसी
दहशत उसके दिल मे नही पैदा की जा सकती।

(८) और अत में सबसे बडी बात है चैतन्य में श्रद्धा। सब बाह्य
शक्तियो का उद्भव चैतन्य से है और उसीमें उसकी स्थिति है। बाह्य
साधनो की वह माता है, और उनपर प्रभुत्व रखती है। किसी भी परि
स्थिति को वश में करने के लिए आवश्यक रूप मे बाह्य शक्ति प्रकट
करने की वह क्षमता रखती है। जो एकाग्रता से उसकी खोज करता है
उसके द्वारा वह प्रकट होती है और फैलती है। हिंसक साधनो की खोज के
लिए मेहनत उठानेवालो के सामने उन रूपो में वह प्रकट हुई है, अहिंसा
तप करनेवालो के सामने उनके अनुकूल रूपो मे प्रकट होगी।

: ५ :

# अहिंसा की कुछ पहेलियाँ

अहिंसा के बारे मे कभी-कभी गहरे और जटिल सवाल किये जाते इनमे से कुछ का मै यहाँ थोडा विचार करना चाहता हूँ।

(१) प्रश्न—पूर्णता प्राप्त किये वगैर सम्पूर्ण अहिंसा शक्य नही गाधीजी खुद भी अपनी अहिंसा को अधूरी मानते है। तो फिर सारे ाज को या हमारे जैसे अपूर्ण व्यक्तियो को अहिंसा की सिद्धि किस ह मिल सकती है ?

उत्तर—कभी-कभी बहुत गहरे विचार मे उतर जाने से हम गगन-हारी वन जाते है। कसरत करनेवाला हरएक व्यक्ति दौडती हुई टर रोकने, या चार-पाँच मन का पत्थर छाती पर रखने, या गामा ी बराबरी करने की शक्ति प्राप्त नही कर सकता। फिर भी, यह ुमकिन है कि इन लोगो से भी वढकर कोई पहलवान दुनिया मे पैदा ा। अगर उन्ही को शारीरिक शक्ति का आदर्श माना जाये तो साधारण आदमी—चाहे वह कितनी भी मेहनत से शरीर मजबूत करने की ाशिश करे, तो भी—अपूर्ण ही रहेगा। तव क्या आम जनता के लिए ो अखाडे है वे बन्द कर दिये जाये ? उत्तर साफ है कि 'नही', क्योकि अखाडो का मुख्य उद्देश्य गामा-जैसे पहलवानो को ही निर्माण करना नही है, बल्कि साधारण दुनियादारी मे सैकडो आदमियो को जितने और जिस प्रकार के शारीरिक विकास की जरूरत हो उतना और उस प्रकार का विकास कराना है। जो व्यायामशाला यह करा सकती है ... हम सफल संस्था कहेंगे, चाहे उसके सौ साल के इतिहास में उसमे से एक भी गामा या राममूर्ति भले ही न निकला हो। इन अखाडो

मे गामा और राममूर्तियो का सम्मान, तथा मार्गदर्शक की हैसियत से उपयोग हो सकता है, लेकिन उन जैसा बनने की सबकी महत्त्वाकांक्षा नही हो सकती। उसके उस्ताद के लिए भी वह कसौटी नही हो सकती।

एक दूसरा उदाहरण ले लीजिए। सेनापति मे युद्ध-शास्त्र का जितनी काबलियत चाहिए उतनी हर एक छोटे अमले में, तथा उस अमले जितनी काबलियत सामान्य सिपाहियो मे हो, ऐसी अपेक्षा कोई नही करेगा। उसी तरह अगर गाधीजी की अहिंसावृत्ति हर एक कार्यकर्ता अपने मे पा न सके, अथवा कार्यकर्त्ता की लियाकत सामान्य जनता मे आना सम्भव न हो, तो इसमें घबराने की कोई बात नही। इससे उलटी स्थिति की अपेक्षा करना ही गलत होगा। जरूरत तो यह खोजने की है कि अहिंसा की कम-से-कम तालीम कितनी और किस तरह की होनी चाहिए ? उससे अधिक लियाकत रखनेवाला मनुष्य एक छोटा नेता, या गाधी या सवाई गाधी भी बन सकता है। वैसा सदभिलाषा व्यक्तियो के दिल में भले ही हो, लेकिन जो उसतक नहीं पहुँच सकता उसे निराश होने की ज़रूरत नही। उसके लिए परीक्षा की कम-से-कम लियाकत हासिल करने का ही ध्येय रखना काफी है।

(२) **प्रश्न**—जिसे क्रोध आता हो, जो गुस्से मे कभी बच्चो को पीट भी लेता हो, जिसकी किसी के साथ बोल-चाल भी हो जाती हो, ऐसा शख्स क्या यह कह सकता है कि उसकी अहिंसा-धर्म मे श्रद्धा है ?

**उत्तर**—हम इस वक्त जिस प्रकार की और जिस क्षेत्र की अहिंसा का विचार कर रहे है उसमें "गुस्से के मानी में क्रोध" और "द्वेष, वैर, जहर, के मानी मे क्रोध" का भेद समझना ज़रूरी है। मा, बाप, शिक्षक आदि कभी-कभी बच्चो पर गुस्सा करते है और उन्हे सजा भी देते है। रास्ते पर पानी के नल या कुएँ पर कभी-कभी स्त्रिया में

बोलचाल हो जाती है। पडोसियो मे एक का कचरा दूसरे के घर मे उडने जैसी छोटी-सी बात पर भी झगडा हो जाता है। बुढापे या बीमारी मे अनेक लोग बदमिजाज हो जाते है और छोटी-छोटी बातो से चिढते है। यह सब क्रोध ही है और दुर्गुण भी है। फिर भी, इतने से हम इन लोगो को द्वेषी, जहरीले, या वैरवृत्तिवाले नही कहेगे। उलटे कई बार यह भी पाया जायेगा कि खुले दिल के और सरल स्वभाव के लोगो मे ही इस प्रकार का क्रोध ज्यादा होता है और कपटी आदमी ज्यादा सयम बताते है। इस प्रकार का गुस्सा जिसके प्रति प्रेम और मित्रभाव हो उसपर भी होता है। बल्कि उसीपर ज्यादा जल्दी होता है, पराये आदमी पर कम होता है। यह स्वभाव शिक्षा, सस्कार वगैरा की कमी का परिणाम है, द्वेषवृत्ति का नही। अहिंसा-धर्म में प्रगति करने और उसके एक आदर्शपात्र सेवक और अगुआ बनने के लिए यह त्रुटि जरूर दूर होनी चाहिए। लेकिन ऐसा नही कि ऐसी त्रुटि होने के कारण कोई आदमी अहिंसा-धर्म का सिपाही भी नही हो सकता। अहिंसा के लिए जो वस्तु महत्त्व की है वह है अद्वेष या अवैरवृत्ति। किसी ने कुछ नुकसान या अपमान किया हो तब उसका बदला किस तरह ले, उसे नुकसान किस तरह पहुँचाये, आदि के विचार जिसके मन मे आते रहते है और जो उस बात को भूल ही नही सकता बल्कि बदला लेने के मौके ही ढूढता रहता है और उस आदमी का कुछ अनिष्ट हो तो खुश होता है, उसके दिल मे हिंसा, द्वेष या वैर की वृत्ति है। क्रोध आये, क्षोभ भी हो, फिर भी, अगर मन मे ऐसे भाव न उठ सके तो वह अहिंसा है। नुकसान करनेवाले का बुरा न चाहने की शुभ वृत्ति जिसके दिल मे है वह प्रसंगवशात् क्रोधवश होता हो, तो भी वह अहिंसा-धर्म का वफादार हो सकता है। यह दूसरी बात है कि जितनी

हदतक वह अपने गुस्से को रोकना सीखेगा उतना ही वह अहिंसा में ज्यादा शक्ति हासिल करेगा। तात्त्विक दृष्टि से यह कह सकते हैं कि इस 'चिढ के क्रोध' और 'वैर के क्रोध' में सिर्फ मात्रा का ही भेद है फिर भी यह भेद उतना ही बड़ा और महत्त्व का है जितना कि नहाने लायक गरम पानी और उबलते हुए गरम पानी के बीच का है।

(३) **प्रश्न**--बहस या भाषणों में प्रतिपक्षी का मजाक उड़ाने, वाग्बाण चलाने या तिरस्कार की भाषा इस्तैमाल करने में जो अहिंसा-भंग होता है वह किस हदतक निर्दोष माना जाये?

**उत्तर**--मान लीजिए कि हिंसा का सादा अर्थ है घाव करना। जो प्रहार दूसरे को घाव के जैसा मालूम होता है, वह हिंसा है, फिर वह हाथ-पैर या शस्त्र से किया हो, या दिल में छिपी हुई बद दुआ से हो। स्थूल घाव जब सीधी छुरी का होता है तो कम चोट करता है, टेढ़ी बरछी का हो तो बदन का ज्यादा हिस्सा चीर डालता है। तकुए की तरह नुकीला शस्त्र हो तो उसका घाव और भी ज्यादा खतरनाक होता है। उसी तरह शब्दों का घाव सीधा हो तो जितनी इजा देता है उससे बाह्य दृष्टि से विनोदात्मक, लेकिन तिरस्कार और वक्रतायुक्त शब्द ज्यादा चोट पहुँचाता है। जो प्रतिपक्षी के नाजुक भाग को जख्म पहुँचाता है, वह घाव ही है। और यह तो हम जान सकते हैं कि हमारा शब्द किसी आदमी को महज विनोद मालूम होगा या प्रहार। इसलिए अहिंसा में ऐसे प्रहार करना अनुचित है।

(४) **प्रश्न**--अहिंसा में अपनी व्यक्तिगत अथवा संस्था की रक्षा, अथवा न्याय के लिए पुलिस या कचहरी की मदद ली जा सकती है या नहीं? चोर, डाकू या गुण्डों के हमले का सामना बल से कर सकते हैं या नहीं? अहिंसावादी स्त्री अपनी इज्जत पर आक्रमण करनेवाले

पर प्रहार कर सकती है या नहीं ?

उत्तर—यहाँ पर सामान्य जनता और प्रयत्नपूर्वक अहिंसा की उपासना करनेवाले में कुछ भेद करना चाहिए। जो अपेक्षा एक विचारशील अहिंसक कार्यकर्मी से की जाती है वह सामान्य जनता से नहीं की जाती। मतलब, सामान्य जनता के लिए अहिंसा की मर्यादा कुछ मोटी होना अनिवार्य है। इसलिए अगर हम इतना ही विचार करें कि सामान्य जनता के लिए अहिंसा-धर्म का कब और कितना पालन ज़रूरी समझना चाहिए तो काफी होगा। समझदार व्यक्ति अपनी-अपनी शक्ति के मुताबिक इससे आगे बढ़ सकते हैं।

इस दृष्टि से, अहिंसा के विकास के मानी हैं जंगल के कानून में से सभ्यता अथवा कानूनी व्यवस्था की ओर प्रयाण। अगर हर एक आदमी अपने भय-दाता या अन्यायकर्ता के सामने हमेशा बन्दूक उठाकर या आदमियों को इकट्ठा करके ही खड़ा होता रहे तो वह जंगल का कायदा कहा जायेगा। इसलिए जहाँ पुलिस या कचहरी का आश्रय लेने के लिए भरपूर समय या अनुकूलता हो वहाँ जो शख्स अहिंसा की उच्च मर्यादा का पालन नहीं कर सकता वह उनका आश्रय ले तो समाज के लिए आवश्यक अहिंसा की मर्यादा का पालन हुआ माना जायेगा। जहाँ ऐसा आश्रय लेने की गुंजाइश न हो (जैसे कि जब चोर या हमला करनेवाला प्रत्यक्ष सामने आया हो) वहाँ वह अपनी आत्मरक्षा के लिए और गुनहगार को पुलिस के हवाले करने की गर्ज से उसे अपने वश में लाने के लिए, जितना आवश्यक हो उतने ही बल का उपयोग करे तो उसमें होनेवाली हिंसा क्षम्य मानी जायेगी। मगर बात यह है कि व्यवहार पर लोग उतने ही बल का प्रयोग नहीं करते। कब्जे में आये हुए गुनहगार को बुरी-बुरी गालियाँ देते हैं और उतनी बुरी

तरह पीटते है कि बाज़ दफा वह अधमरा होजाता है। यह हिंसा असभ्य है, यह हैवानियत है। समाज को ऐसे बर्ताव से परहेज़ रखने का तालीम देना ज़रूरी है। अहिंसा-पसन्द समाज के लिए यह समझ लेना ज़रूरी है कि हरेक गुनहगार को एक प्रकार का रोगी ही मानना चाहिए। जिस तरह तलवार लेकर दौडते हुए किसी पागल को या सन्निपात मे उद्दंडता करनेवाले किसी रोगी को जबरदस्ती करके भी वश मे लाना पडता है, उसी तरह चोर, लुटेरे या अत्याचारी को पकड़ तो लेना होगा, लेकिन पागल या सन्निपातवाले मरीज़ को वश मे करने के बाद हम उसे पीटते नही रहते। उल्टे उसको रहम की दृष्टि से देखते है। यही दृष्टि दूसरे गुनहगारो के प्रति भी होनी चाहिए। उसे हम पुलिस को सौंपते है इसके मानी ये है कि वैसे रोगियो का इलाज करने वाली सस्था के हाथ में हम उसे दे देते है। यह सच है कि यह सस्था भी आज ऐसे ही अज्ञानी उस्तादो की बनी हुई है, जो पुराने जमाने के शिक्षको की तरह यह मानते है कि "चमोटी लागे चमचम, विद्या आवे झमझम।" लेकिन यह दोप समाज-विज्ञान के और अहिंसा के विकास के साथ सुधरनेवाली चीज़ है। यह सस्था सुधरकर एक प्रकार की अस्पताल, पाठशाला या खास बस्ती भले ही बन जाये और उसका नाम भी भले ही बदल दिया जाये, फिर भी गुनहगारो का कब्ज़ा लेनेवाली सस्था तो वही रहेगी।

सामाजिक दृष्टि से हिंसा-अहिंसा का जो वाद है, उसे इस तरह का अनिवार्य आत्म-रक्षा के विषय में छेडने की जरूरत नही है। परन्तु सच्चे, या माने हुए, हको की प्राप्ति और कर्तव्यो की अदाई के बारे में ही इसका विचार करने की जरूरत है। हम हिन्दुस्तानी लोग कहते है "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।" मुसलमान कहते है, गाय, की

कुर्बानी करना हमारा हक है।" अथवा 'मसजिद के आसपास शांति रखना हमारा कर्तव्य है।' हिन्दू कहते हैं, 'बाजे बजाना हमारा हक है' या 'गो-हत्या रोकना हमारा कर्तव्य है।' सवर्ण कहते हैं, 'हरिजनों को दूर रखना हमारा धर्म है।' हरिजन पक्षपाती कहते हैं 'समानता उनका हक है'—इसी तरह मजदूर, किसान, मालिक, जमींदार, राजा, प्रजा, और भिन्न-भिन्न राष्ट्र अपने हक या कर्तव्य का दावा एक दूसरे के सामने पेश करते हैं।

हक या कर्तव्य की यह बुद्धि व्यक्तिगत हो, छोटी या बड़ी कौम की हो या सारे राष्ट्र की हो, उसका फैसला करने का अन्तिम साधन कौन सा है? जबरदस्ती मारपीट? युद्ध? अगर हम यह कहें कि हमारा विश्वास अहिंसा में ही है, तो उसके मानी होते हैं, इन साधनों का त्याग। किसी भी हक को हासिल करने, या कर्तव्य को अदा करने के लिए गाली-गलौज, जबरदस्ती, मारपीट, युद्ध, तोड़फोड़, आग-अगार आदि नहीं किये जा सकते। प्रतिपक्षी के प्रति तिरस्कार नहीं बताया जा सकता और उसके दिल में दहशत भी नहीं पैदा की जा सकती। इतनी बातों को अच्छी तरह समझकर तदनुसार बर्ताव करने का नाम है 'अहिंसा की तालीम'। यह तालीम यदि कार्यकर्त्ता और आम जनता को मिल जाये तो कह सकते हैं कि लोग अहिंसात्मक आन्दोलन के लिए तैयार हैं। १९३० के, तथा चम्पारन, बारडोली, बोरसद आदि के सत्याग्रहों में साधारण जनता इस बात को इशारे से ही समझ गयी थी। उसने एक खासी हदतक उसी तरह बर्ताव भी रक्खा था। उस वक्त इस बात की हँसी करनेवाले या उसकी आवश्यकता पर शंका करनेवाले, या इसके असगत आन्दोलन करनेवाले कोई नेता न थे। आज वह वायु-मण्डल नहीं है। इस वायुमण्डल को फिर से पैदा करना और लोगों में

ऐसी एक बलवान निष्ठा कायम करना कि जिससे कितनी ही विपरीत बातें कही जाने पर भी वे किसी भी हक या धर्म के लिए अहिंसा की मर्यादा न तोडें अहिंसावादी सेवक का ध्येय है। आम लोगो के लिए अहिंसा-धर्म की इससे अधिक गहरी व्याख्या मे उतरने की जरूरत नहीं।

अहिंसा-शक्ति के प्रयोग की खोज करनेवाले सेवको को बेशक ज्यादा गहरे अर्थ में उतरना होगा। इसलिए जिन प्रसगो मे आम लोगो को पुलिस, कचहरी या बल का आश्रय लेनें की छूट हो सकती है, वहा पर भी वह अहिंसक इलाज को ही आजमाने का, या नुकसान सहन कर लेने का सकल्प कर सकता है। जब यह सकल्प वह अपने व्यक्तिगत सम्बन्ध मे करेगा तभी तो अपनी सस्था के लिए करने का अधिकार उसे हो सकता है। बल्कि यह भी हो सकता है कि व्यक्तिगत मामले में इस सकल्प पर चलते हुए भी अपने अधीन सार्वजनिक सस्था के सम्बन्ध मे वह उसपर न चले। यह बात हरएक कार्यकर्त्ता की अपनी अहिंसावृत्ति और प्रयोग के प्रति निष्ठा की दृढता पर अवलबित है।

(५) **प्रश्न**––जहाँ कौमी झगडे न हो वहाँ अहिंसा को मुख्य काम किस तरह बनाया जा सकता है, और अहिंसक इलाज की खोज किस तरह की जा सकती है?

**उत्तर**––कौमी झगडे का अर्थ सिर्फ हिन्दू-मुसलमानो का झगडा ही न किया जाये, बल्कि झगडा-झमेला करनेवाले दो पक्ष जहाँपर है वहाँ कौमी झगडे का अस्तित्व माना जाये। इस अर्थ में हमारे कमनसीब देश मे शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र मिलेगा जहाँ यह स्थिति न हो। फिर जहाँपर सबल निर्बल को सताता है वहाँ दो पक्ष पैदा हुए न हो तो भी अहिंसक इलाज की खोज के लिए क्षेत्र है। उदाहरणार्थ, कुछ स्थानो में परम्परागत प्राचीन रूढि से कुलीन मानी गयी जातियाँ, नीच कही जानेवाली जातियो पर

इस प्रकार पद्धतिपूर्वक हुक्म चलाती है, और उनको ऐसी दहशत मे रखती आयी है कि उन दलित जातियो मे अपना एक पक्ष निर्माण करने की भी हिम्मत नही है। बाहरी दृष्टि से कह सकते हैं कि यहाँ न कौमी झगडे है न वे पक्ष। लेकिन सचमुच मे यह स्थिति झगडे से भी ज्यादा भयकर है और कभी न कभी तीव्र झगडे का स्वरूप ले लेगी। यहाँपर दलित वर्ग मे अहिंसा-युक्त जागृति करना और अधिकारभोगी वर्ग मे कर्तव्य का भान पैदा करना सेवक के कार्यक्षेत्र मे आ जाता है। जो इसका इलाज ढूंढ सकेगा वह हिन्दू-मुसलमानो के झगडो का अन्त करने के इलाज की शोध मे भी अपना हिस्सा अदा करेगा।

: ६ :

# अहिंसा की मर्यादाएँ

"क्या अहिंसा की शक्ति अपरिमित है ? हम जो-जो उद्देश्य अपने सामने रखे, वे सब क्या अहिंसा से सिद्ध हो सकते है ? क्या एक मर्यादा के बाद हमें कामयाबी के लिए हिंसा का सहारा नहीं लेना पड़ेगा ?"

विश्वविद्यालय के अध्यापको की एक खानगी सभा में मुझसे इन सवालो के जवाब देने को कहा गया था।

मेरा जवाब इस प्रकार था —

मै मानता हूँ कि अहिंसा के व्यवहार की कुछ स्वभावसिद्ध मर्यादाएं है। जैसे——दूसरो को नुकसान पहुँचानेवाले हक आप अहिंसा से न तो हासिल कर सकते है और न उनको कायम ही रख सकते है। मसलन्, यदि आप किसी ऐसी राजनैतिक व्यवस्था की स्थापना या रक्षा करना चाहे, जिसमें अंग्रेज, मुसलमान, हिन्दू या देशी राजा अथवा किन्हीं आर्थिक वर्गों की हुकूमत दूसरो पर चले, तो आप अहिंसा से काम नहीं ले सकते। जो बात राजनैतिक व्यवस्था पर लागू है, वही दूसरी सारी व्यवस्थाओ के लिए भी उतनी ही लागू है। लेकिन, यदि आप ऐसी राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था कायम करना चाहे, जिसका उद्देश्य हर एक व्यक्ति के समान रुतबे और समान सुयोगो का उपभोग करने मे आनेवाली रुकावटों को दूर करना हो, तो ऐसी व्यवस्था आप सम्पूर्ण रूप से केवल अहिंसा के द्वारा स्थापित कर सकते हैं।

दुष्टता के प्रयोग या रक्षा के लिए मनुष्य ने हमेशा हिंसा से ही काम लिया है। कभी-कभी बुराई के प्रतिकार के लिए भी उसने हिंसा का प्रयोग किया है। जो दुष्टता की रक्षा या प्रयोग करना चाहता है,

वह कभी अहिंसक क्रिया का बन्धन नहीं मानेगा। अगर वह अहिंसा का श्रेय लेने का दम भी भरना चाहेगा, तो वह ऐसी परिस्थिति पैदा करेगा कि उसके लिए प्रत्यक्ष हिंसा के प्रयोग की जरूरत ही न रहे और उसके विपक्षी के लिए हिंसा का प्रयोग निष्फल हो। याने वह शस्त्रास्त्रों से इतना लैस और सुसज्जित हो जायेगा कि उसके प्रतिपक्षी के लिए उसका सामना करने या बदला लेने की कल्पना भी करना दुश्वार हो जाये। उसके धर्म-शास्त्र में बिना बदला लिये कष्ट-सहन का कोई स्थान नहीं हो सकता।

इसलिए कोई भी साम्राज्य-निर्माता—चाहे वह नाजी, फैसी अथवा ब्रिटिश पद्धति का हो या जापानी, मुसलमानी और हिन्दू-पद्धति का—अहिंसा का मखौल किये बिना नहीं रह सकता। वह हिंसा का कर्त्तव्य साबित करने के लिए हर एक धर्म के शास्त्रों में से प्रमाण उपस्थित करेगा।

लेकिन, कुछ ऐसे साम्राज्य-विरोधी सच्चे जिज्ञासु भी हैं, जो अहिंसा की कार्यक्षमता के विषय में निःसदिग्ध विश्वास प्राप्त करना चाहते हैं। 'क्या अहिंसा अपने-आप में मनुष्य के न्याय्य अधिकारों की प्राप्ति और रक्षा का, या यों कहिए कि मनुष्य जिन अन्यायों को अनुभव करता है और जिनके विषय में किसी को कोई सन्देह नहीं रह गया है, उन अन्यायों के निवारण का, पर्याप्त आयुध है?' वह जिज्ञासु हिंसा से ऊबता गया है और दूसरे कारगर उपाय की तलाश में है। वह रास्ता टटोलता हुआ अहिंसा की तरफ बढ़ता है, लेकिन हर कदम पर उसे सन्देह होता है कि क्या सचमुच यह राह उसे मंजिले-मक्सूद पर पहुँचा देगी?

सत्याग्रह के जनक का तो यह दावा है कि सत्याग्रह अपने-आप में [illegible] है, जो न्याय और समानता पर खड़ी हुई दुनिया की

नवरचना कायम कर सकता है और इस विधान की रक्षा के लिए हिंसा की सहायता की ज़रूरत नही रहेगी। हम जानते है कि एक हद तक सारी दुनिया ने उस दावे को मान लिया है। यह स्वीकृति हिंसा और अहिंसा के गुण-दोषो की तात्त्विक चर्चा का ही परिणाम नही है। बल्कि यह प्रत्यक्ष अनुभव का परिणाम है कि अहिंसक प्रतिकार ने ब्रिटिश सत्ता की जडे हिला दी है।

परन्तु अभी बहुत-कुछ करना बाकी है। तबतक हिंसा के एक कार्यक्षम पर्याय के रूप मे अहिंसा का पूरा-पूरा स्वीकार नही होगा। दुनिया मे अभूतपूर्व हिंसा के इस आक्रमण के सामने बहादुर से बहादुर दिल भी काँप उठे इसमें आश्चर्य नही।

सत्याग्रह का प्रवर्तक कहता है कि उसके सिद्धान्त में उसका विश्वास इतना दृढ कभी नही था जितना कि आज है। उसे ऐसा प्रतीत होता है कि हिंसा के पैर अब उखड गये है। यद्यपि हममे इतनी अद्भुत श्रद्धा न हो तो भी यह कार्य जितना उसका है, उतना ही हमारा भी है। इसलिए उसकी आज्ञाएँ बजा लाकर हम उसकी मदद कर सकते है, क्योकि उस मार्ग के अलावा दूसरा विकल्प तो हिंसा का ही हो सकता है। और हम रोज देख रहे है कि न्याययुक्त व्यवस्था कायम करने में हिंसा निष्फल साबित हो रही है। उतनी उज्जवल श्रद्धा और ज्ञान से नही, तो कम-से-कम सच्ची मेहनत से हम उसका उपाय आजमायें, तो हर्ज तो हरगिज नही हो सकता। उसके पक्ष मे सारे ससार के धार्मिक पुरुषो का अनुभव है। हम उसे तुच्छ न समझें।

# 'मण्डल' का गांधी-साहित्य

## महात्मा गांधी की रचनाएँ

१ आत्मकथा : विश्व-साहित्य का एक अनमोल रत्न। उपनिषदो-सा पवित्र और उपन्यासो-जैसा रोचक। बापू द्वारा सत्य की साधना के पथ [की] रूप-रेखा। नवीन और सस्ता सस्करण १) विशेष सस्करण १॥)
[स]क्षिप्त सस्करण ( पाठ्यक्रम के लिए ) ॥)

२. दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह . 'सत्याग्रह' की उत्पत्ति और [द]क्षिण अफ्रीका मे उसके प्रथम प्रयोगो का इतिहास १॥)

३. अनीति की राह पर सयम और ब्रह्मचर्य पर लिखे हुए [पुरा]तन लेख ॥=)

४ ब्रह्मचर्य : सयम और ब्रह्मचर्य पर लिखे हुए नये लेख ॥)

५. हमारा कलंक : अप्राप्य इसका अग्रेजी सस्करण 'ब्लीडिंग [वू]ण्ड' मण्डल से मिलता है। १॥)

६. स्वदेशी ग्रामोद्योग ' स्वदेशी और ग्रामोद्योग पर लिखे [हु]ए लेख ॥)

७. युद्ध और अहिंसा युद्ध और अहिंसा पर लिखे हुए लेख ॥)

८ गीताबोध ' गीता का सरल तात्पर्य =)

९ मगल-प्रभात : सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य आदि एकादश व्रतो [प]र प्रवचन =)

१० अनासक्तियोग गीता की सरल टीका =) श्लोक-सहित ≡) [स]जिल्द ।)

११ सर्वोदय रस्किन के 'अन्टु दिस लास्ट' का रूपान्तर =)

१२ हिन्द-स्वराज . स्वराज की हमारी समस्या पर लिखी पुरानी [पु]स्तिका, जो आज भी ताजी है ≡)

१३ ग्रामसेवा ग्रामसेवा पर लिखा हुआ निबन्ध =)

१४ सत्यवीर सुकरात यूनान के महापुरुष सुकरात के मुकदमे [और] उनके बयान का रोचक और शिक्षाप्रद वर्णन =)

**१५. सत्याग्रह : क्यों, कब और कैसे ?** : सत्याग्रह क्या, कब, और कैसे शुरू किया जाये इसपर लिखे हुए लेख ३)

## गांधी-सम्बन्धी ग्रन्थ

**१. गांधी-विचार-दोहन** : श्री किशोरलाल घ० मशरूवाला—इसमे महात्मा गाधी के विचारो को विषयानुसार वर्गीकरण द्वारा सकलित किया गया है. ।॥)

**२. इंग्लैण्ड में महात्माजी** श्री महादेव ह० देसाई—गांधीजी की दूसरी गोलमेज परिषद के समय की यात्रा का सुन्दर सरस वर्णन ।॥)

**३. गांधी-अभिनन्दन-ग्रन्थ** सम्पादक—श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, इसमे विदेशी और भारतीय सतो विचारको, विद्वानो और लोकनेताओ के गाधीजी पर लिखे गये तात्त्विक लेख है । मूल-ग्रथ की अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति है । उसीका हिन्दी अनुवाद १।), २)

**४. बापू** श्री घनश्यामदास बिडला—गाधीजी का अत्यन्त निकट से किया हुआ अध्ययन, रोचक स्मरणीय प्रसगो से पूर्ण, कई भाषाओ मे अनुवादित, देश में सर्वप्रशसित; १३ सुन्दर चित्रो सहित ॥=), सजिल्द १।), हाथ कागज पर छपा २)

**६. डायरी के पन्ने** श्री घनश्यामदास बिडला—गाधीजी के साथ दूसरी गोलमेज परिषद मे हुई लेखक की यात्रा का रोचक, ज्ञानवर्धक वर्णन, गोलमेज-नाटक के नेपथ्य का परिचय । अनेक चित्रो सहित ।॥) सजिल्द १।)

**७. महात्मा गांधी** श्री रामनाथ 'सुमन'—अप्राप्य

## सोल-एजेंसी प्रकाशन

**८. गांधीवाद की रूपरेखा** श्री रामनाथ 'सुमन'—गाधीवाद का गभीर और मननीय विवेचन १)

---

व्याख्यान सार-संग्रह पुस्तकमाला का १७ वाँ पुष्प

श्रीमज्जैनाचार्य

पूज्य श्री जवाहिरलालजी महाराज के

व्याख्यानों में से

# सती मदनरेखा

[ सती मयणरेहा ]

सम्पादक और प्रकाशक—

श्री साधुमार्गी जैन

पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज

की सम्प्रदाय का

हितेच्छु श्रावक मण्डल, रतलाम (मालवा)

मुद्रक—के० हमीरमल लूणियाँ

अध्यक्ष—दि डायमण्ड जुबिली (जैन) प्रेस, अजमेर

वि० संवत १९९६
वीर संवत २४६६
ईस्वी सन १९३९

अर्द्ध मूल्य
।-)

प्रथम संस्करण
२०००

कागज और छपाई की लागत से इस पुस्तक का मूल्य ॥=) है

लेकिन

भीनासर ( बीकानेर ) निवासी

श्रीमान् सेठ

मगनमलजी नथमलजी बाँठिया

ने

**आधी लागत देकर**

अपने स्वर्गीय पिता

श्री सेठ फतेहचन्दजी बाँठिया

की

**पुण्य-स्मृति**

में

यह पुस्तक अर्द्ध मूल्य ।-) में

वितरण कराई है ।

# दो शब्द

श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्री १००८ श्री जवाहिरलालजी महाराज के व्याख्यानों मे से सम्पादित 'मदनरेखा' नाम की यह पुस्तक 'व्याख्यान सार-संग्रह पुस्तकमाला' का १७ वाँ पुष्प है। इससे पहले के पुष्पों को पाठकों ने जिस सद्भाव से अपनाया उसके कारण मण्डल को प्रोत्साहन मिला और मण्डल ने यह १७ वाँ पुष्प भी प्रकाशित किया है।

यह पुस्तक प्रकाशित होने से पूर्व श्री अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स ऑफिस, बम्बई को भेजकर साहित्य निरीक्षक समिति द्वारा प्रमाणित करा ली गई है।

मण्डल द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की कीमत केवल कागज और छपाई की लागत के अन्दाज से ही रखी जाती है। सम्पादन आदि किसी प्रकार के खर्च का भार पुस्तकों पर नहीं डाला जाता। फिर भी यूरोपीय युद्ध के कारण कागज और छपाई के साधनों की कीमत बहुत बढ़ गई है. इसलिए केवल कागज और छपाई की दृष्टि से इस पुस्तक की कीमत।≈)

होती है। परन्तु भीनासर निवासी श्रीमान् सेठ मगनमलजी नथमलजी बाँठिया ने आधी लागत प्रदान करके यह पुस्तक अपने स्वर्गीय पिता श्रीमान् सेठ फतेचन्दजी बाँठिया की पुण्य-स्मृति मे अर्द्ध मूल्य।=) में वितरण कराई है। इसके लिए हम बाँठिया बन्धु की उदारता की सराहना करते हैं तथा स्वर्गीय सेठ फतेहचन्दजी का चित्र और उनका संक्षिप्त परिचय इस पुस्तक में दे रहे हैं।

अन्त मे हम इस निवेदन के साथ अपना वक्तव्य समाप्त करते हैं, कि श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज साहब के व्याख्यान साधु भाषा मे ही होते हैं, फिर भी यदि संग्राहक सम्पादक आदि से भाषा और भाव मे कोई त्रुटि रह गई हो, तो उस त्रुटि के लिये संग्राहक और सम्पादक ही जिम्मेदार हैं। पाठकों की ओर से ऐसी किसी त्रुटि की सूचना मिलने पर हम उस त्रुटि को मिटाने के लिए सदैव तैयार हैं। इत्यलम्।

भवदीय—

रतलाम
मार्गशीर्ष शुक्ला
प्रतिपदा
सं० १९९६ वि०

वालचन्द श्रीश्रीमाल, वर्द्धमान पीतलिया
सेक्रेटरी प्रेसिडेण्ट
श्री साधुमार्गी जैन पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी
महाराज की सम्प्रदाय का हितेच्छु
श्रावक मण्डल, रतलाम (मालवा)

स्वर्गीय श्रीमान् सेठ फतेहचन्दजी बांठिया

जन्म सं० १९३४ वि. ] ❀ [ स्वर्गवास सं० १९९३

# स्वर्गीय श्रीमान् सेठ फतेहचन्दजी बाँठिया

का

## संक्षिप्त परिचय

कलकत्ते की सुप्रसिद्ध फर्म 'मेनरूप फतेहचन्द, ३० मूंगा पट्टी' के संस्थापक सेठ फतेहचन्दजी बाँठिया का जन्म भीनासर (बीकानेर) मे वहां के सुविख्यात बाँठिया परिवार मे सम्वत् १६३४ मे हुआ था। आपके पिता का नाम सेठ मेनरूपजी था। सेठ फतेहचन्दजी चार भाई थे। दो भाई आप से बड़े थे और एक भाई छोटे थे। आप बाल्यकाल से ही धर्म-प्रेमी थे, इस कारण साधु-समागम, व्याख्यान-श्रवण और तपोपवास करते ही रहते थे। उदार-स्वभाव होने के कारण आप समय-समय पर धर्म कार्य मे यथाशक्ति मुक्त-हस्त से व्यय किया करते थे। आपने अल्पवय मे ही व्यापार सम्बन्धी कारोबार सम्हाल लिया था, जिसे उत्तरोत्तर उन्नत करते गये थे और व्यापार मे अच्छी ख्याति प्राप्त की थी।

वृद्धावस्था समीप जानकर आप अपने ऊपर का व्यापारिक भार कम करने लगे और अपने छोटे भाई लक्ष्मीचन्दजी के पुत्र गोवर्धनदासजी तथा अपने दोनो पुत्र मगनमलजी एवं नथमलजी पर डालते गये। धीरे-धीरे आपने सम्वत् १६८८ में

अपने ऊपर का समस्त व्यापारिक भार उतार दिया और अपनी जन्मभूमि भीनासर मे रहकर सन्त-समागम एवं धर्म ध्यान में ही अपना समय लगाने लगे। इस प्रकार पाँच वर्ष तक पूर्ण धार्मिक जीवन व्यतीत करने के पश्चात् आप अस्वस्थ रहने लगे। रुग्णावस्था मे आपके बड़े भाई श्री ऋषभचन्दजी के सुपुत्र सेठ बहादुरमलजी बाँठिया ने आपको अन्त समय तक बहुत धर्म-सहाय्य दिया।

कुछ समय तक अस्वस्थ रहने के पश्चात् सेठ फतेहचन्दजी समाधि-पूर्वक खमत-खमावना करके सम्वत् १९९३ पौष विदी ६ को नश्वर शरीर त्याग स्वर्गवासी हुए और अपने पीछे उज्ज्वल कीर्त्ति तथा विशाल सुखी परिवार छोड़ गये।

आपके पितृ-भक्त पुत्र श्री मगनमलजी और श्री नथमलजी ने इस पुस्तक की लागत का आधा व्यय अपने पास से देकर अपने स्वर्गीय पिता श्री की पुण्य-स्मृति मे यह पुस्तक अर्द्ध-मूल्य में वितरण कराई है। आशा है कि धर्म-प्रेमी जनता मगनमलजी और नथमलजी की इस उदारता का लाभ लेकर उन्हें प्रोत्साहित करेगी। इत्यलम्।

# प्रकरण सूची

# प्राक्कथन

चरितानुवाद का उद्देश्य है, शास्त्र के जनहितकारी सूक्ष्म उपदेश को स्थूल रूप से जनता के सामने इस तरह रखना, कि जिससे जनता उस सूक्ष्म उपदेश को भली भाँति हृदयंगम कर सके, उससे होने वाले लाभ को जानकर उसे व्यवहार में ला सके और उस उपदेश के विरुद्ध आचरण करने से होनेवाली हानि को समझ कर, वैसे आचरण से बचे। साधारण जनता, सूत्र रूप से दिये गये उपदेश को समझने, धारण करने और व्यवहार में लाने में असमर्थ होती है। इसलिये कुशल उपदेशक लोग, उस उपदेश को चरितानुवाद से गूँथकर जनता के सामने रखते हैं, जिससे कि वह उपदेश जनता के लिए ग्राह्य हो सके। यदि कोई व्यक्ति, साधारण जनता को रंग बताकर उससे यह कहे कि इस रंग में हाथी भी है, घोड़ा भी है और दूसरे समस्त पदार्थ भी हैं, या बनाये जा सकते हैं, तो साधारण जनता इस बात को सहसा स्वीकार न करेगी। लेकिन जब कोई चित्रकार उसी रंग से ऐसी चीजें बना देता है, तब जनता की समझ में यह बात आजाती है,

कि वास्तव मे, रंग मे हाथी, घोड़ा और दूसरी चीजें हैं। इसी प्रकार, सूत्र रूप उपदेश भी साधारण जनता की समझ मे नहीं आ सकता, परन्तु जब उस उपदेश को चरितानुवाद का जामा पहना दिया जाता है, तब वह उपदेश जनता के समझने आदि मे सरल हो जाता है।

सती मयणरहा की यह कथा भी, इसी उद्देश्य से कही जाती है। मयणरहा प्राकृत नाम है, जिसका संस्कृत है मदनरेखा। इस कथा मे जिस सती का चरित्र है, उसका नाम 'मदनरेखा' उसके सौन्दर्य के कारण था। वह ऐसी सुन्दरी थी, कि जैसे मदन (काम) की मूर्त्ति ही हो। लेकिन उसकी कथा, उसके सौन्दर्य के कारण, उसकी प्रशंसा करने के लिए नहीं कही जा रही है। अपितु इस कथा के कहने का एक उद्देश्य है, महा रूपवती मदनरेखा का शील पालन, पति का कल्याण करना और स्वयं को जीवन मुक्त बनाना। मदनरेखा के सन्मुख एक ओर तो ऐसा प्रलोभन था, कि जिसमे साधारण स्त्री का फँस जाना और शील-भ्रष्ट हो जाना बहुत सम्भव माना जाता है। दूसरी ओर उसके सामने ऐसी विपत्ति थी, कि जो अन्तिम सीमा की कही जा सकती है। ऐसी विपत्ति से छुटकारा पाने के लिए, शील नष्ट न करनेवाली स्त्रियाँ बहुत कम निकलेंगी। लेकिन सती मदनरेखा ने, न तो प्रलोभन मे पड़कर ही शील नष्ट किया, न विपत्ति से छुटकारा पाने के लिए ही।

यदि तुलना की जावे, तो परिस्थिति की विषमता की दृष्टि से, मदनरेखा, शील पालन मे सीता से भी बढ़ी हुई थी। रावण ने सीता को जैसे प्रलोभन दिये थे, वैसे ही प्रलोभन, मदनरेखा के ज्येष्ठ राजा मणिरथ ने भी मदनरेखा को दिये थे। लेकिन पति की हत्या, गर्भवती एवं अकेली होती हुई भी रात्रि के समय मे वन गमन, वन मे पुत्र प्रसव, हाथी का प्राणघातक प्रकोप और जिस विद्याधर द्वारा रक्षा हुई, उसीके द्वारा सतीत्व-हरण का प्रयत्न आदि स्थिति का सामना, सीता को न करना पड़ा था। रावण के यहाँ रहने पर भी, सीता को यह आशा थी, कि मैं अपने पति राम से शीघ्र ही मिल सकूँगी। किन्तु युगबाहु की हत्या के पश्चात, मदनरेखा के लिए ऐसी कोई आशा न थी। उसका वर्त्तमान भी अन्धकार पूर्ण था और भविष्य भी। फिर भी मदनरेखा ने, उस अन्धकार पूर्ण वर्त्तमान या भविष्य का अन्त करने के लिए, अपना सतीत्व नहीं त्यागा।

मदनरेखा की कथा कहने का एक उद्देश्य तो यह है जो ऊपर बताया गया है और दूसरा उद्देश्य है. पति का पारलौकिक भविष्य सुधारना। स्त्रियाँ, प्रायः यह समझती है, कि हमारा और पति का सम्बन्ध केवल गार्हस्थ्य धर्म निभाने के लिए, परस्पर विषय जन्य सुख भोगने के लिए, सन्तान उत्पन्न करने के लिए, या गार्हस्थ्य जीवन में पारस्परिक सहायता के लिए है। हम या हमारे पति, इसने

कि वास्तव मे, रंग मे हाथी, घोड़ा और दूसरी चीजें हैं। इसी प्रकार, सूत्र रूप उपदेश भी साधारण जनता की समझ में नहीं आ सकता, परन्तु जब उस उपदेश को चरितानुवाद का जामा पहना दिया जाता है, तब वह उपदेश जनता के समझने आदि में सरल हो जाता है।

सती मयणरहा की यह कथा भी, इसी उद्देश्य से कही जाती है। मयणरहा प्राकृत नाम है, जिसका संस्कृत है मदनरेखा। इस कथा मे जिस सती का चरित्र है, उसका नाम 'मदनरेखा' उसके सौन्दर्य के कारण था। वह ऐसी सुन्दरी थी, कि जैसे मदन (काम) की मूर्त्ति ही हो। लेकिन उसकी कथा, उसके सौन्दर्य के कारण, उसकी प्रशंसा करने के लिए नहीं कही जा रही है। अपितु इस कथा के कहने का एक उद्देश्य है, महा रूपवती मदनरेखा का शील पालन, पति का कल्याण करना और स्वयं को जीवन मुक्त बनाना। मदनरेखा के सन्मुख एक ओर तो ऐसा प्रलोभन था, कि जिसमें साधारण स्त्री का फँस जाना और शील-भ्रष्ट हो जाना बहुत सम्भव माना जाता है। दूसरी ओर उसके सामने ऐसी विपत्ति थी, कि जो अन्तिम सीमा की कही जा सकती है। ऐसी विपत्ति से छुटकारा पाने के लिए, शील नष्ट न करनेवाली स्त्रियाँ बहुत कम निकलेंगी। लेकिन सती मदनरेखा ने, न तो प्रलोभन में पड़कर ही शील नष्ट किया, न विपत्ति से छुटकारा पाने के लिए ही।

यदि तुलना की जावे, तो परिस्थिति की विषमता की दृष्टि से, मदनरेखा, शील पालन मे सीता से भी बढ़ी हुई थी। रावण ने सीता को जैसे प्रलोभन दिये थे, वैसे ही प्रलोभन, मदनरेखा के ज्येष्ठ राजा मणिरथ ने भी मदनरेखा को दिये थे। लेकिन पति की हत्या, गर्भवती एवं अकेली होती हुई भी रात्रि के समय मे वन गमन, वन में पुत्र प्रसव, हाथी का प्राणघातक प्रकोप और जिस विद्याधर द्वारा रक्षा हुई, उसीके द्वारा सतीत्व-हरण का प्रयत्न आदि स्थिति का सामना, सीता को न करना पड़ा था। रावण के यहाँ रहने पर भी, सीता को यह आशा थी, कि मैं अपने पति राम से शीघ्र ही मिल सकूँगी। किन्तु युगबाहु की हत्या के पश्चात, मदनरेखा के लिए ऐसी कोई आशा न थी। उसका वर्त्तमान भी अन्धकार पूर्ण था और भविष्य भी। फिर भी मदनरेखा ने, उस अन्धकार पूर्ण वर्त्तमान या भविष्य का अन्त करने के लिए, अपना सतीत्व नहीं त्यागा।

मदनरेखा की कथा कहने का एक उद्देश्य तो यह है जो उपर बताया गया है और दूसरा उद्देश्य है, पति का पारलौकिक भविष्य सुधारना। स्त्रियाँ, प्राय: यह समझती हैं, कि हमारा और पति का सम्बन्ध केवल गार्हस्थ्य धर्म निभाने के लिए, परस्पर विषय जन्य सुख भोगने के लिए, सन्तान उत्पन्न करने के लिए, या गार्हस्थ्य जीवन मे पारस्परिक सहायता के लिए है। हम या हमारे पति, इससे

कि वास्तव मे, रंग मे हाथी, घोड़ा और दूसरी चीजें हैं। इसी प्रकार, सूत्र रूप उपदेश भी साधारण जनता की समझ मे नहीं आ सकता, परन्तु जब उस उपदेश को चरितानुवाद का जामा पहना दिया जाता है, तब वह उपदेश जनता के समझने आदि मे सरल हो जाता है।

सती मयणरहा की यह कथा भी, इसी उद्देश्य से कही जाती है। मयणरहा प्राकृत नाम है, जिसका संस्कृत है मदनरेखा। इस कथा मे जिस सती का चरित्र है, उसका नाम 'मदनरेखा' उसके सौन्दर्य के कारण था। वह ऐसी सुन्दरी थी, कि जैसे मदन (काम) की मूर्त्ति ही हो। लेकिन उसकी कथा, उसके सौन्दर्य के कारण, उसकी प्रशंसा करने के लिए नहीं कही जा रही है। अपितु इस कथा के कहने का एक उद्देश्य है, महा रूपवती मदनरेखा का शील पालन, पति का कल्याण करना और स्वयं को जीवन मुक्त बनाना। मदनरेखा के सन्मुख एक ओर तो ऐसा प्रलोभन था, कि जिसमें साधारण स्त्री का फँस जाना और शील-भ्रष्ट हो जाना बहुत सम्भव माना जाता है। दूसरी ओर उसके सामने ऐसी विपत्ति थी, कि जो अन्तिम सीमा की कही जा सकती है। ऐसी विपत्ति से छुटकारा पाने के लिए, शील नष्ट न करनेवाली स्त्रियाँ बहुत कम निकलेंगी। लेकिन सती मदनरेखा ने, न तो प्रलोभन मे पड़कर ही शील नष्ट किया, न विपत्ति से छुटकारा पाने के लिए ही

यदि तुलना की जावे, तो परिस्थिति की विषमता की दृष्टि से, मदनरेखा, शील पालन मे सीता से भी बढ़ी हुई थी। रावण ने सीता को जैसे प्रलोभन दिये थे, वैसे ही प्रलोभन, मदनरेखा के ज्येष्ट राजा मणिरथ ने भी मदनरेखा को दिये थे। लेकिन पति की हत्या, गर्भवती एवं अकेली होती हुई भी रात्रि के समय मे वन गमन, वन में पुत्र प्रसव, हाथी का प्राणघातक प्रकोप और जिस विद्याधर द्वारा रक्षा हुई, उसीके द्वारा सतीत्व-हरण का प्रयत्न आदि स्थिति का सामना, सीता को न करना पड़ा था। रावण के यहाँ रहने पर भी, सीता को यह आशा थी, कि मैं अपने पति राम से शीघ्र ही मिल सकूँगी। किन्तु युगबाहु की हत्या के पश्चात, मदनरेखा के लिए ऐसी कोई आशा न थी। उसका वर्त्तमान भी अन्धकार पूर्ण था और भविष्य भी। फिर भी मदनरेखा ने, उस अन्धकार पूर्ण वर्त्तमान या भविष्य का अन्त करने के लिए, अपना सतीत्व नहीं त्यागा।

मदनरेखा की कथा कहने का एक उद्देश्य तो यह है जो ऊपर बताया गया है और दूसरा उद्देश्य है, पति का पारलौकिक भविष्य सुधारना। स्त्रियाँ, प्रायः यह समझती हैं, कि हमारा और पति का सम्बन्ध केवल गार्हस्थ्य धर्म निभाने के लिए, परस्पर विषय जन्य सुख भोगने के लिए, सन्तान उत्पन्न करने के लिए, या गार्हस्थ्य जीवन मे पारस्परिक सहायता के लिए है। हम या हमारे पति, इससे

चरित्र से प्रकट है। महाराजा मणिरथ के अनेक रानियाँ मौजूद थीं, और वह चाहता तो राजा होने से और अनेक राजकुमारियो के साथ विवाह कर सकता था, परन्तु अपनी कन्या समान मानी जाने वाली अनुज वधु पर कुदृष्टि डाल कर उसे अपनी पत्नी बनानी चाही व उस पर अपना अधिकार करना चाहा, परिणाम स्वरूप उसे बन्धु-घातक बनना पड़ा, अपना जीवन भी खोना पड़ा और नरक की यातना सहने को नरक गति प्राप्त करनी पड़ी, यदि वह इन्द्रियो का गुलाम न बनता, कामवासना पर संयम रखता, और अपने अधिकार से बाहर की वस्तु पर न ललचाता तो ऐसा दुक्खान्त परिणाम क्यो आता ?

इस प्रकार इस कथा में प्रधानतः तीन उपदेश हैं। एक तो कितनी भी अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति आवे, सब का सामना करके शील पर दृढ़ रहना। दूसरा दाम्पत्य सम्बन्ध को केवल इहलौकिक सुखों के लिए ही न समझना, किन्तु अपना स्वार्थ त्याग कर के भी एक दूसरे का पारलौकिक जीवन सुधारने का प्रयत्न करना। और तीसरा उपदेश है, इन्द्रियों पर संयम करना, इन्द्रियों के वश न होना, यानि ममत्व को मर्यादित कर देना। इन उपदेशों के सिवा, जब चरित्र वर्णन होता है, तब प्रसंगवश अन्य छोटे बड़े उपदेश भी आते ही हैं। इस कथा में भी इन तीन प्रधान उपदेशों के सिवा और भी छोटे बड़े ऐसे कई उपदेश

अधिक कुछ नहीं कर सकते, न दाम्पत्य-सम्बन्ध पूरी तरह निभाने के लिए, अधिक कुछ करने की आवश्यकता ही है। यह समझने के कारण ही, पति जब मरने लगता है, तब स्त्रियाँ रुदन करके, मृत्यु शैया पर पड़े हुए अपने पति को अशान्त हृदय बना देती हैं, उसके चित्त को, सांसारिक ममत्व अथवा चिन्ताओं मे डाल देती हैं। परलोक सुधारने के लिए जिस आत्म-शुद्धि की आवश्यकता है, उस आत्म-शुद्धि के प्रतिकूल वातावरण बना देती हैं और इस प्रकार पति का परलोक बिगाड़ देती हैं। सती मदनरेखा ने, इसके विरुद्ध आदर्श रखकर यह बताया है, कि दाम्पत्य-सम्बन्ध, इहलौकिक जीवन भी क्लेश रहित करने के लिए है और पारलौकिक जीवन भी। इस प्रकार इस कथा का उद्देश्य यह बताना है, कि स्त्रियाँ, अपने पति का बिगड़ता हुआ परलोक किस प्रकार सुधार सकती हैं।

इस कथा का तीसरा उद्देश्य यह बतलाना है कि जो शब्द रूप, गन्ध, रस और स्पर्श आदि भोग्योपभोग साधनो की मर्यादा नहीं करता है वह विषय वासना और भोग पीपासा को सीमित नहीं करता हुवा इन्द्रियों का गुलाम बन जाता है। औचित्य अनौचित्य के विचार को विस्मृत होकर इन्द्रियो की तृप्ति के लिये सदा लालायित बना रहता है, उसका परिणाम क्या होता है वह कैसा २ अनर्थ कर डालता है। तथा उसका इहलोक, परलोक कैसा बिगड़ता है, यह इस कथा में आये हुए महाराजा मणिरथ के

अधिक कुछ नहीं कर सकते, न दाम्पत्य-सम्बन्ध पूरी तरह निभाने के लिए, अधिक कुछ करने की आवश्यकता ही है। यह समझने के कारण ही, पति जब मरने लगता है, तब स्त्रियाँ रुदन करके, मृत्यु शैया पर पड़े हुए अपने पति को अशान्त हृदय बना देती हैं, उसके चित्त को, सांसारिक ममत्व अथवा चिन्ताओं मे डाल देती हैं। परलोक सुधारने के लिए जिस आत्म-शुद्धि की आवश्यकता है, उस आत्म-शुद्धि के प्रतिकूल वातावरण बना देती हैं और इस प्रकार पति का परलोक बिगाड़ देती हैं। सती मदनरेखा ने, इसके विरुद्ध आदर्श रखकर यह बताया है, कि दाम्पत्य-सम्बन्ध, इहलौकिक जीवन भी क्लेश रहित करने के लिए है और पारलौकिक जीवन भी। इस प्रकार इस कथा का उद्देश्य यह बताना है, कि स्त्रियाँ, अपने पति का बिगड़ता हुआ परलोक किस प्रकार सुधार सकती हैं।

इस कथा का तीसरा उद्देश्य यह बतलाना है कि जो शब्द रूप, गन्ध, रस और स्पर्श आदि भोग्योपभोग साधनों की मर्यादा नहीं करता है वह विषय वासना और भोग पीपासा को सीमित नहीं करता हुवा इन्द्रियों का गुलाम बन जाता है। औचित्य अनौचित्य के विचार को विस्मृत होकर इन्द्रियो की तृप्ति के लिये सदा लालायित बना रहता है, उसका परिणाम क्या होता है वह कैसा २ अनर्थ कर डालता है। तथा उसका इहलोक, परलोक कैसा बिगड़ता है, यह इस कथा में आये हुए महाराजा मणिरथ के

चरित्र से प्रकट है। महाराजा मणिरथ के अनेक रानियाँ मौजूद थीं, और वह चाहता तो राजा होने से और अनेक राजकुमारियो के साथ विवाह कर सकता था, परन्तु अपनी कन्या समान मानी जाने वाली अनुज वधु पर कुदृष्टि डाल कर उसे अपनी पत्नी बनानी चाही व उस पर अपना अधिकार करना चाहा, परिणाम स्वरूप उसे बन्धु-घातक बनना पड़ा, अपना जीवन भी खोना पड़ा और नरक की यातना सहने को नरक गति प्राप्त करनी पड़ी, यदि वह इन्द्रियो का गुलाम न बनता, कामवासना पर संयम रखता, और अपने अधिकार से बाहर की वस्तु पर न ललचाता तो ऐसा दुक्खान्त परिणाम क्यो आता ?

इस प्रकार इस कथा में प्रधानतः तीन उपदेश हैं। एक तो कितनी भी अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति आवे, सब का सामना करके शील पर दृढ़ रहना। दूसरा दाम्पत्य सम्बन्ध को केवल इहलौकिक सुखों के लिए ही न समझना, किन्तु अपना स्वार्थ त्याग कर के भी एक दूसरे का पारलौकिक जीवन सुधारने का प्रयत्न करना। और तीसरा उपदेश है, इन्द्रियों पर संयम करना, इन्द्रियों के वश न होना, यानि ममत्व को मर्यादित कर देना। इन उपदेशों के सिवा, जब चरित्र वर्णन होता है, तब प्रसंगवश अन्य छोटे बड़े उपदेश भी आते ही हैं। इस कथा में भी इन तीन प्रधान उपदेशों के सिवा और भी छोटे बड़े ऐसे कई उपदेश

मिलेंगे, जो आत्म कल्याण मे सहायक हैं। इस कथा मे आये हुए उपदेशो को, जो पूरी तरह हृदयंगम करके व्यवहार मे लावेगा वह तो अपने आत्मा का पूर्ण कल्याण कर सकेगा और जो आंशिक पालन करेगा, वह आंशिक लाभ ले सकेगा। चरितानुवाद द्वारा उपदेश देने वाले का उद्देश्य तो यही रहता है, कि जनता, इस चरितानुवाद द्वारा दिये गये उपदेश को पूरी तरह अपनावे और आत्मा को जीवन मुक्त बनावे।
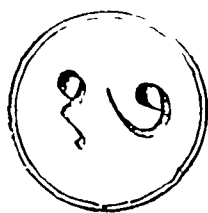
# सती मदनरेखा

## कथारम्भ

भारतवर्ष मे, सुदर्शनपुर नाम का एक नगर था। सुदर्शनपुर के राजा का नाम था, मणिरथ। मणिरथ, न्याय नीती कुशल और क्षत्रियोचित गुण सम्पन्न था। मणिरथ के छोटे भाई का नाम युगबाहु था। युगबाहु, अपने भाई की तरह वीर और कला कुशल होने के साथ ही, विनम्र भी था। जिसकी यह कथा है, वह सती मयणरहा या मदनरेखा, युगबाहु की धर्म-पत्नी थी।

मणिरथ और युगबाहु दोनों भाइयों में, परस्पर पूर्ण स्नेह था। मणिरथ, अपने छोटे भाई युगबाहु को पुत्र की तरह मानता,

उस पर पूर्ण विश्वास रखता और उसकी सुविधा का भी समुचित रूपेण ध्यान रखता। इसी प्रकार युगबाहु भी, अपने बड़े भाई को अपने पिता के समान आदरणीय मानता, उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य न करता, तन मन से उसकी सेवा करता, उसके प्रति विनम्र एवं आज्ञाकारी रहता और अपने हृदय में, स्वप्न में भी उसके प्रति दुर्भाव न आने देता। तात्पर्य यह कि दोनों भाइयों में आदर्श स्नेह था। दोनों, दो देह एक आत्मा के समान रहते थे।

एक दिन मणिरथ ने विचार किया, कि मेरा भाई युगबाहु वीर, विनम्र, न्याय नीति कुशल और मेरा पूर्ण भक्त है। वह मेरा उत्तराधिकारी होने के सर्वथा योग्य है। इसलिए यही अच्छा होगा, कि मैं युगबाहु को युवराज पद देकर अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दूँ। अभी राज्य का कार्य भार मुझ अकेले पर ही है, लेकिन जब मैं युगबाहु को युवराज बना दूँगा, तब कुछ भार उस पर भी पड़ जावेगा। जिससे मेरे पर का भार हल्का हो जावेगा। इस प्रकार विचार कर उसने, युगबाहु को अपना युवराज बनाने का निश्चय किया।

दूसरे दिन प्रातःकाल, मणिरथ, अपने निश्चय पर प्रसन्न होता हुआ बैठा था। उसी समय युगबाहु आया। अपने बड़े भ्राता को प्रणाम करने, उसकी कुशल जानने एवं कोई सेवा-कार्य

हो तो उसे सुनने के लिए, युगबाहु नित्य प्रातःकाल मणिरथ की सेवा में उपस्थित हुआ करता था। उसने, अपने लिए ऐसा नियम ही बना लिया था। इस नियम के अनुसार, युगबाहु, मणिरथ के सामने उपस्थित हुआ और उसने मणिरथ को प्रणाम किया। मणिरथ ने, युगबाहु को नित्य से अधिक स्नेह एवं आनन्द पूर्वक आशीर्वाद दिया। पारस्पारिक कुशल-प्रश्न के पश्चात्, युगबाहु ने मणिरथ से कहा, कि आज मैं, आपको नित्य से बहुत अधिक आनन्दित देख रहा हूँ। क्या मैं यह जानने के योग्य हूँ, कि आज ऐसा कौनसा हर्ष-समाचार है, जिसने आप ऐसे गम्भीर महाराजा पर भी अत्यधिक प्रभाव डाला है?

युगबाहु का कथन सुनकर, मणिरथ और भी अधिक प्रसन्न हुआ। उसने युगबाहु से कहा, कि क्या कोई ऐसी बात भी हो सकती है, जो मैं तुम से गुप्त रखूँ? मैंने, आज तक तुम से न तो कोई बात गुप्त रखी ही है, न भविष्य में गुप्त रखने की इच्छा ही है और जिस बात के लिये तुम पूछ रहे हो, वह बात तो विशेषतः तुम्ही से सम्बन्धित है, इसलिए उसे गुप्त रखने का कोई कारण ही नहीं है। प्रिय युगबाहु, मुझे आज अवश्य ही अत्यधिक प्रसन्नता है और प्रसन्नता का कारण है, तुम्हें युवराज बनाने का मेरा निश्चय। मैंने, तुम्हे अपना युवराज बनाने का निश्चय किया है। इस महान् शुभ निर्णय के कारण ही, मुझे प्रसन्नता है। मैंने

सोचा, कि इस समय राज्य के कार्य का भार मुझ अकेले ही पर है। जब मैं तुम्हें युवराज बना दूँगा, तब मेरे ऊपर जो भार है, वह दो भागों मे बट जायगा और अर्द्ध भाग तुम्हारे कन्धों पर आ पड़ेगा।

मणिरथ का कथन सुनकर, युगबाहु, सकुचाकर इस तरह नम्र हो गया, जैसे उस पर कोई स्थूल भार आपड़ा हो। उसकी आँखे नीची हो गई। उसने मणिरथ से कहा, कि पूज्य भ्राताजी, क्या बिना युवराज पद पाये, मैं आपकी सेवा करने और आपका भार बँटाने में कुछ आनाकानी करता था, जो आपने मुझे युवराज पद देने का निश्चय किया? युवराज पद लेकर उसके बदले में सेवा करना, यह मेरे लिए एक कलंक जैसी बात होगी। यह तो मेरी तुच्छता होगी। आपने जो विचार किया है, उससे तो यही स्पष्ट है, कि मै राज्य के लोभ के बिना आपकी सेवा न करता। समझ में नहीं आता, कि मेरे किस व्यवहार के कारण, आपके हृदय में मेरे प्रति यह विचार पैदा हुआ।

युगबाहु का कथन सुनकर, मणिरथ आह्लादित होकर कहने लगा, कि प्रिय बन्धु, तुम्हारा यह कथन भी मेरे लिए आनंदकारी हुआ है। मैंने, यह निश्चय न तो किसी प्रकार के सन्देह या अविश्वास के कारण किया है, न तुम्हे तुच्छ बनाने के लिए। किन्तु तुम्हारी नम्रता, सेवा एवं तुम्हारे गुणो से प्रभावित होकर,

मैंने अपना उत्तराधिकारी बनाने के लिए ही ऐसा निश्चय किया है। मैं, मेरा निश्चय पूर्ण करने एवं मेरी यह आज्ञा शिरोधार्य करने को तुम से अनुरोध करता हूँ। तुम्हारी ओर से मुझे पूर्ण विश्वास है, कि तुम मेरा अनुरोध अवश्य ही स्वीकार करोगे।

मणिरथ के कथन के उत्तर मे युगबाहु ने कहा, कि मैं आपकी आज्ञा का पालन करना कदापि अस्वीकार नही कर सकता, चाहे ऐसा करने में मुझे अपना सिर ही क्यो न देना पड़े। मैं, अपना यह शरीर आपकी सेवा के लिए ही मानता हूँ। आपकी सेवा करते हुए, यदि यह शरीर नष्ट हो जावे, तो यह मेरे लिए बड़े सौभाग्य की बात होगी। मेरी तो आप से केवल यह प्रार्थना है, कि आप मुझे युवराज बनाने का अपना निश्चय बदल दीजिये। युवराज पद, एक उपाधि है। उपाधि में पड़ जाने पर, सेवा का मार्ग अधिक कठिन हो जाता है। मैं, इस समय निष्कांक्ष सेवा कर रहा हूँ। मैं चाहता हूँ, कि निष्कांक्ष और उपाधि रहित रह कर आपकी सेवा करूँ। कृपा करके, आप मुझे उपाधिमुक्त ही रखिये।

युगबाहु की प्रार्थना सुनकर, मणिरथ ने उससे कहा, कि वत्स, तुम भूल रहे हो। मैं, तुम पर अपनी सेवा का अधिक भार डालना चाहता हूँ। तुम राज्य की रक्षा द्वारा मेरी अधिक सेवा कर सको, इसी उद्देश्य से मैं तुम्हे यह पद दे रहा हूँ। यह पद उपाधि तो अवश्य है, लेकिन सेवा के लिए। तुम जब मेरी

सेवा करना स्वीकार करते हो, तब मेरे द्वारा सौंपे जाने वाले सेवा-कार्य का भार उठाने में, आनाकानी करना उचित नहीं है।

मणिरथ की बात का, युगबाहु कुछ उत्तर न दे सका। वह इस विचार में पड़ गया, कि मुझे क्या करना चाहिए और भाई को क्या उत्तर देना चाहिए। युगबाहु को विचार में पड़ा हुआ देख कर, मणिरथ ने उससे कहा, कि युगबाहु! तुम अधिक विचार मे न पड़ो। मेरी बात मानो। मैंने जो निश्चय किया है, वह बहुत सोच विचार कर ही किया है, तुम्हे यह पद देने मे, मैं राज्य की रक्षा और प्रजा का हित समझता हूँ। विचार करने पर, मेरा निश्चय तुम्हें भी उचित ही जान पड़ेगा।

मणिरथ के इस कथन पर भी, युगबाहु चुप ही रहा। वह, किसी निश्चय पर न पहुँच सका। कुछ देर तक चुपचाप खड़े रहने के पश्चात्, युगबाहु, मणिरथ को प्रणाम करके अपने महल के लिए चल पड़ा। मार्ग में वह सोचता जाता था, कि मुझे क्या करना चाहिए और इस सम्बन्ध मे किस की सम्मति लेनी चाहिए। इस प्रकार सोचता हुआ युगबाहु, अपने महल में आया।

युगबाहु की पत्नी मदनरेखा, समकितधारिणी श्राविका थी। वह, अक्षुद्र-बुद्धि थी, हल्की बुद्धिवाली न थी। जो क्षुद्र बुद्धि होता है, वह थोड़ी सम्पत्ति से ही इतरा जाता है और थोड़ी

विपत्ति से ही घबरा भी जाता है। जिस प्रकार क्षुद्र नदियाँ, थोड़े जल से ही पूर हो जाती है और थोड़ी गर्मी से ही सूख जाती हैं, इसी प्रकार क्षुद्र-बुद्धि वाले लोग भी, थोड़ी ही सम्पत्ति–विपत्ति से अभिमान करने लगते हैं, या धैर्य त्याग कर सूख-से जाते हैं। इसके विरुद्ध जो अक्षुद्र-बुद्धि वाले हैं, वे बड़ी से बड़ी संपत्ति पाकर भी न तो अभिमान ही करते हैं और न बड़ी से बड़ी विपत्ति से घबराते ही हैं। वे, किसी भी दशा में मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते, न छोटी छोटी बातों पर ध्यान ही देते हैं। अक्षुद्र-बुद्धि वालों में जो विशेषता होनी चाहिए, वह सब विशेषता मदनरेखा में मौजूद थी। वह ऐसी श्राविका थी, कि जिसके व्यवहार से धर्म की प्रशन्सा हो। श्राविका होने पर भी, कई स्त्रियाँ ऐसी होती हैं, कि जो अपने व्यवहार से धर्म की निन्दा कराती है, और कई श्राविकाएँ, अपने व्यवहार से धर्म की प्रशंसा कराती हैं। जो अयोग्य व्यक्ति होता है, वह धर्म की निन्दा कराता है और जो योग्य व्यक्ति होता है, वह धर्म की प्रशंसा कराता है। मयणरहा का व्यवहार, धर्म प्रशंसा कराने वाली श्राविका के योग्य था। लौकिक व्यवहार में इस प्रकार कुशल होने के साथ ही, वह, पारलौकिक व्यवहार में भी पूर्ण विवेक रखती थी। वह, धार्मिक तत्वों एवं कथाओं को जानने वाली थी और धर्म में उसकी पूर्ण श्रद्धा थी। साथ ही, वह अत्यन्त रूपवती, सुन्दर आकृतिवाली

एवं सौम्य स्वभाव वाली थी। संसार मे यह माना जाता है कि—

" यत्र्याकृते तत्र गुणावसन्ति "।

यानी जिसकी आकृति अच्छी होती है, उसमें गुण भी अच्छे होते हैं। बल्कि गुण तो फिर देखने मे आते हैं, पहले तो आकृति ही देखी जाती है। यह मनुष्य अच्छा है या बुरा, इसकी पहली पहचान आकृति की अच्छाई या बुराई है। वैसे तो, कई अच्छी आकृतिवाले लोग भी दुर्गुणी तथा बुरे स्वभाव वाले होते हैं, और कई बुरी आकृति वालों में भी सद्गुण एवं अच्छा स्वभाव होता है, परन्तु व्यवहार मे विशेषतः यही माना जाता है, कि जिसकी आकृति अच्छी है, उसमे सद्गुण भी हैं और जिसकी आकृति खराब है, उसमें सद्गुणो की भी कमी है।

मयणरहा, सुन्दर आकृति एवं रूप वाली थी, और उसमे सब सद्गुण भी थे तथा उसका स्वभाव भी अच्छा था, उसकी प्रकृति सौम्य थी। उसके सम्पर्क मे जो भी स्त्री आती थी, उस स्त्री पर मयणरहा की सौम्य प्रकृति एवं उसके सद्गुणो का प्रभाव पड़ता ही था। जिस प्रकार पुष्प अपनी गन्ध दूसरी वस्तु में तो भर देता है, परन्तु दुर्गन्ध मे पड़ जाने पर भी अपने मे दुर्गन्ध नहीं आने देता, इसी प्रकार कई व्यक्ति भी ऐसे होते हैं, कि जो अपने सद्गुण तो दूसरे में भर देते हैं, परन्तु अपने मे दूसरे के दुर्गुण नहीं आने देते। मयणरहा, ऐसी ही स्त्री थी। वह अपने सम्पर्क

में आने वाली स्त्री को अपने सद्गुण तो देती थी, परन्तु उसके दुर्गुण अपने में नहीं आने देती थी। वह, सरल स्वभाव की थी। उसमें न तो अहंकार था, न छल, प्रपंच। वह, साहसिन एवं निर्भय थी। उसे भय था, तो केवल पाप का। वह, झूठ से घृणा करती थी और सत्य से प्रेम करती थी। उसमें, उदारता कूट कूट कर भरी हुई थी। वह, सब का हित ही चाहती थी और हित ही करती थी, किसी का अहित न तो चाहती ही थी, न करती ही थी। मतलब यह, कि उसका जन्म अच्छे कुल और अच्छी जाति में हुआ था, उसको माता पिता के यहाँ अच्छी शिक्षा मिली थी, इस कारण उसमे वे सभी बाते थीं, जो एक गृहिणी या श्राविका में होनी चाहिये। वह कृतपुण्य थी, इससे उसको पति भी ऐसा मिला था कि जो प्रत्येक दृष्टि से उसके अनुरूप एवं उसका तथा उसके सद्गुणों का सम्मान और विकाश करने वाला था। पति-पत्नी में, निष्कपट प्रेम था। मयणरहा ने, चन्द्र का स्वप्न देखकर एक पुत्र को जन्म दिया था, जिसका नाम चन्द्रयश था। चन्द्रयश भी, माता-पिता की तरह सुशील था, माता–पिता का आज्ञाकारी था, और होनहार था। चन्द्रयश के सिवाय, उसके गर्भ में एक और बालक था, जिसके गर्भ में आने के समय उसने यह स्वप्न देखा था, कि कल्पवृक्ष आकर मेरे पेट में उतर गया है।

मणिरथ के समीप से चलकर युगबाहु, अपने महल में

मदनरेखा के पास आया। पति को आया देखकर, मदनरेखा को प्रसन्नता हुई, परन्तु उसने देखा, कि आज पति के मुखकमल पर चिन्ता छाई हुई है और वे कुछ उदास हैं। उसने, पति का स्वागत-सत्कार करके उन्हे आदर पूर्वक बैठाया। पश्चात् उसने, उनसे कहा, कि—नाथ, आज आपको उदासी क्यों है ? आज तक, मैंने आपको कभी भी चिन्तित नहीं देखा। आज आपको किस कारण चिन्ता हुई है ? पुरुष को, प्रधानतः पहली चिन्ता अपनी पत्नी की ओर की होती है। इसके लिए मैंने अपना चरित्र तपास कर देखा, तो उसमे ऐसी कोई त्रुटि नही दिखाई दी, जिसके कारण आपको चिन्तित होना पड़े। दूसरी चिन्ता सन्तान की ओर की होती है। अपनी सन्तान में अभी एक पुत्र है, जो बालक है और आपकी आज्ञा का पालन करने वाला है। तीसरी चिन्ता, आय-व्यय सम्बन्धी होती है। अपने यहाँ इस का भी कोई कारण नहीं है। चौथी चिन्ता, राज्य की ओर की होती है। आपको यह चिन्ता भी नहीं हो सकती। क्योंकि, यहाँ के राजा आपके बड़े भ्राता ही हैं, जो आपसे पूर्ण स्नेह रखते हैं, और आपको अपने पुत्र के समान मानते हैं। इस प्रकार मैं यह निश्चय न कर सकी, कि आपको किस बात की चिन्ता है। इसलिए मैं आप से यह जानना चाहती हूँ, कि आप किस कारण से चिन्तित हैं।

मदनरेखा द्वारा किये गये प्रश्न के उत्तर मे, युगबाहु ने उससे कहा, कि प्रिये! मुझे न तो तुम्हारी ओर से चिन्ता हुई है, न सन्तान की ओर से न और किसी कारण से। मैं, बड़े भाई को वन्दन करने गया था। वहाँ उनने, मुझे युवराजपद देने का अपना निश्चय सुनाया। मैंने, यह पद न देने के लिए भाई से बहुत कुछ कहा सुना, लेकिन उनने मेरी एक भी बात न चलने दी। बल्कि उनकी स्नेह एवं कृपा पूर्ण बातो ने, जैसे मेरे मुँह पर ताला डाल दिया। मुझे चुप ही रहना पड़ा। भाई के इस निश्चय ने ही, मुझे चिन्तित बनाया है। मै भाई की अब तक निष्कपट एवं निस्वार्थ भाव से सेवा करता रहा हूँ और आगे भी, मेरी इच्छा इसी प्रकार सेवा करते रहने की है, परन्तु बड़े भाई का निश्चय, मेरी इस इच्छा मे किसी समय भी बाधक हो सकता है। राज्य का लोभ, मनुष्य को किसी समय भी चक्कर मे डाल सकता है, और सत्ता का मद, किसी भी समय ध्येय भ्रष्ट कर सकता है। इस प्रकार एक ओर तो निःस्वार्थ सेवा छूटने का भय है और दूसरी ओर भाई की आज्ञा का प्रश्न है। मुझे क्या करना चाहिए और मैं पद के प्रपंच से कैसे बच सकता हूँ, यह निश्चय न कर पाने के कारण ही, मुझे चिन्ता है। क्या तुम इस धर्म संकट से निकलने का मार्ग बता सकती हो?

युगबाहु का कथन समाप्त होने पर, मदनरेखा ने उससे कहा, कि आपके बड़े भाई, आपको युवराजपद देकर अपना उत्तराधिकारी बनाते हैं वे इस प्रकार राज्य दे रहे हैं, लेकिन आप यह पद नहीं लेना चाहते, और इस प्रकार मिलते हुए राज्य को भी छोड़ रहे हैं, यह जानकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई है। संसार में ऐसे लोग बहुत कम निकलेंगे, जिन्हे राज्य का लोभ न हो, या राज्य प्राप्त होने पर अनुचित कार्य से बचे रहते हों। यदि किसी दूसरे को यह पद मिल रहा होता, तो वह प्रसन्न होता। बल्कि वह ऐसा पद प्राप्त करने के लिए, उचित अनुचित प्रयत्न भी करता। तथा मेरे स्थान पर कोई दूसरी स्त्री होती, तो वह भी इस विचार से प्रसन्न होती, कि आज मेरे पति युवराज बन रहे हैं और मैं युवराज्ञी बन रही हूँ। एवं भविष्य मे मेरे पति राजा और मैं रानी बनूँगी। लेकिन आपको भी राज्य का लोभ नहीं है, और मुझे भी युवराज्ञी या रानी बनने की लालसा नहीं है। इस दृष्टि से तो मुझे आपको यही राय देनी चाहिए, कि आप किसी भी तरह युवराजपद स्वीकार न कीजियेगा। मैं, आपके कथन का पूरी तरह समर्थन करती हूँ और आपके तथा मेरे लिए, राम तथा सीता के आदर्श पर चलना उचित मानती हूँ, परन्तु अपने यहां कि स्थिति दूसरी है। यदि आप, अपने बड़े भाई की इच्छानुसार युवराजपद ग्रहण न करेंगे, तो उन्हें दुःख होगा, जो अवांछनीय है। मेरा

तथा आपका यही कर्त्तव्य है, कि बड़े भाई जिससे प्रसन्न रहे और जो आज्ञा दें, वह करना। इसके सिवाय, बड़े भाई की सेवा युवराज-पद मिलने पर भी की जा सकती है। इसलिए मैं आपको यही सम्मति देती हूँ, कि लोभ से नही किन्तु बड़े भाई की आज्ञा का पालन करने एवं उनको प्रसन्न रखने के लिए, आप युवराज-पद स्वीकार करलें। हाँ, इसके साथ मे यह निवेदन कर देना उचित समझती हूँ, कि युवराज-पद पाकर अपने मे किसी प्रकार का अहंकार न आनेदे, भाई की सेवा न भूलें और न्याय नीति विस्मृत न करे। मुझे विश्वास है, कि आप ऐसा ही करेंगे।

मयणरहा के इस तरह समझाने से, युगाबहु ने भी युवराजपद लेना ठीक माना। इस प्रकार दोनों की सम्मति यही ठहरी, कि युवराजपद स्वीकार कर लिया जावे।

मणिरथ ने युगवाहु को युवराजपद देने के लिए तैयारी कराई। अन्त में उसने नियत समय पर उत्सव पूर्वक, युगवाहु को युवराज-पद प्रदान किया और अपना उत्तराधिकारी बनाया। सब लोग, मणिरथ के इस कार्य से बहुत ही प्रसन्न हुए। कोई दोनों भाइयों के पारस्परिक स्नेह की प्रशंसा करता था, कोई छोटे भाई पर पूर्ण कृपा रखने के कारण मणिरथ की प्रशंसा करता था, और कोई युगवाहु की नम्रता, सरलता, वीरता एवं भ्रातृ-भक्ति की प्रशंसा करता था।

मणिरथ और युगबाहु, आनन्द से रहने लगे। दोनों भाइयों में आदर्श प्रेम था। दोनों, प्रजाहित एवं राज्य-रक्षा का ध्यान रखते थे। दोनों मे, भेद रहित स्नेह था। इस प्रकार दोनों भाइयो के दिन सुख पूर्वक बीतते थे।
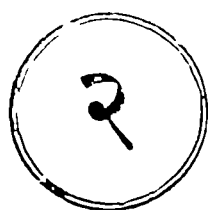
# कामासक्ति
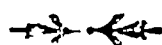
संभाषयेत् स्त्रियं नैव पूर्वं दृष्टवा च न स्मरेत् ।
कथां च वर्जयेत्तासां नो पश्येल्लिखितामपि ॥

नीतिकारों ने इस श्लोक मे कहा है, कि 'स्त्री से बात चीत न करनी चाहिए, पहले देखी हुई स्त्री का स्मरण न करना चाहिए, स्त्री सम्बन्धी कथा भी न करनी चाहिए, और स्त्री का चित्र भी न देखना चाहिए।' नीतिकारों ने इन कार्यों से ऐसी क्या हानि देखी है, जो इनसे बचने के लिए कहा है, और होते होते यहाँ तक कह डाला है, कि स्त्री का साक्षात देखना तो दूर रहा, स्त्री का चित्र भी

न देखना चाहिए ? यही, कि इन बातों के होने पर, हृदय में काम विकार जाग्रत होना बहुत सम्भव है, और जिसमें काम विकार जाग्रत हो जाता है, किसी न किसी दिन उसका सदाचार नष्ट हो जाय यह स्वाभाविक है। नीतिकारों की दृष्टि मे, ये सब बातें काम विकार जाग्रत करने वाली हैं। काम विकार जाग्रत होने के दूसरे भी बहुत से कारण हैं, परन्तु ये कारण प्रधान हैं, और इन कारणो में से भी स्त्री का देखना सब से अधिक भयंकर है, इसलिए इस सम्बन्ध मे इतना अधिक निषेध किया गया है, कि स्त्री का चित्र भी न देखना चाहिए। स्त्री को देखने पर, हृदय में स्त्री के प्रति विकार-जन्य आकर्षण होता है, वह आकर्षण मनुष्य को स्त्री की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने को विवश कर देता है और उसको सर्वनाश के अभिमुख रख देता है। नीतिकारों का यह उपदेश, शास्त्र सम्मत भी है। उत्तराध्ययन सूत्र के सोलहवें अध्याय में, ब्रह्मचर्य की रक्षा के उपाय बताते हुए कहा गया है, कि—

नो इत्थीणं इंदियाइं मणोहराइं।
मणोरमाइं आलोइत्ता निज्झाइत्ता भवइ॥

अर्थात्—(ब्रह्मचारी को) स्त्रियों के मनोहर एवं रम्य अंग न देखना और निहारना चाहिए। ऐसे एक दो नहीं दस विधान है।

इस प्रकार, नीतिकारों के इस कथन का समर्थन शास्त्र भी

करते हैं। यह बात उन लोगों के अनुभव की भी अवश्य ही होनी चाहिए, जो सदाचार से पतित हुए हैं। सदाचार से पतित होने वाले, अर्थात् ब्रह्मचर्य नष्ट करने वाले अथवा परदार-गमन करने वाले लोगो के विषय में, यदि इस बात का पता लगाया जावे, कि ये लोग किस कारण पतित हुए हैं तो सम्भवतः ऐसे लोगों की संख्या अधिक ही मिलेगी, जो स्त्री के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर सदाचार से भ्रष्ट हुए हों। ऐसे लोगों ने, यदि नीतिकारों द्वारा और शास्त्र में बताये हुए 'स्त्री को न देखने' के नियम का पालन किया होता, स्त्री को न देखा होता, तो वे स्त्री के रूप, सौन्दर्य पर मुग्ध होकर पतित क्यों होते! इसलिए सदाचार का पालन करने के वास्ते यह आवश्यक है, कि स्त्री की ओर न देखे। इसका यह अर्थ नहीं है, कि अपनी आँखें ही फोड़ ली जावें, या बन्द रखी जावें। किन्तु अर्थ यह है, कि स्त्री को विकृत दृष्टि से न देखा जावे, दृष्टि में आते ही स्त्री की ओर से दृष्टि फिरा ली जावे, और सहज दृष्टि से स्त्री के सम्बन्ध में जो कुछ देखा गया है, उसका स्मरण न किया जावे, उसे सर्वथा विस्मृत कर दिया जावे। ऐसा न करने पर, यानी स्त्री को विकृत दृष्टि से-दृष्टि गड़ाकर देखने पर और जो कुछ देखने में आया है उसे विस्मृत न कर देने पर, मनुष्य किस तरह पतित होता है, यह बात मणिरथ के चरित्र में ज्ञात होगी। मणिरथ, अपने छोटे भाई युगबाहु से

अत्यधिक स्नेह करता था। इसलिए अनुज वधु मदनरेखा को अवश्य ही पुत्री के समान मानता रहा होगा। लेकिन उसने जब से अनुज वधू मदनरेखा को देखा, तब से उसके सौन्दर्य पर मोहित होने के कारण वह नीति मर्यादा की सब बातों को भूल गया। फिर उसके हृदय से सदाचार की भावना भी निकल गई, और वह पुत्री के समान मानी जाने वाली अनुज वधू को अपनी बनाने के लिए कैसे प्रपंच करने लगा, आदि बातें इस प्रकरण से प्रकट होंगी।

एक दिन गर्भवती मदनरेखा, उसके महल की छत पर उत्तामण बैठी हुई थी। उसके आस-पास उसकी सखियाँ बैठी हुई थीं, और आपस में विनोद की बातें कर रही थीं। मदनरेखा भी, आनन्द पूर्वक सखियों की बातों में भाग लेती थी, तथा अपनी सखियों में से किसी को वस्त्र, किसी को आभूषण आदि पुरस्कार दे रही थी, और किसी को भविष्य में उचित उपहार देने का आश्वासन दे रही थी। जिस समय यह सब हो रहा था, उसी समय राजा मणिरथ भी, मन बहलाने के लिए अपने महल की छत पर गया। उसके साथ, उसके हितैषी सेवक भी थे, जो समय-समय पर मणिरथ का चित्त अपनी बातों से प्रसन्न किया करते थे। महल की छत पर जाकर, मणिरथ, सहज रीति से ही इधर उधर देखने लगा। सहसा उसकी दृष्टि, युगबाहु के महल की छत तथा उस

पर बैठी हुई मदनरेखा पर पड़ी। मदनरेखा, वैसे भी बहुत सुन्दरी थी और उस समय उसके गर्भ मे एक महापुरुष था, इसलिए उसका सौन्दर्य और भी चमक उठा था। ऐसी सुन्दरी मदनरेखा को देखकर, मणिरथ मन ही मन उसके सौन्दर्य की प्रशंसा करने लगा। मयणरहा के रूप, सौन्दर्य से, मणिरथ का हृदय मयणरहा की ओर आकर्षित होगया। वह एक टक मदनरेखा की ओर देखने लगा। मणिरथ को, मदनरेखा की ओर देर तक टकटकी लगाये देखकर, मणिरथ के साथियों मे से एक ने मणिरथ से कहा, कि महाराज, वह युवराज का महल है। गर्भवती युवराज्ञी, महल की छत पर बैठी हुई आमोद-प्रमोद कर रही है। इस समय, अपना यहाँ आना ठीक नही रहा, और युवराज्ञी अथवा उनकी सखियों ने भी अपने को नहीं देखा, नहीं तो वे अवश्य ही आड़ मे हो जातीं। जो हुआ सो हुआ, लेकिन अब हम लोगों को लौट चलना चाहिए, अनुज वधू की ओर इस प्रकार न देखना चाहिए। अनुज-वधू की ओर इस प्रकार देखना मर्यादा का उल्लंघन करना है।

राजाओं को, पहले तो सच्ची सलाह देने वाले स्पष्ट वक्ता और निर्भय व्यक्ति कम ही मिलते हैं। किन्तु ऐसे लोग अधिक मिलते हैं, जो राजा की हाँ मे हाँ मिलावें, राजा को प्रसन्न रखना ही अपना कर्त्तव्य मानें, और समय पर भी उचित बात न कहे।

कदाचित स्पष्ट वक्ता और निर्भय हितैषी मिल भी जावें, तो ऐसे राजा भी कम ही निकलेंगे, जो उचित सम्मति को मानें, सम्मति देने वाले पर रुष्ट न हों तथा सम्मति देने वाले को हितैषी समझें।

मणिरथ से, उसके हितैषी सेवक ने मर्यादा की रक्षा के लिए यह ठीक ही कहा था, कि आपको इस प्रकार अनुज वधु की ओर न देखना चाहिए, अपितु लौट चलना चाहिए। लेकिन मणिरथ को हितैषी द्वारा कही गई बात उसी प्रकार अरुचिकर हुई, जिस प्रकार कई रोगियों को वैद्य की बात अरुचिकर होती है। अपने साथी की बात मानने के बदले, मणिरथ उस पर और रुष्ट हो गया। वह, क्रोध पूर्वक उस सम्मति देने वाले साथी से कहने लगा, कि क्या मैं अज्ञानी हूँ, मर्यादा नहीं जानता हूँ, या आचरण भ्रष्ट हूँ। जो तू ऐसा कहता है! मैं जानता हूँ, कि वह युगवाहु की पत्नी है और यह जानकर ही मैं देख रहा हूँ, कि युवराज्ञी एवं उसकी सखियों का पारस्परिक व्यवहार कैसा है? मैं राजा हूँ, मेरा कर्त्तव्य है, कि मैं प्रत्येक व्यक्ति के विचार एवं चेष्टा आदि का ध्यान रखूँ। इस सम्बन्ध में, मुझे तेरे से कुछ सीखने, या तुझे मेरे को कुछ सिखाने की आवश्यकता नहीं है। मैं, निर्दोष दृष्टि से किसी को देखना, अनुचित नहीं मानता।

इस प्रकार कह कर, मणिरथ ने अपने साथी को डाँट दिया और कह दिया, कि तुम लोग मेरे साथ रहने के योग्य नहीं हो,

इसलिए सब नीचे जाओ। बेचारे नौकरो की हिम्मत ज्यादा कहने की कैसे पड़ सकती थी। इसलिए राजा की आज्ञानुसार साथी लोग, सब नीचे चले गये। अपने साथियों को भगाकर मणिरथ, फिर उसी प्रकार मदनरेखा की ओर देखने लगा और अपने मन में, उसके सौन्दर्य एवं सहज हावभाव की प्रशन्सा करने लगा। वह सोचने लगा, कि ऐसी रूपवती स्त्री तो मैंने आज तक नहीं देखी। इसके समान सुन्दर स्त्री, दूसरी कौन होगी! मेरी समझ से, इसकी समता में स्वर्ग की अप्सराएँ भी नहीं ठहर सकती, तो कोई मानवी तो ठहर ही कैसे सकती है।

मदनरेखा की ओर देखता हुआ मणिरथ इस प्रकार सोचता जाता था और मदनरेखा पर अधिकाधिक मुग्ध होता जाता था। मदनरेखा का सौन्दर्य देखकर, मणिरथ की न्यायनीति सब लुप्त हो गई। वह, मदनरेखा पर उसी प्रकार मोहित हो गया, जैसे पतंग दीपक पर मोहित होता है। सहसा उसको ध्यान हुआ, कि मैंने मेरे जिन साथियों को भगा दिया है, वे मेरे विषय में न मालूम क्या क्या कहते होंगे और यदि किसी ने युगबाहु से यह बात कहदी, तो वह भी रुष्ट हो जावेगा। इसी प्रकार, मदनरेखा या उसकी सखियों मे से कोई मुझे इस प्रकार निहारते देख लेगी, तो उस समय मुझे लज्जित होना पड़ेगा।

इस प्रकार भय और लज्जा के वश होकर मणिरथ, महल

की छत से नीचे उतरा, लेकिन उसका हृदय स्थिर न था। उसके हृदय में, मदनरेखा का सौन्दर्य बस गया था तथा मदनरेखा के प्रति दुर्भावना उत्पन्न हो गई थी। उसके हृदय मे रह रह कर यही विचार होता था, कि मदनरेखा अत्यन्त सुन्दरी है। युगबाहु बड़ा ही सद्भागी है, जो उसे ऐसी पत्नी प्राप्त हुई। उसकी अपेक्षा मैं हतभागी हूँ! आदि।

मणिरथ को, खाते पीते और सोते बैठते मयणरहा का ही ध्यान रहने लगा। वह सोचने लगा, कि मदनरेखा को प्राप्त किये बिना मेरा जीवित रहना व्यर्थ है। मेरा जीवन तभी सफल है, जब मैं मदनरेखा का आलिंगन करूँ और उसके साथ भोग भोगूँ, अन्यथा सरेस के वृक्ष के समान मेरा जीवन निष्फल ही है। परन्तु उसे प्राप्त कैसे किया जावे! जब तक वह युगबाहु के साथ है, तब तक उसे प्राप्त करने का मेरा प्रयत्न सफल नहीं हो सकता। जब युगबाहु उसके पास न हो, किन्तु वह अकेली हो, तभी मेरा प्रयत्न सफल हो सकता है, और उस समय मैं उसे प्रलोभन मे फँसाकर, अपने हृदय को शांत कर सकता हूँ। मूल्यवान वस्त्राभूषण और उसके साथ पटरानी पद के प्रलोभन मे, कौन स्त्री नहीं फँस सकती। कैसी भी सती हो, इस महान् प्रलोभन में पड़कर, उसे अपना सतीत्व दूसरे पुरुष के हाथ बेच ही देना पड़ेगा। मदनरेखा को प्रलोभन मे डाल कर अपना लेना तो

कठिन नहीं है, परन्तु प्रश्न यह है, कि युगबाहु को यहाँ से कैसे हटाया जावे। मेरे हृदय की कामना तभी पूर्ण हो सकती है, जब युगबाहु दूर हो। वह, मेरी कामना पूर्ण होने के मार्ग मे काँटा है। किसी प्रकार उसको हटाकर मयणरहा को एक बार अपना लूँ, बस उसके पश्चात् क्या है! कुछ भी हो और किसी भी तरह सही, मयणरहा को मै अपनी प्रेयसी अवश्य बनाऊँगा। उसके बिना, मेरे को सभी पदार्थ दुःखदायी जान पड़ते हैं, और उसके सामने, यह राज-पाट भी तुच्छ ही दिखता है।

मणिरथ, न्याय नीति निपुण राजा था। उसमे, युगबाहु के प्रति पूर्ण स्नेह था। वह, युगबाहु को अपने पुत्र से भी बढ़ कर प्रिय समझता था, परन्तु मदनरेखा के सौन्दर्य एवं उसकी लीला से, मणिरथ की न्यायनीति और उसका बन्धु स्नेह उसी प्रकार विलीन हो गया, जिस प्रकार प्रबल पवन से घने बादल भी विलीन हो जाते हैं। मदनरेखा के लिए उत्पन्न काम विकार से व्यथित होकर, मणिरथ, अपने प्रिय भाई को भी अपने लिये काँटा मानने लगा। ऐसी बातो को देख कर ही भर्तृहरि ने कहा है कि—

> व्याकीर्ण केसर करालमुखा मृगेन्द्रा,
> नागाश्च भूरि मदराजिविराजमानः।
> मेधाविनश्च पुरुषाः समरेषु शूराः,
> स्त्री सन्निधौ परम कापुरुषा भवन्ति॥

अर्थात्—गरदन पर बिखरे बालों वाला करालमुखी सिंह, अत्यन्त मतवाला हाथी और बुद्धिमान समर-शूर पुरुष भी स्त्रियों के आगे परम कायर हो जाते हैं।

मणिरथ, अपने भाई युगबाहु को अपने मार्ग का काँटा मानकर उसको दूर करने का उपाय सोचने लगा। वह सोचता था, कि युगबाहु के रहते यदि मैंने मदनरेखा को प्राप्त करने का प्रयत्न किया और युगबाहु को पता लग गया, तो वह मेरे विरुद्ध हो जावेगा। मैंने उसको युवराज बना दिया है, इसलिए उसके विद्रोही बनने पर प्रजा भी उसका साथ देगी, जिससे मुझे मदनरेखा भी प्राप्त न होगी और लोगों में मेरी निन्दा भी होगी। इससे, किसी उपाय से उसे यहाँ से हटा देना चाहिए।

मनुष्य, विचार करके कठिन कार्य का भी उपाय ढूँढ़ लेता है। इसके अनुसार मणिरथ ने भी, युगबाहु को मदनरेखा से दूर भेजने का उपाय सोच ही लिया। वह बुद्धिमान तो था ही, और संसार में ऐसा कौनसा काम है, जो बुद्धि की सहायता से न हो सके। यह बात दूसरी है, कि कोई बुद्धि का उपयोग अच्छे काम में करे या बुरे काम में, परन्तु बुद्धि द्वारा सभी काम किये जा सकते हैं।

मणिरथ ने अपनी बुद्धि का उपयोग युगबाहु को हटाने का उपाय सोचने में किया। वह युगबाहु को हटाने का उपाय सोच कर बहुत ही प्रसन्न हुआ। वह, दूसरे दिन सभा में बैठा, जहाँ कि

उसके सामन्त लोग भी उपस्थित थे और युगबाहु भी। इधर उधर की कुछ बातें करने के पश्चात् मणिरथ अपने सामन्तो से कहने लगा, कि मेरे राज्य की सीमा पर अमुक-अमुक ने बहुत उत्पात मचा रक्खा है। वे लोग मेरी प्रजा पर अत्याचार भी करते हैं और मेरी आज्ञा भी नहीं मानते हैं। मैं, अबतक उन लोगो का अत्याचार सहता रहा, परन्तु अब तो उनका अन्याय सीमातीत हो गया है। जो राजा, प्रजा पर अत्याचार करने वाले आततायियों का दमन नहीं करता, वह कायर है और राजा होने के अयोग्य है। इसलिए सेना सज्ज कराओ। मैं जाकर उन आततायियों को दण्ड दूँगा, और या तो उनसे अपनी आज्ञा ही मनवाऊँगा, अथवा उनसे लड़ते हुए अपनी जान ही दे दूँगा। मैं क्षत्रिय हूँ, मुझे प्राणों की तनिक भी अपेक्षा नहीं है। यदि अपेक्षा है, तो अपनी आज्ञा मनवाने की तथा प्रजा की रक्षा करने की। इसलिए सेना को, तैयार होने के लिए मेरी आज्ञा उसे सुना दो। कल मैं विजय प्रस्थान कर दूँगा।

मणिरथ के हृदय में तो कुछ दूसरा ही भाव है, परन्तु उसने प्रकट में इस तरह के वीरता भरे शब्द कहकर सेना तैयार करने की आज्ञा दी। मणिरथ का कथन सुनकर, उसके सामन्तों ने मणिरथ से कहा, कि महाराज, आपने जो विचार किया, वह आपके योग्य ही है। आपके मुख से, ऐसे वीरता भरे शब्द ही शोभा देते हैं। आप अवश्य ही पधारिये, हम लोग आपके साथ चलेंगे। हमारे

रहते किसी की क्या शक्ति है, जो आपको ओर देख भी सके। जहाँ पर आपका पसीना गिरेगा, वहाँ हम लोग अपना रक्त बहा देंगे, लेकिन जीवित रहते पैर पीछे न देंगे।

मणिरथ और सामन्तों की बात सुनकर युगबाहु ने सोचा, कि आततायियों का दमन करने के लिए महाराजा स्वयं ही जाने को तैयार हुए हैं। मेरे लिए यह अयोग्य होगा, कि मैं कायर की तरह घर मे बैठा रहूँ और भाई युद्ध करने जावें। युवराज तथा छोटा भाई होने के कारण मेरा यह कर्त्तव्य है, कि मैं युद्ध करने जाऊँ, भाई को न जाने दूँ। मेरे रहते भाई युद्ध करने जावें, यह मेरे लिए कलङ्क की बात होगी। ये जो कुछ करना चाहते हैं, वह मेरे ही लिए। मेरा राज्य निष्कंटक बनाने को ही, ये प्राणों की बाजी लगा रहे हैं। ऐसी दशा मे मैं घर मे रहूँ, यह सर्वथा असम्भव है।

इस प्रकार सोचकर युगबाहु, हाथ जोड़कर मणिरथ से कहने लगा, कि पूज्य भ्राताजी! मेरे रहते आपको युद्ध करने जाने की क्या आवश्यकता है! जब थोड़े से आततायियो का दमन करने के लिए आपको जाना पड़ेगा, तो मैं क्या करूँगा! इस छोटे-से कार्य के लिए, आपको कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं है। आप मुझे आज्ञा दीजिए, मैं जाकर विद्रोहियों को दबा दूँगा और उनसे आपकी आज्ञा मनवा लूँगा।

मणिरथ, हृदय से तो यही चाहता था, कि विद्रोहियो के दमन का भार युगबाहु अपने पर लेकर यहाँ से चला जावे, जिससे मदनरेखा की प्राप्ति के प्रयत्न का मार्ग सरल हो जावे। इसी उद्देश्य से उसने, विद्रोहियों का दमन और सीमा का प्रबन्ध करने का प्रपंच रचा था। युगबाहु का कथन सुनकर, वह अपने मन में प्रसन्न भी हुआ और अपनी चातुरी की सफलता पर उसे गर्व भी हुआ, फिर भी वह प्रकट में भला बनने और अपना उद्देश्य छिपाने के लिए कपट-पूर्वक बोला, कि वत्स युगबाहु! तुम मुझे प्राणो से भी अधिक प्रिय हो। इसके सिवाय, तुम्हे युद्ध विषयक अनुभव भी नहीं है। ऐसी दशा मे, मैं तुम्हे उन दुष्ट शत्रुओ के मध्य मे कैसे भेज सकता हूँ। एक तो वे शत्रु हैं और फिर उनके घर जाकर उनमे युद्ध करना है। अपने घर मे तो, कुत्ता भी बलवान होता है। इसलिए तुम, यह दुःसाहस न करो। इसके सिवा, यदि तुम युद्ध करने जाओगे, तो तुम्हारे लिए मेरा हृदय सदैव चिन्तित रहेगा; और मुझे युद्ध में होनेवाले कष्ट से भी ज्यादा कष्ट यहां अनुभव होगा। इसलिए तुम घर ही रहो, युद्ध के लिए जाने का विचार न करो।

मणिरथ के हृदय का कपट, युगबाहु न जानता था। वह तो मणिरथ के प्रति निष्कपट व्यवहार रखता था और छल रहित उसकी सेवा करना अपना कर्त्तव्य समझता था। वह सरल, स्वाभिमानी

और वीर-हृदय था। इसलिए उसने मणिरथ से कहा, कि महाराज! क्या आपको मेरी शक्ति और वीरता के प्रति कुछ सन्देह है? क्या मैं आपही का छोटा भाई नहीं हूँ? क्या आपकी दृष्टि में, मैं कायर हूँ? यदि ऐसा हो, तो न तो मैं आपका छोटा भाई कहलाने का ही अधिकारी हूँ- न युवराज-पद पर रहने का ही। आपको, अभी मेरे हाथों की शक्ति, मेरे युद्ध-कौशल और साहस का पता नहीं है, इसीसे आप ऐसा कह रहे हैं। आप, मुझे युद्ध मे जाने की आज्ञा तो दीजिए, फिर देखिये कि मैं कैसा पराक्रम दिखाता हूँ। मैं चाहता हूँ, कि मुझे अपना पराक्रम दिखाने का अवसर मिले, जिसमे आप भी जान सकें कि मेरा छोटा भाई कैसा है, और प्रजा भी जान सके, कि हमारा भावी राजा कैसा है? आप, मुझे कायर न समझिये। यदि आप ही मुझे कायर मानेंगे, तो दूसरे लोग भी मुझे कायर मानें, यह स्वाभाविक है। इसलिए आप, मुझे युद्ध के लिए जाने की आज्ञा दीजिए। मेरे लिए किसी भी तरह की चिन्ता न कीजिए।

युगबाहु का आग्रह देखकर, मणिरथ अपने हृदय में इस विचार से और भी प्रसन्न हुआ, कि युगबाहु स्वयं ही युद्ध के लिए जा रहा है, यह अच्छा ही है। इसका आग्रह मान लेने पर, यह भी प्रसन्न रहेगा और मेरा उद्देश्य भी पूरा हो जावेगा। यह कार्य इस कहावत के अनुसार ही होगा, कि साँप भी मर गया और लाठी

भी नहीं टूटी। इस प्रकार के विचारों से वह हृदय में तो प्रसन्न था फिर भी प्रकट में वह गम्भीर ही बना रहा और युगबाहु से कहने लगा, कि वत्स! तुम्हारी वीरता में मुझे किसी प्रकार सन्देह नहीं है, न तुम युद्ध से डरने वाले ही हो, फिर भी, मैं अपने मुँह से तुम्हें युद्ध करने को जाने की आज्ञा कैसे दूँ! मैं, इस समय बड़े असमंजस में पड़ा हुआ हूँ। एक ओर तो, तुम्हारा ऐसा आग्रह है और दूसरी ओर यह विचार है, कि मैं स्वयं तुम से युद्ध करने को जाने के लिए कैसे कहूँ? समझ में नहीं आता, कि इस समय मुझे क्या करना चाहिए?

मणिरथ के कथन पर से युगबाहु समझ गया, कि भाई अपने मुँह से युद्ध में जाने के लिए नहीं कहना चाहते, परन्तु मेरे आग्रह को भी टालना नहीं चाहते। इसलिए मुझे, स्वयं ही अपना मार्ग सोच लेना चाहिए। इस प्रकार समझ कर युगबाहु ने मणिरथ से कहा, कि महाराज! आप, बन्धु-स्नेह के कारण मुझे युद्ध करने को जाने के लिए नहीं कह सकते तो इसमें कोई हर्ज नहीं है, परन्तु कृपा करके आप मुझे युद्ध के लिए जाने से रोकिये भी मत। मैं, कल सेना लेकर युद्ध के लिए जाऊँगा और विजय प्राप्त करके ही आपका दर्शन करूँगा।

यह कहकर युगबाहु, मणिरथ को अभिवादन करके अपने महल के लिए चल पड़ा। युगबाहु के जाने के बाद, मणिरथ उदास

होकर सभासदों से कहने लगा, कि युगबाहु वीर है। इसलिए वह युद्ध करने को गये बिना न मानेगा, परन्तु मैं उसका वियोग कैसे सह सकूँगा, यह समझ मे नहीं आता। वास्तव मे, राजधर्म बड़ा ही कठिन है। अपने धर्म को निभाने के लिए, राजाओं को बड़े बड़े कष्ट सहने पड़ते हैं। युगबाहु, राजधर्म से प्रेरित होकर ही युद्ध करने के लिए जाने को तैयार हुआ है। मैं, उसको रोकूँ भी कैसे! जिस धर्म का पालन करने के लिए युगबाहु जा रहा है, वही धर्म युगबाहु की रक्षा करेगा। इसके सिवाय, तुम लोग साथ हो ही। इसलिए युगबाहु, निःसन्देह विजय प्राप्त करेगा। फिर भी मेरा हृदय नही मानता है, लेकिन कोई दूसरा मार्ग भी तो नहीं है!

सभासदों से इस प्रकार कहकर, मणिरथ ने सभा विसर्जन करदी, और वह अपने महल को गया। उस समय उसे वैसी ही प्रसन्नता थी, जैसी प्रसन्नता जुआरी को दाँव जीत जाने से होती है। उसके हृदय में इस विचार से आनन्द की तरंगे उठ रही थीं, कि अब मेरे मार्ग का काँटा निकल जावेगा, और मैं मनमोहिनी मदनरेखा को, थोड़े ही समय में अपनी प्रेयसी बना सकूँगा।

युगबाहु, प्रसन्न होता हुआ मदनरेखा के महल मे आया। वह सोचता था, कि मुझे युद्ध के लिए जाने का जो सुअवसर प्राप्त हुआ है, उसके समाचार सुनकर मदनरेखा अवश्य ही प्रसन्न होगी।

इसके सिवाय, वह मेरी अर्द्धाङ्गी है, इसलिए मुझे उचित है, कि प्रत्येक कार्य मे उसकी सम्मति लूँ और उसे सहमत करने के पश्चात् ही, किसी कार्य मे प्रवृत्त होऊँ। इसलिए मुझे, यह समाचार मदनरेखा को भी सुनाना चाहिए।

युगबाहु, मदनरेखा के महल मे आया। पति को आया देख कर, मदनरेखा बहुत प्रसन्न हुई। आनन्दित होती हुई मदनरेखा ने, पति का स्वागत करके उसे सिंहासन पर बैठाया और फिर उसका सत्कार किया। युगबाहु का स्वागत-सत्कार कर चुकने पर और उसे स्वस्थ होते देखकर, मदनरेखा ने उसे कहा, कि नाथ! आज आप सदा से अधिक प्रसन्न दिखाई देते हैं। जान पडता है, कि कोई विशेष आनंद प्राप्त हुआ है। मैं आपकी धर्मपत्नी हूँ, इस लिए आपको जो कुछ प्राप्त हुआ है, उसमें भाग पाने की मैं भी अधिकारिणी हूँ। अतः कृपा करके, आप अपने हर्ष में मुझे भी भाग दीजिये।

मदनरेखा की प्रेम पूर्ण बातो ने, युगबाहु को और भी आनन्दित किया। वह, मदनरेखा को प्रशन्सा करके कहने लगा कि प्रिये! इस राज्य की सीमा पर, अमुक २ आततायियों ने बहुत उत्पात मचा रखा है। उनके उपद्रव से, प्रजा दुःखी है। आततायी लोग, महाराज की आज्ञा भी नहीं मानते हैं और इस प्रकार वे लोग राज्य के विद्रोही हो रहे हैं। आज, राज सभा में, महाराजा

ने सेना तैयार करने की आज्ञा दी और स्वयं उपद्रवियों का दमन करने के लिए जाने को तैयार हुए। उस समय मुझे विचार हुआ, कि महाराजा स्वयं युद्ध के लिए जावें और मैं घर में बैठा रहूँ, यह अनुचित होगा। इस प्रकार के विचारों से प्रेरित होकर, मैंने उन आततायियों के दमन का भार अपने पर ले लिया है। यद्यपि महाराजा ने बन्धु-स्नेह के कारण मुझे बहुत रोका, परन्तु अन्त में मेरा आग्रह देखकर चुप हो गये तथा इस प्रकार उनने, मौन रह कर मुझे स्वीकृति देदी। मैं, कल युद्ध करने जाऊँगा। मुझे इसी विचार से प्रसन्नता है, कि मेरे को अपना पराक्रम दिखाने, क्षात्र धर्म का पालन करने और ज्येष्ठ भ्राता को सेवा करने का सुअवसर मिला है। वास्तव मे, क्षत्रियों की दो ही दशा होनी चाहिये। या तो शत्रुओं को अधीन करना, उनको पराजित करना, या समरभूमि में युद्ध करते हुए प्राण त्याग करदेना।

यह कहते-कहते युगबाहु, गद् गद् हो उठा। उसका कथन समाप्त होने पर मदनरेखा ने कहा। प्रियतम! आपने युद्ध का भार स्वयं पर लेकर बहुत ही श्रेष्ठ कार्य किया है। मैं क्षत्रिय कन्या एवं वीर पत्नी हूँ, इसलिए मुझे आपके इस कार्य से बहुत प्रसन्नता हुई है। आप, युद्ध के लिए प्रसन्नता पूर्वक प्रयाण कीजिए। मैं, आपको हर्ष–पूर्वक युद्ध के साज से अपने हाथों सजाऊँगी, और विदा करूँगी। हाँ, आपसे यह प्रार्थना अवश्य करती हूँ, कि युद्ध

के समय मेरा या और किसी का किंचित् भी मोह न रखें। जिसके हृदय मे किसी के प्रति मोह होगा, वह युद्ध में पराक्रम नही दिखा सकता। वह कायरता दिखाकर, रणभूमि से भाग जावेगा। इसलिए आप, युद्ध के समय किसी का मोह मत रखियेगा। मैं, वीर पत्नी कहला कर विधवा रहना तो पसन्द करूँगी, लेकिन कायर पत्नी कहलाकर सुहागिन रहना, मेरे लिए मरण से भी अधिक दुःखदायी होगा।

मदनरेखा के वीरता पूर्ण शब्दों को सुनकर, युगबाहु ने हर्ष प्रकट करते हुए मदनरेखा से कहा, कि देवी! तुमने जो कुछ कहा, वह एक वीरपत्नी के योग्य ही है। तुम्हारे कथनानुसार, मैं शत्रुओं को पराजित करके ही लौटूँगा। और यदि ऐसा न कर सका, तो मेरी मृत्यु का समाचार तो अवश्य आवेगा, परन्तु मैं कायरता पूर्वक शत्रुओं को पीठ कदापि न बताऊँगा।

दूसरे दिन, सेना तैयार हुई। युगबाहु को, मदनरेखा ने एक वीर नारी के कर्त्तव्यानुसार, युद्ध सामग्री से सुसज्जित किया। उसने, युगबाहु के लिए प्रवास में काम आनेवाली आवश्यक सामग्री की भी व्यवस्था कर दी। यह करके, उसने युगबाहु के मस्तक पर मंगलतिलक निकाला और हाथ जोड़ कर, वह युगबाहु से कहने लगी, कि नाथ! आप विजय के लिए पधारिये, तथा शत्रुओं के मध्य वैसा ही पराक्रम दिखाइये, जैसा पराक्रम मत्त हाथियों के

समूह में सिंह दिखलाता है। मैं, आपके वक्षस्थल पर शत्रुओं द्वारा किये गये घावों को धोने और उन पर औषध लगाकर पट्टी बाँधने मे बहुत आनंद अनुभव करूँगी, लेकिन पीठ पर का घाव मेरे लिए बहुत दुःख देने वाला होगा। मुझे विश्वास है, कि आप क्षत्रियोचित कर्त्तव्य का पूर्ण रूपेण पालन करेंगें, शत्रुओ के प्रति क्षमा तथा उदारता का व्यवहार भी रखेंगे, और विजय प्राप्त करके मुझे शीघ्र ही दर्शन देंगे। जिस प्रकार आज मैं आपकी पीठ देखती हूँ, उसी प्रकार आपके विजयी मुखकमल का दर्शन करूँ, यही मेरी कामना है। एक बात मैं और निवेदन करना उचित समझती हूँ, जो बहुत ही महत्व पूर्ण है। युद्ध के समय भी, आप धर्म और परमात्मा को न भूलियेगा, किन्तु स्मरण रखियेगा। बल्कि ऐसे समय में, धर्म और परमात्मा को विशेष रूप से याद रखना चाहिए, जिससे यदि युद्ध करते हुए मृत्यु होगई, तो दुर्गति में न जाना पड़े। इसी प्रकार इस बात का भी ध्यान रखियेगा, कि निरपराधियों पर किसी प्रकार का अन्याय एवं अत्याचार न हो। युद्ध के समय, सेना-निरापराधी प्रजा को भी सताने लगती है, और विजयी सेना तो, प्रायः प्रजा को लूटना, खसोटना ही अपना कर्त्तव्य समझती है, जो सर्वथा अनुचित है। आप इस ओर विशेष ध्यान रखियेगा। अधिक क्या निवेदन करूँ। मुझ जैसी बुद्धि हीना स्त्री, आपसे अधिक क्या कह सकती है।

इस प्रकार कह कर मदनरेखा ने, युगबाहु को विदा दी। मदनरेखा को सान्त्वना देकर और उसे सावधान रहने के लिए कहकर, सेना सहित युगबाहु ने विजय यात्रा प्रारम्भ की। मणिरथ भी, युगबाहु को पहुँचाने के लिए कुछ दूर तक गया। उसने, युगबाहु के प्रति स्नेह का बहुत ही प्रदर्शन किया, युगबाहु के साथ जाने वाले सामन्तो पर युगबाहु की रक्षा का भार डाला और सेना को, अपने कर्त्तव्य की ओर ध्यान दिलाया। यह करके वह, आंखों से आँसू गिराकर, मन में प्रसन्न होता हुआ लौट आया।

युगबाहु चला। उसके साथ कुछ सामन्त थे और थी विशाल सेना। इन सबसे बढ़कर उसको नीति धर्म का साथ प्राप्त था। यद्यपि वह विरोधियों का दमन करने जा रहा था, फिर भी उसकी भावना यही थी. कि मेरे द्वारा नीति और धर्म का उल्लंघन न हो। उसने, अपनी सेना को इस बात के लिए विशेष रूप से सावधान किया था, कि किसी निरपराधी व्यक्ति को कदापि न सताया जावे, अपनी सत्ता के बल से किसी की कोई चीज न ली जावे, न किसी की कोई हानि ही की जावे। जो लोग हथियार लेकर सामने आवें उनसे युद्ध करने के सिवा किसी भी व्यक्ति को किंचित् भी कष्ट न होने दिया जावे।

युगबाहु इस बात का बहुत ध्यान रखता, कि मेरी सेना मेरी

आज्ञा के विरुद्ध आचरण न करे। अपनी आज्ञा का पालन, वह बड़ी कठोरता से करवाता। सेना सहित युगबाहु, अपने राज्य की सीमा पर पहुँचा। जो लोग विद्रोही वन बैठे थे, उन लोगों को मालूम हुआ, कि युवराज युगबाहु विशाल सेना लेकर हमारा दमन करने के लिए आये हैं। उन लोगों ने विचार किया, कि यदि हम लोग युवराज के साथ युद्ध भी करेंगे, तब भी हमारी जीत नहीं हो सकती, और उस दशा मे हमको अपने प्राण खोने होंगे, या युवराज के हाथ बन्दी होकर अधीनता स्वीकार करनी पड़ेगी। ऐसी दशा मे, धन, जन की हानि कराने से क्या लाभ है? इसके सिवाय, जब हम लोग युवराज से युद्ध करेंगे, तब युवराज हमसे अवश्य ही रुष्ट हो जावेंगे, और इस कारण हम लोग युवराज की उस कृपा से भी वंचित रहेंगे, जो अभी प्राप्त हो सकती है। इसलिए यही अच्छा है, कि हम बिना युद्ध किये ही युवराज से सन्धि कर लें और उनकी अधीनता स्वीकार कर लें। हमारी कुशल इसी में है।

इस प्रकार विचार कर, विद्रोहियों ने युवराज से सन्धि चर्चा प्रारम्भ करदी। युवराज युगबाहु ने सोचा, कि जब बिना ही युद्ध किये विद्रोही लोग अधीनता स्वीकार करने को तैयार हैं, तब युद्ध द्वारा रक्त-पात करने की क्या आवश्यकता है। ऐसा करना तो, महान पाप होगा। इसलिए यही अच्छा है, कि विद्रोहियों के प्रस्तावानुसार विद्रोहियों से सन्धि करली जावे। इस प्रकार

विचार कर, युवराज ने सन्धि का सन्देश लाने वाले दूत से कहा, कि यदि विद्रोही लोग अपने दुष्कृत्यों के लिए पश्चात्ताप करके क्षमा माँगें, भविष्य मे विद्रोह न करने और प्रजा को कष्ट न देने का वचन दे, तथा महाराजा मणिरथ की अधीनता स्वीकार करके उनकी आज्ञा पालन करने का विश्वास दिलावें, एवं पीड़ित प्रजा को सन्तुष्ट करदें, तो उन लोगों से सन्धि की जा सकती है। विद्रोहियों को ये बातें स्वीकार हों, तब तो वे मेरे सामने निःशस्त्र उपस्थित हों, अन्यथा शस्त्र धारण करके समर भूमि मे अपना पराक्रम दिखावें।

सन्धि कराने के लिए जो दूत आया था, उसने विद्रोहियों को युवराज का कथन सुनाया। विद्रोहियों के लिए, युवराज का कथन मानने के सिवा कोई दूसरा उपाय ही न था। इसलिए वे लोग, निःशस्त्र होकर युवराज के सन्मुख उपस्थित हुए। उन्होंने, युवराज को अभिवादन कर मूल्यवान चीजें भेट कीं, और अपने अपराधों के लिए क्षमा माँगकर, युवराज की सब शर्तें मान सन्धि कर ली। युवराज ने, उन शरणागत विद्रोहियों के साथ क्षमा तथा उदारता का व्यवहार किया और उनसे कहा, कि तुम लोग प्रजा की रक्षा करो, हम तुम्हारी रक्षा करेंगे, लेकिन यदि तुम प्रजा को कष्ट दोगे और राज्य के प्रति विद्रोह करोगे, तो उस दशा में तुम लोग भी सकुशल नहीं रह सकते।

युवराज की बातों को, सब लोगों ने शिरोधार्य किया। युवराज ने, इसी तरह सभी विद्रोहियों से अधीनता स्वीकार कराके और सीमा का समुचित रूपेण प्रबन्ध कर दिया। युवराज के व्यवहार से, प्रजा भी बहुत आनन्दित हुई और शत्रु भी मित्र बन गये।

## दुष्प्रयत्न

अपने किसी भी निश्चय पर वही व्यक्ति दृढ़ रह सकता है, जो किसी प्रकार के प्रलोभन में न पड़े, जो सन्मुख आई हुई बड़ी से बड़ी निधि को ठुकरा दे, बड़े से बड़े सुख की ओर लालायित न हो और जो निर्भय हो। जिसका मन किसी भी प्रलोभन से विचलित हो जाता है, प्रस्तुत अथवा अप्रस्तुत वस्तु एवं सुख का लालच जिसके मन को हिला देता है, अथवा जो कष्ट सहन या प्राणनाश का भय करता है, वह व्यक्ति अपने निश्चय पर दृढ़ नहीं रह सकता। ऐसे व्यक्ति का कभी न कभी पतन

अवश्यम्भावी है। संसार में ऐसे व्यक्ति तो बहुत निकलेंगे, जो थोड़े ही भय या प्रलोभन से भ्रष्ट-प्रतिज्ञ हो गये हों, लेकिन ऐसे लोगों की संख्या कम ही निकलेगी, जो भय या प्रलोभन के समुपस्थित होने पर भी अपने निश्चय पर अटल रहे हों। यह बात दूसरी है, कि किसी को भय या प्रलोभन का सामना ही न करना पड़े और वह अपने निश्चय का अन्त तक पालन कर सके, लेकिन ऐसे लोग ख्याति या महत्त्व नहीं पाते। यद्यपि वे लोग उन लोगों से तो अवश्य ही अच्छे माने जावेंगे, जो किसी भी कारण से अपने निश्चय से गिर जाते हैं, परन्तु किसी विषम परिस्थिति का सामना किये बिना ही अपने निश्चय पर स्थिर रहने वालों की अपेक्षा उन लोगों का महत्त्व बहुत अधिक है, जो विषम परिस्थिति का सामना करके, लोभ और भय से प्रभावित न होते हुए, अपने निश्चय पर दृढ़ रहते हैं। जो लोग जितने बड़े भय या प्रलोभन का सामना करके अपने निश्चय पर दृढ़ रहते हैं, वे लोग उतने ही महान् माने जाते हैं। महापुरुषों मे ऐसे ही लोगो की गणना होती है, जो बड़े से बड़े प्रलोभन या भय का सामना होने पर भी अपने निश्चय पर अड़िग रहते हैं। ऐसे ही लोगों का गुणगान किया जाता है, ऐसे ही लोग आदर्श माने जाते हैं और ऐसे ही लोगों का अनुकरण करने के लिए कहा जाता है। अरणक और कामदेव को, आदर्श श्रावक क्यों माना जाता है? इसीलिए,

कि वे बड़े बड़े भय और प्रलोभन से विचलित नहीं हुए तथा अपने निश्चय पर स्थिर रहे।

मदनरेखा को सती इसीलिए मानी जाती है और इसीलिए उसकी कथा गाई सुनी जाती है, कि उसके सामने महान् प्रलोभन और भय आया, फिर भी वह अपने निश्चय पर दृढ़ ही रही। अपना सतीत्व नहीं त्यागा। सतीत्व त्यागने का विचार तक नहीं किया। मदनरेखा के सामने जैसा प्रलोभन आया, उसको जिस भय का सामना करना पड़ा और जैसी विषम स्थिति मे पड़ना पड़ा, वैसे प्रलोभन, भय या विषम परिस्थिति की समुपस्थिति में, साधारण स्त्री के लिए अपने निश्चय पर दृढ़ रहना, और अपने सतीत्व की रक्षा करना, बहुत कठिन माना जाता है, लेकिन मदनरेखा ने उस कठिनाई का स्वागत किया, उसको सहा और अपने सतीत्व को अक्षुण्ण रखा, इसीसे उसे आदर्श सती मानी जाती है। उसको, किस भय, प्रलोभन या विषम परिस्थिति का सामना करना पड़ा, उसको अपनी प्रेयसी बनाने के लिए उसीके पति-भ्राता मणिरथ ने कैसा दुष्प्रयत्न किया, आदि बातें इस तथा अगले प्रकरण से ज्ञात होगी।

युगबाहु को युद्ध के लिए विदा करके, मणिरथ अपने महल में आया। वह युगबाहु के चले जाने से बहुत प्रसन्न था, लेकिन अब उसके सामने यह प्रश्न था, कि मदनरेखा को कैसे प्राप्त करूँ?

वह मदनरेखा को अपने वश करने एवं उसके द्वारा अपनी काम-पिपासा शान्त करने का उपाय सोचने लगा। अन्त में उसने यह निश्चय किया, कि इस कार्य में दूती की सहायता लेनी चाहिए। दूती की सहायता के बिना, मेरा उद्देश्य सफल होना कठिन है।

मणिरथ ने एक दूती को बुलाया। दूती उपस्थित हुई। मणिरथ हँस-हँस कर उससे इधर उधर की बातें करने लगा और प्रत्येक बात में उसके प्रति सहानुभूति दिखाने लगा। कुछ देर तक ऐसा करने के पश्चात्, मणिरथ ने दूती से कहा, कि मैंने तुम्हे एक विशेष कार्य सौंपने का विचार किया है। मेरा अनुमान है, कि वह कार्य तुम्हारे सिवाय किसी और से नही हो सकता। उस कार्य को तुम्हीं कर सकती हो, परन्तु वह कार्य अत्यन्त गुप्त रखने योग्य है। मैं तुम पर जिस कार्य का भार रखना चाहता हूँ, उस कार्य का किंचित् भी भेद किसी अन्य के प्रति प्रकट न होना चाहिए। बोलो, तुम मेरे द्वारा बताया गया कार्य कर सकोगी और उसका भेद किसी पर प्रकट तो न होने दोगी ?

मणिरथ के कथन के उत्तर मे दूती ने कहा कि महाराज! आप मुझ पर किसी भी कार्य का भार रखिये, मै वह कार्य अवश्य ही कर डालूँगी। आप, इस ओर से निश्चिन्त रहिए। रही भेद प्रकट होने की बात, सो इस सम्बन्ध मे भी आपको भय न रखना चाहिए। चाहे प्राण भी जावें, लेकिन मैं आप के द्वारा सौंपे गये

कार्य का भेद कदापि प्रकट न करूँगी। आप मुझ पर विश्वास रखिये।

मणिरथ—तू ऐसे विश्वास के योग्य है; तभी तो मैंने तुझे कार्य सौंपने का विचार ही किया है। अच्छा बता, तू युवराज युगबाहु की पत्नी मदनरेखा को जानती है?

दूती—जानती क्यों नहीं! यदि मदनरेखा को भी न जानूँगी, तो किसे जानूँगी! मदनरेखा बहुत सुन्दरी है। वह, अपने रूप से अप्सराओं को भी लज्जित करती है। वास्तव में उसकी समता करने वाली स्त्री, अपने राजमहल में तो क्या, सारे नगर में भी नहीं है।

मणिरथ—हाँ, वह ऐसी ही है। मैंने उसको जब से देखा है, तब से वह मेरे हृदय में बस गई है। मैं उसके विना वेचैन हूँ। मैं चाहता हूँ, कि उसको अपनी प्रेयसी बनाकर उससे प्रेम सम्बन्ध करूँ। बोलो, तुम उसको मेरी बना सकती हो?

दूती—अवश्य! उसको तो क्या, आप जिसके लिये कहें, मैं उसी स्त्री को आपकी दासी बना सकती हूँ, फिर चाहे वह कैसी भी सती क्यों न हो?

मणिरथ—बस, तुम इस कार्य का भार अपने पर समझो और बताओ, कि तुमको इसके लिए क्या सहायता चाहिए?

दूती—महाराज, किसी स्त्री को वश करने के लिए सेना

आदि की आवश्यकता तो होती ही नहीं है, केवल उत्तमोत्तम वस्त्रा-भूषण और खाद्य-सामग्री की ही आवश्यकता हुआ करती है। इन वस्तुओं के द्वारा, किसी भी स्त्री को सहज ही आकर्षित की जा सकती है, और इनके लिए स्त्रियाँ, अपने पति पुत्र आदि सभी को त्याग सकती हैं। इसलिए आप, इन्हीं चीजों की व्यवस्था करा दीजिए।

मणिरथ ने, दूती के कथनानुसार सुन्दर और बहुमूल्य वस्त्रा भूषणों एवं भोज्य-सामग्री की व्यवस्था करा दी। सब व्यवस्था देख कर दूती ने कहा, कि अब मदनरेखा तो क्या, आप जिसे चाहे वही स्त्री आपकी हो सकती है। इस प्रकार की सामग्री पर, कौन स्त्री न लुभावेगी और कौन आपकी प्रेयसी बनना न चाहेगी! मैं, अब मदनरेखा को अवश्य ही आपकी बना दूँगी।

इस प्रकार कहकर दूती, वह सब सामग्री लेकर मदनरेखा के महल को चली। उसको, मणिरथ ने बहुत प्रलोभन दिया था और प्रोत्साहित भी बहुत किया था, इसलिए वह हृदय मे यही कामना करती जा रही थी, कि किसी प्रकार मदनरेखा मणिरथ से प्रेम करना स्वीकार करले तो अच्छा, जिसमें मुझे महाराजा से अच्छा पुरस्कार प्राप्त हो। उधर पतिवियोगिनी मदनरेखा, पति की कुशल कामना करती हुई परमात्मा के भजन स्मरण मे लगी रहती और जैसे तैसे अपना समय व्यतीत करती थी। वस्त्राभूषण

आदि सामग्री लेकर दूती, मदनरेखा के महल में गई। मदनरेखा के सामने पहुँच कर, उसने थालों में सजी हुई सब सामग्री मदनरेखा के सामने रख दी और उससे कहा, कि महाराजा ने यह सब सामग्री आपके लिए उपहार भेजी है। यह कह कर दूती, मुसकराती हुई चुप हो गई। सामग्री देखकर और दूती का कथन सुनकर मदनरेखा सोचने लगी, कि जेठजी ने आज तक तो मेरे लिए इस प्रकार की कोई सामग्री नहीं भेजी, फिर आज ही यह सामग्री क्यों भेजी है। मदनरेखा के हृदय में इस प्रश्न ने कुछ देर के लिए खलबली मचादी, परन्तु उसने इस प्रश्न को यह विचार कर हल किया, कि इस समय पति बाहर गये हैं, इस कारण जेठ को यह विचार हुआ होगा, कि वियोगिनी और गर्भवती मदनरेखा को किसी प्रकार की उदासी न रहे, किन्तु वह प्रसन्न रहे। इस विचार से ही, उन्होंने प्रसाद-रूप यह सामग्री भेजी होगी। इस प्रकार हृदय का समाधान करके, उसने मणिरथ द्वारा भेजी गई सामग्री को स्वीकार कर लेना ही उचित माना।

मदनरेखा ने, वस्त्राभूषणादि सामग्री लाने वाली दूती से कहा, कि तुम महाराजा से मेरा प्रणाम कहना और कहना, कि मैं आपकी इस कृपा के लिए बहुत आभार मानती हूँ, तथा आपने मेरे लिए जो सामग्री भेजी है, उसे मैं प्रसाद रूप मानकर सिर पर चढ़ाती हूँ।

मदनरेखा ने, दूती से इस प्रकार कहकर तथा कुछ पुरस्कार देकर उसे बिदा कर दिया और मणिरथ ने जो सामग्री भेजी थी, वह सब सामग्री अपने यहाँ रखली। उसके हृदय में किसी प्रकार का सन्देह न था, इस कारण यह बात उसकी कल्पना में भी न आई, कि जेठ के हृदय में मेरे प्रति बुरी भावना है, और उसकी भूमिका तैयार करने के लिए ही उसने यह सामग्री भेजी है। मदनरेखा ने तो सरल भाव से यही समझा, कि मेरे पति बाहर गये हुए हैं, इस कारण मुझे किसी प्रकार की चिन्ता न हो किन्तु प्रसन्नता रहे, इसी उद्देश्य से जेठ ने यह सामाग्री भेजी है। यह समझने के कारण, उसने सरल भाव से वह सब सामग्री रखली।

प्रसन्न होती हुई दूती, मणिरथ के पास गई। उसने मणिरथ से कहा, कि आपका उद्देश्य सफल हो जावेगा। मदनरेखा ने, सब सामग्री प्रसन्नता पूर्वक रख ली है और मुझे यह पुरस्कार दिया है। यह कह कर उसने, मदनरेखा का वह कथन भी सुनाया, जो मदनरेखा ने मणिरथ से कहने के लिए कहा था।

यद्यपि दूती ने मणिरथ से यह कहा कि अब मदनरेखा आपकी हो जावेगी, लेकिन मणिरथ चतुर था, इसलिए उसने दूती द्वारा कही गई सब बातें सुनकर उससे कहा, कि—तू यह किस आधार से कहती है, कि मेरा उद्देश्य सफल हो जावेगा? क्या

तूने मदनरेखा से मेरा उद्देश्य कहा था ? मणिरथ के इस कथन के उत्तर में दूती ने कहा, कि—ऐसी बातें कहीं सहसा थोड़े ही कही जाती हैं। मैंने आपका उद्देश्य प्रकट नहीं किया, फिर भी मदनरेखा ने आपके द्वारा भेजी गई सामग्री रखली, इससे यह स्पष्ट है, कि वह भी आपको चाहती है, और इस प्रकार आपका उद्देश्य पूर्ण हुआ है।

मणिरथ ने दूती से कहा, कि—सामग्री रख लेने मात्र से ऐसा समझना तेरी भूल है। मदनरेखा ने जो कुछ कहा, उससे ऐसी कोई बात प्रकट नहीं होती, जिससे यह जाना जावे कि वह भी मुझ से प्रेम करती है। हो सकता है, कि उसने मेरा उद्देश्य समझा ही न हो और सहज रीति से ही सब सामग्री रखली हो। इसलिए, तू ऐसी ही सामग्री लेकर एक बार फिर जा और बातों बातों मे मदनरेखा के सामने मेरा उद्देश्य प्रकट कर दे। मेरा उद्देश्य सुनकर वह जो कुछ कहेगी, उसी पर से यह निश्चय हो सकेगा, कि वह भी मुझे चाहती है या नहीं।

दूती ने, मणिरथ की आज्ञा स्वीकार की। मणिरथ ने, फिर अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषण एवं खाद्य-सामग्री की व्यवस्था करादी, सब सामग्री लेकर दूती, फिर मदनरेखा के महल में गई। उसने, सब सामग्री पहले की ही तरह मदनरेखा के सामने रखदी और उससे कहा, कि—महाराज ने आपके लिए फिर ये बहुमूल्य

वस्त्राभूषण और यह उत्तम भोजन-सामग्री भेजी है। आप यह सामग्री स्वीकार कीजिये।

दूती द्वारा लाई गई सामग्री देखकर और दूती का कथन सुनकर, मदनरेखा के मन में कुछ सन्देह हुआ। वह सोचने लगी, कि अभी कुछ ही दिन हुए तब तो जेठ ने इतने वस्त्राभूषण और बहुत-सी खाद्य सामग्री भेजी ही थी, फिर आज यह सामग्री और क्यों भेजी? जेठ के यहाँ से, अब तक इस प्रकार की सामग्री कभी आती नहीं रही है, तथा इस तरह जल्दी-जल्दी भेंट—उपहार आदि भेजने की प्रथा भी नहीं है। इसलिए जेठ का बारम्बार सामग्री भेजना देखकर यह सन्देह होता है कि उनके हृदय में किसी प्रकार की दुर्भावना तो नहीं है!

मदनरेखा को इस प्रकार का विचार तो हुआ, फिर भी उसने दूती के सामने ऐसी कोई बात प्रकट नहीं की, किन्तु उससे यही कहा, कि—मेरे पति परदेश गये हैं, इसलिए मेरे को न तो वस्त्राभूषण ही अच्छे लगते हैं, न खाना पीना ही। जिसका पति परदेश गया हो, घर में उपस्थित न हो, उस स्त्री को, शृंगार और अच्छे भोजन से बचते रहना ही उचित है। ऐसा करने पर ही, वह स्त्री सदाचारिणी रह सकती है। मेरे पति भी घर से अनुपस्थित हैं, इसलिए इस नियम का पालन मुझे भी करना ही चाहिए। पति के वियोग के कारण, मुझे इनमे से किसी भी

चीज में रुचि नहीं है। इसके सिवा, महाराजा ने पहले जो सामग्री भेजी थी, वही सामग्री अब तक पड़ी हुई है। इसलिए, तुम यह सब सामग्री लौटा ले जाओ और महाराजा से मेरा प्रणाम कह कर मेरी ओर से यह निवेदन कर देना, कि 'अभी वह पहले वाली सामग्री ही पड़ी हुई है। उस सामग्री के समाप्त हो जाने पर, यदि आवश्यकता होगी, तो मैं और सामग्री भेजने के लिए निवेदन करा दूँगी।' मैं, पहले वाली सामग्री भी न रखती, परन्तु मैंने सोचा कि ऐसा करने से महाराजा को दुःख होगा, इसलिए मैंने वह सामग्री रखली थी। लेकिन अब इस सामग्री की अभी आवश्यकता नहीं है, इसलिए इसे लौटा ले जाओ।

मदनरेखा का कथन सुनकर दूती ने सोचा, कि यह अवसर महाराजा का उद्देश्य प्रकट करने के लिए उपयुक्त है। इस तरह सोचकर. दूती हँस कर मदनरेखा से कहने लगी, कि आपको यह सामग्री भी रख लेनी चाहिए। यदि आप महाराजा द्वारा भेजी गई यह सामग्री लौटा देंगी, तो महाराजा को बहुत दुःख होगा। महाराजा के हृदय में, आपके प्रति सीमातीत प्रेम है। आपको प्रसन्न करने के लिए ही, महाराजा ने पहले वाली और यह सब सामग्री भेजी है। आप, महाराज के हृदय मे ऐसी बस गई हैं, कि एक क्षण के लिए भी विस्मृत नहीं होतीं, और महाराजा आपके बिना, अपना जीवन वैसा ही नि.सार समझते हैं, जैसा

निःसार आत्मविहीन शरीर होता है। इसलिए आप, महाराजा पर प्रसन्न होइये, उनकी कामना पूर्ण कीजिये, उनके हृदय को शान्ति देकर आप भी आनन्दित होइये और पटरानी बनकर, सब प्रकार के सुख भोगती हुई अपना जीवन सफल बनाइये। महाराजा, आपसे इतना अधिक प्रेम करते हैं, कि वे आपको अपना सर्वस्व समर्पण करने, आपको अपनी पटरानी बनाने और आपके आज्ञाकारी रहने में अपना सौभाग्य मानते हैं। जब आप उनका प्रेम सन्देश स्वीकार कर लेगीं, तब उन्हें सीमातीत प्रसन्नता होगी। इसलिए आप, यह सामग्री लौटाइये मत, किन्तु इसे रख कर, महाराजा को उनका प्रेम-प्रस्ताव स्वीकार होने का परिचय दीजिये।

मदनरेखा, दूती की सब बातें गम्भीरता पूर्वक सुनती रही। वह, दूती की बातों से यह स्पष्ट समझ गई, कि जेठ के हृदय में मेरे प्रति बुरी कामना है और उस बुरी कामना को पूरी करने के लिए ही, उनने पहले भी सामग्री भेजी थी तथा यह सामग्री भेजी है। यह समझकर वह सोचने लगी, कि जेठ कुलीन और सज्जन पुरुष हैं। उनके विरुद्ध, अब तक ऐसी कोई घटना न तो देखी है, न सुनी है। उनके हृदय में, सहसा इस प्रकार का बुरा विचार कैसे आया, यह समझ में नहीं आता। मुझे, इस समय जेठ के विरुद्ध कुछ न कहना चाहिए, किन्तु इस दूती को ही डरा

देना चाहिए, जिसमे यह फिर कभी आने का साहस भी न करे और इसके द्वारा जेठ को भी यह ज्ञात हो जावे, कि मदनरेखा द्वारा उनकी दुराशा पूर्ण नहीं हो सकती।

दूती का कथन समाप्त होने पर, मदनरेखा ने अपनी दासी को तलवार लाने की आज्ञा दी। मदनरेखा की आज्ञा सुनकर दूती इस विचार से चकराई, कि यह तलवार क्यों मँगवा रही है! उसने मदनरेखा से पूछा, कि आपने तलवार क्यों मँगवाई? मदनरेखा ने उत्तर दिया, कि—तुझे दण्ड देने के लिए, जिसमें फिर कभी तेरे द्वारा इस प्रकार का कार्य न हो और मेरे जेठ जैसे पवित्र पुरुष को, बुरे मार्ग पर न ले जा सके, न किसी स्त्री को सतीत्व से गिराने का प्रयत्न ही कर सके। मदनरेखा, दूती से इस प्रकार कह रही थी, कि इतने ही मे उसकी दासी ने तलवार लाकर उसके हाथ में देदी। मदनरेखा ने, तलवार खोलकर दूती को बताते हुए उससे कहा, कि—तू परमात्मा का स्मरण करले। मैं अभी तेरा सिर धड़ से अलग किये देती हूँ। यदि तुझे अपने प्राण प्रिय हैं तो तूं यहाँ से भागजा और फिर कभी यहाँ आने का साहस मत करना!

चण्डिका रूपधारिणी मदनरेखा से डरकर, दूती अपने प्राण बचाने के लिए भागी। वह, भय से काँपती हुई मणिरथ के पास गई। मणिरथ, उसकी प्रतीक्षा में यह आशा लगाये हुए बैठा ही था कि 'मदनरेखा ने आपके साथ प्रेम करना स्वीकार कर लिया' ऐसा

समाचार दूती के मुख से सुनने को मिलेगा। दूती को भय से काँपती हुई और अस्त-व्यस्त दशा मे देखकर, मणिरथ आश्चर्य चकित रह गया। उसने दूती से पूछा, कि—तू इतनी डरी और घबराई हुई क्यों है ? दूती ने उत्तर दिया, कि—महाराज! कुछ पूछिये ही मत! मदनरेखा, साक्षात् राक्षसी ही है। वह तो तलवार से मेरा मस्तक ही काटे डालती थी, लेकिन उसने दया करके मुझे जीवित आने दिया है। अब मै, उसके यहाँ कदापि न जाऊँगी। उसका आज का स्वरूप देखकर, मैं तो आपसे भी यही कहती हूँ, कि आप उसका नाम छोड़िये और उसको पाने की आशा मत करिये।

मणिरथ ने, दूती को सान्त्वना दी और उसे विदा कर दिया। फिर वह सोचने लगा, कि मदनरेखा केवल सुन्दरी ही नहीं है, किन्तु वीर-हृदय और चतुर भी है। उसने, दूती को तलवार बताकर अपनी वीरता का परिचय दिया है, और मेरे प्रति प्रेम होने पर भी, उसने दूती को इसलिये डरा दिया है, कि वह मेरे और उसके सम्बन्ध के बीच मे दूती को नहीं रखना चाहती! वह कैसी चतुर है! उसके हृदय मे यदि मेरे प्रति प्रेम न होता तो वह मेरे द्वारा भेजी गई सामग्री न रखती। लेकिन उसका सामग्री रखना इस बात को प्रकट करता है, कि उसके हृदय मे मेरे प्रति प्रेम है, परन्तु वह इस प्रेम सम्बन्ध का रहस्य किसी तीसरे को मालूम

होने देना नहीं चाहती। वास्तव में उसका ऐसा करना, उचित भी है। जब कोई भेद तीसरे आदमी को मालूम होता है, तब वह किसी न किसी दिन प्रकट भी होजाता है। इसलिये यह उचित होगा, कि मैं स्वयं ही मदनरेखा से मिलकर उसके हृदय के भाव जानूँ। अपना काम बनाने के लिए, स्वयं को ही जाने का कष्ट करना चाहिए। इसके सिवाय, जब मैं स्वयं जाऊँगा, तब मदनरेखा मेरा प्रेम प्रस्ताव अस्वीकार भी न कर सकेगी। उसको किसी प्रकार का भय या संकोच होगा, तो मेरे जाने से वह भी मिट जावेगा। इस प्रकार प्रत्येक दृष्टि से, मदनरेखा के पास मेरा जाना ही ठीक होगा।

मणिरथ, अपने हृदय में इसी प्रकार की उधेड़बुन करता रहा। उसको यह भी विचार हो रहा था, कि युगबाहु ने विद्रोहियों को अधीन कर लिया है, और वह शीघ्र ही आने वाला है। इसलिए मुझे, मदनरेखा से जल्दी ही मिल लेना चाहिये। युगबाहु के आने से पहले ही, यदि मैंने मदनरेखा को अपनी बनाली, तब तो वह मेरी बन ही जावेगी, अन्यथा युगबाहु के आजाने के बाद, मेरा उद्देश्य सफल होना कठिन हो जावेगा, और फिर बहुत प्रयत्न करने पर भी, युगबाहु की अनुपस्थिति का ऐसा अवसर हाथ न आवेगा। इसके सिवाय, सम्भव है कि युगबाहु के आने पर, मदनरेखा उसके सामने सब बातें प्रकट करदे।

यदि ऐसा हुआ, तो मैं मदनरेखा को भी प्राप्त न कर सकूँगा और युगबाहु को अपना शत्रु भी बना लूँगा। परन्तु जब मदनरेखा युगबाहु के आने से पहले ही मेरी हो जावेगी, तब वह युगबाहु के सामने मेरे विरुद्ध कुछ न कहेगी और उस दशा मे, मैं युगबाहु को सहज ही नष्ट करके अपना मार्ग निष्कण्टक बना सकूँगा।

जिस प्रकार जुआरी को अपना ही दाँव सूझ पड़ता है, उसी प्रकार मणिरथ को भी सब बातें अपने ही अनुकूल जान पड़ती थीं। बहुत सोच विचार कर, उसने रात के समय मदनरेखा के महल में जाने का निश्चय किया। उसने, मदनरेखा के महल में पहुँचने का मार्ग सोच लिया और यह भी पता लगा लिया, कि मदनरेखा किस जगह सोती है।

आधीरात के समय, मणिरथ, मदनरेखा के महल को चला। वह, किसी निश्चित मार्ग से मदनरेखा के महल में उपस्थित हो गया, और मदनरेखा के शयनागार के समीप भी पहुँच गया। उसने खिड़की द्वारा देखा, कि मदनरेखा शैया पर सोई हुई है। अपने को इच्छित स्थान पर पहुँच गया जानकर, मणिरथ अपने हृदय में बहुत प्रसन्न हुआ और खिड़की मे से मदनरेखा के लिए कहने लगा, कि—हे सुन्दरी! हे चन्द्रवदनी! हे मनमोहिनी! उठो! यह तुम्हारा प्रेमी, तुम्हारी सेवा मे उपस्थित हुआ है।

यद्यपि उस समय मदनरेखा सो रही थी, परन्तु वह ऐसी

वेसुध न सोती थी, कि जो मणिरथ के यह कहने पर भी नींद न खुलती। जिस प्रकार चतुर स्त्रियाँ किंचित् आहट होते ही जाग उठती हैं, उसी प्रकार मदनरेखा भी, मणिरथ की बोली सुनकर जाग उठी, और इधर उधर देखती हुई यह सोचने लगी, कि यह कौन बोल रहा है मदनरेखा को जागी हुई देखकर, मणिरथ के हृदय में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। वह सोचने लगा, कि बस अब क्या है! वह जाग तो गई, अब अभी ही किवाड़ खोल कर मुझे भीतर बुला लेगी, और मैं इसके शरीर के स्पर्श का आनन्द लेकर, अपनी चिरकालीन अभिलाषा पूर्ण कर सकूँगा। इस प्रकार के विचार से प्रसन्न होता हुआ, मणिरथ, मयणरहा से कहने लगा, कि—हे मृगाक्षी! तुम चकित क्यों हो? मैं दूसरा कोई नहीं हूँ, किन्तु मणिरथ हूँ, इसलिए तुम निर्भय रहो और मुझे अपना प्रेमपात्र बनाओ!

मणिरथ का यह कथन सुनकर मदनरेखा जान गई, कि ये मेरे जेठजी हैं, जो मेरे सौन्दर्य पर मुग्ध होकर अपनी कामना पूर्ण करने के लिये रात के समय यहाँ आये हैं। मदनरेखा के स्थान पर यदि कोई दूसरी स्त्री होती, तो वह तो अपने रूप, सौन्दर्य पर अभिमान करती हुई मणिरथ की भर्त्सना करने लगती, अपना कोई अपराध न मानती, लेकिन बुद्धिमान लोग, प्रत्येक अनिष्ट घटना के लिए अपने को ही अपराधी मानते हैं और

अपना ही दूषण देखते हैं। इसके अनुसार मदनरेखा भी, यह जानकर कि ये मेरे जेठ हैं, मन ही मन स्वयं को धिक्कारने लगी और अपने रूप-सौन्दर्य की निन्दा करने लगी। वह कहने लगी, कि मेरे इस रूप-सौन्दर्य ने, मेरे पवित्र जेठ के हृदय में भी विकार उत्पन्न कर दिया, और इन्हें कामान्ध बना दिया है। मेरे पति के प्रति, इन जेठ के हृदय में इतना स्नेह था, कि इनने अपने पुत्र के अधिकार का राज्य भी उन्हे दे दिया, परन्तु मेरा यह रूप, सौन्दर्य, उस स्नेह रूपी दूध मे खटाई की तरह हुआ है, और इसी से ये जेठ बन्धु-स्नेह को भूलकर तथा न्याय-नीति का मस्तक कुचलकर, अपनी अनुज वधू को अपनी उप-पत्नी बनाने के लिए तैयार हुए हैं, जो इनकी कन्या के समान है। धिक्कार है। मेरे इस रूप यौवन को! यदि मैं सुन्दरी न होती, किन्तु कुरूपा होती, तो ये जेठ इस तरह का घोर कुकर्म करने के लिए क्यों उद्यत होते! समझ में नहीं आता, कि इनमें यह कुमति कहाँ से आगई! ये वीर हैं, और मस्तक कटने के समय तक भी किसी के सामने दीनता नहीं बता सकते, परन्तु काम विकार की प्रेरणा से, ये इस अर्द्धरात्रि के समय चोर की भाँति यहाँ आये हैं तथा एक तुच्छ स्त्री के सामने, इस प्रकार दीनता दिखा रहे हैं।

अपने रूप सौन्दर्य को इस प्रकार धिक्कार कर, फिर मदनरेखा

सोचने लगी, कि ये जेठ इस समय कामांध होकर आये हैं। ये प्रत्येक सम्भव उपाय से, मेरा सतीत्व नष्ट करना चाहेंगे। मुझे किस प्रकार अपना सतीत्व बचाना चाहिए! यदि मैं सिपाहियों को आवाज देकर, उनके हाथों इन्हे पकड़वा दूँगी, तो उस दशा में यह बात सब लोगों में फैल जावेगी, बहुत से लोग यहाँ एकत्रित हो जावेंगे, और ये मेरे लिये आये थे, यह जानकर लोग इनको धिक्कारेंगे। जिससे इन्हें लज्जित होना पड़ेगा तथा कुल को भी कलंक लगेगा। इसके सिवा, संभव है कि पहरेदारों के आने से पहले ही, ये उसी मार्ग से भाग जावें, जिस मार्ग से छिपकर यहाँ आये हैं। यदि ऐसा हुआ, तो उस दशा में मेरा हो-हल्ला करना भी व्यर्थ होगा, और लोग मेरे ही लिये न मालूम क्या क्या कहने लगेंगे। साथ ही यह भी सम्भव है कि जेठ में इस समय जो कुमति है, वह समझाने और इनके स्वरूप आदि का ज्ञान कराने से मिट जावे, तथा इनमें सुमति आजावे। ऐसी दशा में, केवल लोगों को एकत्रित करके इनका फजीता कराने तथा इनके मस्तक पर सदा के लिए अपयश का टीका लगाने से क्या लाभ? बुद्धि चंचल होती है? जिनकी बुद्धि स्थिर हो गई है, वे लोग तो इस संसार व्यवहार से ही निकल जाते हैं, परन्तु जिनकी बुद्धि की चंचलता नहीं मिटी है, उनकी बुद्धि कभी अच्छी हो जाती है, कभी खराब। जिनकी बुद्धि ऐसी चंचल है, उनकी बुरी बुद्धि, अच्छी भी हो सकती है।

इसलिए मुझे, इनको समझाने का मार्ग ही अपनाना चाहिए, और इनको अपयश से बचा लेना चाहिए। पात्र के अनुसार ही दंड होना चाहिए। ये भले आदमी हैं, इसलिये इनको मेरा समझाना इनके लिये दंड रूप ही होगा।

मदनरेखा ने, मणिरथ को समझाने का निश्चय किया। वह जब तक विचार करती रही, तब तक मणिरथ, उससे किवाड़ खोलने और स्वयं से प्रेम करने के लिए कहता रहा तथा उस अनेक प्रकार के प्रलोभन भी देता रहा, परन्तु मदनरेखा उसकी किसी बात पर ध्यान न देकर, अपने कर्त्तव्य का ही विचार करती रही। कर्त्तव्य का निश्चय कर चुकने पर, वह मणिरथ से प्रिय शब्दों में कहने लगी, कि—श्रद्धेय जेठजी ! आप राजा हैं और मेरे लिए तो पिता–तुल्य हैं, इसलिए आपको मेरी खबर लेना उचित ही है, लेकिन इसके लिए, आपने इस रात के समय कष्ट क्यों किया ? आपकी कृपा से मै आनंद में हूँ, इसलिए आप पधारिये और आपको जो कष्ट हुआ, उसके लिए मुझे क्षमा कीजिए। कदाचित आप भूल से यहाँ आगये हो, आपको स्मरण न रहा हो कि यह भवन किसका है, तो मैं आपसे निवेदन करती हूँ, कि यह भवन आपके लघुभ्राता का है और मैं आपकी अनुजवधू यहाँ रहती हूँ। आप मेरे श्रेष्ठतम जेठ हैं। बल्कि, मेरे पति आपको पितातुल्य मानते हैं, इसलिए आप मेरे श्वसुर स्वरूप हैं। इस

असमय में, आपका यहाँ आना और ठहरना, मर्यादा विरुद्ध है। इसलिये आप पधारिये।

मदनरेखा ने जो कुछ कहा था, वह ठीक होने के साथ ही, मणिरथ की प्रतिष्ठा बचाने वाला भी था। उसके कथन पर से मणिरथ को यह समझ जाना चाहिए था, कि मदनरेखा ऐसी स्त्री नहीं है, जो मेरे साथ दुराचार मे प्रवृत हो। लेकिन मणिरथ मे तो ऐसी कुमति छाई हुई थी, कि जिसके कारण उसे, मदनरेखा का कथन व्यर्थ-सा जान पड़ा। उसने, मदनरेखा के कथन पर न तो ध्यान ही दिया, न विचार ही किया। किन्तु वह मदनरेखा से कहने लगा, कि—प्रिये! मदनरेखा, मैं तुमसे प्रेम की भिक्षा लेने के लिए आया हूँ, इसलिए तुम इस तरह की बातें कहकर, मुझे लौट जाने के लिए न कहो, किन्तु मुझे स्वीकार करके मेरी कामना पूर्ण करो। मैंने जो सामग्री भेजी थी, उससे मैं यह समझ गया हूँ, कि तुम्हारे हृदय में मेरे प्रति स्थान है, फिर भी तुम इस तरह की बातें क्यो करती हो, यह समझ मे नहीं आता। तुमने, उस दूती को भय देकर चतुराई का ही काम किया है। वास्तव मे, मेरा और तुम्हारा प्रेम-सम्बन्ध किसी तीसरे को ज्ञात न होना चाहिए। मैं, तुम्हारी चातुरी एवं तुम्हारी वीरता पर भी मुग्ध हूँ। मैं तुम्हारे पास जिस आशा से आया हूँ, मेरी वह आशा पूर्ण करो। मुझे निराश न करो, न विलम्ब ही करो। तुम्हारा विलम्ब करना, मेरे लिए असह्य हो रहा है।

मणिरथ के कथन के उत्तर में, मदनरेखा ने कहा कि श्रद्धेय जेठजी! आपके मुँह से इस तरह की बातें शोभा नहीं देतीं। आपका यह कर्त्तव्य नहीं है, कि आप कन्या के समान मानी जाने वाली अपनी अनुजवधू को धर्म भ्रष्ट करने का प्रयत्न करें, उससे ऐसी बातें कहें, और उससे सहगमन करना चाहें। आप में, ऐसे कुकृत्य में प्रवृत्त होने की कुमति कहाँ से आगई! आप ऐसी बातो को त्यागिये। मुझसे, अपनी बुरी कामना पूर्ण होने की आशा मत रखिये। मैं, इस तरह का कुकर्म करके अपने पवित्र जीवन को दूषित नही बना सकती। मै आपको अपना यह निर्णय स्पष्ट सुनाये देती हूँ, कि आप तो क्या, लेकिन साक्षात् इन्द्र भी आकर मुझे पथ भ्रष्ट करना चाहे, तो मैं उससे भी उसी तरह घृणा करूँगी, जिस तरह मल मूत्र से घृणा की जाती है। इसलिए आप, अपने स्थान को जाइये। ऐसा करने मे ही, आपकी तथा मेरी प्रतिष्ठा है। आप कितना भी प्रयत्न करिये, मदनरेखा आपके हाथ न आवेगी, किन्तु अपयश और कलंक ही हाथ आवेगा। आपसे अपना सतीत्व बचाने के लिए, यदि मुझे कोई दूसरा प्रयत्न करना पड़ा और उस प्रयत्न करने मे लोगो को आपकी दुर्मति का हाल ज्ञात हो गया, तो यह बात केवल आपही का गौरव नष्ट न करेगी, किन्तु आपके पूर्वजों के धवल यश को भी कलंकित कर डालेगी। आप, मेरे कथन पर भलीभाँति

ध्यान दीजिए, और यह समझ लीजिए, कि आपकी, वंश की, मेरी और नीति धर्म की रक्षा इसी में है, कि आप अपनी काम-वासना पर संयम करें, मेरे साथ दुराचार करने की आशा त्याग दें।

मदनरेखा के इस कथन का भी कोई यथेष्ट परिणाम न निकला। मणिरथ, वहाँ से नहीं हटा, किन्तु मदनरेखा की बात समाप्त होने पर वह कहने लगा कि—मदनरेखा! मैं तुमको क्यों चाहता हूँ, तुम यह समझने मे भूल कर रही हो। तुम समझती हो, कि मैं तुम्हे तुच्छ विषय वासना की पूर्त्ति के लिए चाहता हूँ, परन्तु वास्तविक बात इसके विपरीत है। मैं, तुम्हे तुच्छ विषय भोग के लिए नहीं चाहता, किन्तु राज्य और प्रजा की हित कामना से ही मैं तुम्हे अपनी सहचारिणी बनाना चाहता हूँ। मेरी दृष्टि से, तुम असाधारण बुद्धिमती हो। तुम ऐसी बुद्धिमती स्त्री का सहयोग मिलने पर, मैं इस राज्य को आदर्श और प्रजा को सुख समृद्ध बनाने मे समर्थ हो सकता हूँ। अब तक मुझे, तुम ऐसी स्त्री की सहायता प्राप्त नहीं हुई है, इसी से यह राज्य अस्तव्यस्त है और यहाँ की प्रजा भी पूरी तरह सुखी नहीं है। इसलिए तुम, मेरी सहचारिणी बन कर अपना सहयोग प्रदान करो, जिसमें मैं राज्य और प्रजा की उन्नति कर सकूँ। मैं, तुम्हे अपनी पटरानी बनाऊँगा, राज्य का स्वामित्व तुम्हारे अर्पण कर

दूँगा, और जीवन भर तुम्हारा आज्ञाकारी रहूँगा। तुम मेरे कथन पर विश्वास रखो, किसी भी प्रकार का संदेह संकोच न करो। रही नीति धर्म की बात, सो नीति धर्म का सार परोपकार करना और प्रजा को सुख देना ही है। अपना सम्बन्ध इसी के लिए होगा, तथा इस प्रकार अपने द्वारा नीति धर्म का पालन ही होगा, उल्लंघन न होगा।

मणिरथ ने, मदनरेखा को इस प्रकार राज्य का प्रलोभन दिया, परन्तु मदनरेखा ऐसी न थी, कि जो राज्य के लोभ से अपना सतीत्व नष्ट करने के लिए तैयार हो जाती। उसने, मणिरथ के कथन के उत्तर मे कहा, कि—जेठजी! आप कैसी बातें कह रहे हैं। आप मुझे राज्य का लोभ देते हैं, लेकिन पतिव्रत धर्म के सामने, मैं संसार की समस्त सम्पदा को तुच्छ एवं नगण्य मानती हूँ। यहाँ तक, कि मे पतिव्रत धर्म की रक्षा के लिए अपना जीवन त्यागने मे भी संकोच नहीं कर सकती। आपका यह कथन भी असंगत है, कि मैं राज्य और प्रजा की उन्नति के लिए ही तुम्हारे साथ सम्बन्ध जोड़ना चाहता हूँ। कहीं दुराचारी स्त्री पुरुष भी, परोपकार या जनता का हित कर सकते हैं। ऐसा समझना ही भूल है। इसके सिवा, आप मेरे सहयोग और मेरी बुद्धिमता से जिस राज्य की उन्नति करना चाहते हैं, उस राज्य का उत्तराधिकारी आपने अपने छोटे भाई को बना दिया है, और आपके छोटे

भाई को मेरा सहयोग प्राप्त ही है। इसलिए यदि मेरी बुद्धिमत्ता से राज्य की उन्नति हो सकती होगी, तो आपही हो जावेगी। इसके लिए, इस प्रकार के अनुचित सम्बन्ध की क्या आवश्यकता है? यदि आप अपने जीवन काल मे ही, मेरी असाधारण बुद्धि द्वारा राज्य को उन्नत देखना चाहते है, तो जिन्हे मेरी बुद्धि का सहयोग प्राप्त है, उन अपने छोटे भाई पर राज्य का भार डाल दीजिये और आप राजकार्य से निवृत्त हो जाइये। ऐसा करने पर आपको ज्ञात हो जावेगा, कि मेरी बुद्धि के विषय मे आपका अनुमान सही है या गलत! आप, मेरे को अपनी बातों पर विश्वास करने के लिये कहते हैं, परन्तु आपके कथन पर कौन मूर्ख विश्वास करेगा? एक ओर तो, आपने मेरे पति को युवराज बनाया है और दूसरी ओर आप, मुझे अपनी उप-पत्नी बना कर पटरानी पद देना चाहते हैं। ये दोनों बातें, परस्पर कैसी विरुद्ध हैं? ऐसी परस्पर विरुद्ध बातों को जानकर भी, कोई बुद्धिमान आपकी बात पर कैसे विश्वास कर सकता है? इसी प्रकार आपने अपने विवाह के समय मेरी जेठानी से यह प्रतिज्ञा की थी, कि मैं तुम्हारे सिवा सब स्त्रियों को माता और बहन के समान समझूँगा। इस प्रतिज्ञा द्वारा आपने जिन स्त्रियों को त्यागा, उन्हीं में मैं भी एक हूँ। लेकिन आज आप अपनी उस प्रतिज्ञा को तोड़कर, कौए कुत्ते की भाँति त्यागी हुई वस्तु अपनाने के

लिये तैयार हुए हैं। ऐसा होते हुए भी, आपके कथन पर कोई कैसे विश्वास करेगा? पिता तुल्य जेठजी! आपकी बातों में कोई तथ्य नहीं है। मदनरेखा आपकी बातों के भुलावे मे नहीं आ सकती, न अपनी प्रतिज्ञा के विरुद्ध किसी पर-पुरुष को पति बना सकती है। आप भी, अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण करके उस पर दृढ़ रहिये, प्रतिज्ञा भ्रष्ट होकर अपयश न लीजिये, न कुल को ही कलंकित कीजिये। इस प्रकार का अपयश लेने और कुल को कलंक लगाने की अपेक्षा, मर जाना श्रेष्ठ है। इसलिए आप, अपनी दुर्वासना को दबाकर अपने महल को जाइये, व्यर्थ का श्रम न कीजिये।

मदनरेखा के इस तरह समझाने पर भी, मणिरथ की भावना नहीं बदली, न वह वहाँ से हटा ही। बल्कि जिस प्रकार दूध पिलाने से साँप का विष बढ़ता है, उसी प्रकार मदनरेखा का कथन मणिरथ की दुर्भावना बढ़ाने वाला ही हुवा। वह, मदनरेखा की बातें सुन सुनकर, उसपर अधिकाधिक आसक्त होता जाता था। मदनरेखा ने उसको जो उपदेश दिया, उसको सुनकर भी मणिरथ ने अपना प्रयत्न नहीं छोड़ा। उसने मदनरेखा से बहुत कुछ कहा सुना, बहुत अनुनय विनय की, सीमातीत नम्रता एवं दीनता भी दिखाई, परन्तु मदनरेखा के सामने उसकी सब बातें व्यर्थ हुई। मदनरेखा ने, उसकी प्रत्येक बात का ऐसा उत्तर दिया, कि जिससे

उस बात के विषय में और कुछ कहने का स्थान ही न रहता था। जब मणिरथ अपने सब प्रयत्नों में असफल रहा, तब उसने कपट और बल-प्रयोग का सहारा लेने का निश्चय किया। वह मदनरेखा से कहने लगा, कि तुम्हारे मधुर एवं तल-स्पर्शी उपदेश से मेरे हृदय की भावना बदल गई है। मुझे अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान हो गया है। इसलिये मैं अपने स्थान को लौटा जाता हूँ। लेकिन तुम एकबार किंवाड़ खोलकर मुझे अपनें चन्द्रमुख का दर्शन करादो। बस, तुम्हारा दर्शन करके मै चला जाऊँगा।

मणिरथ सोचता था, कि मदनरेखा मेरे कपट वाक्य में फँसकर एक बार किवाड खोल दे, बस मेरा उद्देश्य सफल हो जावेगा। जब इसके शयनागार में जाने का मार्ग खुला होगा, तब मैं भीतर जाकर बलपूर्वक मदनरेखा को पकड़ कर अपना मनोरथ पूर्ण कर लूँगा। फिर यह, मेरे हाथ से कदापि नहीं छूट सकती। इस प्रकार सोच कर मणिरथ ने, मदनरेखा से किंवाड़ खोलकर दर्शन देने के लिए कहा, परन्तु मदनरेखा ऐसी भोली न थी, जो कामान्ध मणिरथ की बात पर विश्वास करके किवाड़ खोल देती। उसने मणिरथ से कहा, कि आप यह कपट-जाल किसी दूसरी जगह फैलाइये। यहाँ, आपका यह प्रपंच नहीं चल सकता। मैं, इस समय कदापि किवाड नहीं खोल सकती। खेद की बात तो यह है, कि मैंने आपको इतना समझाया, फिर भी आप नहीं समझे। मैं आपसे

फिर कहती हूँ, कि आप मुझे या किसी अन्य पर-स्त्री को अपनाने का प्रयत्न मत कीजिये। रावण, पद्मोत्तर और कीचक का विनाश इसी कारण हुवा था, कि उनने परस्त्री को अपनी बनाने का प्रयत्न किया था। इसलिये आप, अपनी और परिवार की कुशल के लिये अपने स्थान को जाइये। आप इसी मे प्रसन्नता मानिये, कि आपकी दुर्भावना को जानकर भी, मैंने आपके लिए न तो कटुशब्द का ही प्रयोग किया, न आपकी प्रतिष्ठा को मिट्टी मे मिलाने के लिए पहरेदार या और किसी को पुकारा ही। मैं भविष्य के लिए भी आपको यह विश्वास दिलाती हूँ, कि इस घटना की किसी को खबर न होगी।

मदनरेखा ने, इस प्रकार मणिरथ से जाने के लिये बहुत कुछ कहा, परन्तु मणिरथ वहाँ से नहीं गया। वह, मदनरेखा से किवाड खोल देने के लिए आग्रह करता रहा। उसको हटाने के लिए दिया गया अपना सारा उपदेश व्यर्थ और मणिरथ का हठाग्रह देखकर, मदनरेखा, गुप्त मार्ग से अपनी सासू यानी मणिरथ और युगबाहु की माता के शयनागार में गई। उसने सोचा, कि जब मैं सासू को बुला लाऊँगी, तब ये भी यहाँ से चले जावेंगे, मैं भी निर्भय हो जाऊँगी और कुल की प्रतिष्ठा को भी कलंक न लगेगा। सासु के शयनागार में पहुँचकर, मदनरेखा ने किसी प्रकार की हा-हू नहीं की, किन्तु धीरे मे सासू को जगाया। युगबाहु की पत्नी को देख

कर, युगबाहु की माता को बहुत ही आश्चर्य हुआ। उसने मदनरेखा से पूछा, कि पुत्रवधू, तुम इस समय कैसे आई हो? कहीं अकेली होने के कारण डर तो नहीं गई या कोई दूसरी घटना तो नहीं हो गई? सासू के इस प्रश्न के उत्तर मे मदनरेखा ने, मणिरथ के विरुद्ध कुछ कहकर यही कहा कि मैं न तो भयभीत हूँ, न कोई दूसरी घटना हुई है। मैंने आपको इस समय इस कारण कष्ट दिया है, कि आपके ज्येष्ठ पुत्र, भूलकर या और किसी कारण से, मेरे महल मे आगये हैं। मेरे लिए वे आदरणीय हैं, इस कारण मै उनसे कुछ कह नहीं सकती, और उनसे कुछ कहने मे लज्जा भी होती है। इसलिए आप चलकर उन्हे समझा दीजिये, जिससे वे मेरे महल से चले जावें।

मदनरेखा का कथन सुनकर, मणिरथ की माता, मदनरेखा के साथ मदनरेखा के शयनागार की ओर चली। मार्ग में अनेक प्रकार के विचार हो रहे थे। वह सोचती थी, कि मणिरथ रात के समय मदनरेखा के महल में क्यो आया। क्या वह अपना महल भूल गया और यहाँ चला आया, अथवा उसके हृदय मे दुर्भावना आई इससे आया है। किसी भी कारण आया हो, इस समय मणिरथ का मदनरेखा के महल मे आना, सर्वथा अनुचित है, और इस कारण मदनरेखा मणिरथ के विरुद्ध बोल सकती थी, अथवा शोरगुल करके लोगो को मणिरथ के इस अनुचित कार्य से परिचित

कर सकती थी। लेकिन यह कैसी बुद्धिमती और सुशीला है, कि इसने न तो हल्ला करके कुल की प्रतिष्ठा ही नष्ट की, न मणिरथ के विरुद्ध कुछ कहा ही। वास्तव में, कुलवधू ऐसी ही होनी चाहिए।

इस प्रकार विचारती हुई मणिरथ की माता, मदनरेखा के महल मे आई। उसने देखा, कि मणिरथ वहाँ खड़ा हुआ है, और उसकी दशा अस्तव्यस्त तथा उसकी आँखें विकार भरी हैं। मणिरथ की यह दशा देखकर, उसकी माता को दुःख भी हुआ और आश्चर्य भी। वह अपने मन में कहने लगी, कि मणिरथ यहाँ दुर्भावना से प्रेरित होकर ही आया है, और इस कारण इसने मदनरेखा को प्राप्त करने के लिए सब तरह का प्रयत्न भी किया होगा, लेकिन मदनरेखा कैसी सती है, कि यह मणिरथ के प्रयत्न, जाल मे नहीं फँसी! एक राजा के साथ अपना गुप्त सम्बन्ध जोड़ने का अवसर खोने वाली स्त्री, विरला ही हो सकती है। मदनरेखा के स्थान पर यदि कोई दूसरी स्त्री होती, तो वह अपना सतीत्व अवश्य ही मणिरथ के हाथों सौप देती। परन्तु मदनरेखा को धन्य है, जिसने ऐसे महान् प्रलोभन से भी अपने सतीत्व को अधिक समझा।

मन ही मन, इस प्रकार कहती हुई मणिरथ की माता ने, मणिरथ के सन्मुख जाकर उससे कहा, कि वत्स! तुम यहाँ कैसे आये? क्या मार्ग भूल गये हो? यह युगबाहु का महल है! रात के समय तुम्हारा यहाँ आना अनुचित है, इसलिए अपने महल को जाओ।

माता को सामने देखकर तथा उसका कथन सुनकर, मणिरथ बहुत ही लज्जित हुआ, और 'यह युगबाहु का महल है! मैं भूला!' कहता हुआ, वह वहाँ से चल दिया। मार्ग मे वह सोचता जाता था, कि मदनरेखा रूपवती होने के साथ ही बुद्धिमती भी है। उसने पहले तो मुझे समझाया, लेकिन जब उसका समझाना सफल न हुआ, तब वह माता को बुला लाई। उसने मेरे चंगुल से बचने के लिए यह कैसी सफल युक्ति निकाली! ऐसी सुन्दरी और बुद्धिमती स्त्री को यदि मै प्राप्त न कर सका, अपनी न बना सका, तो मुझे और मेरे राजपाट आदि सब को धिक्कार है! मेरा जीवन व्यर्थ एवं भारभूत है। परन्तु जब तक युगबाहु जीवित है, तब तक मेरे लिए उसका स्वामी बनना असम्भव है। इसलिए कोई ऐसा उपाय करना चाहिए, कि जिससे युगबाहु के जीवन का अन्त हो जावे, और मै मदनरेखा को अपनी पत्नी बनाकर, उसके सहवास से अपना जीवन सफल कर सकूँ।

मणिरथ, इस प्रकार विचारता हुआ अपने महल को चला गया। इधर मणिरथ की माता भी, मदनरेखा की प्रशन्सा करती हुई तथा उसे धैर्य देकर अपने महल को गई। मदनरेखा, स्वयं को विघ्न रहित जानकर, अपने शयनागार मे फिर सो गई।
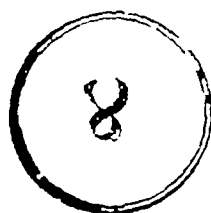
# बन्धु-हत्या

मोहग्रस्त व्यक्ति मे, स्वार्थ-भावना का आधिक्य स्वाभाविक है और जिसमे स्वार्थ-भावना भरी हुई है, वह कर्त्तव्याकर्त्तव्य को भूल जाता है। वह, इस बात को नहीं देखता, कि यह कार्य मेरे करने योग्य है, या नहीं। जिस तरह भी हो, वह अपनी स्वार्थ-भावना पूरी करने और इस ध्येय के मार्ग की बाधाओं का अन्त करने मे ही रहता है। इसके लिए वह, ऐसा कोई कार्य नहीं मानता, जो उसकी दृष्टि मे न करने योग्य हो। उसको यदि धर्म, देश, जाति का नाश करना आवश्यक प्रतीत होता है, तो वह ऐसा करने के लिए भी उद्यत रहता है। इतना ही नहीं, वह अपने पिता, अपने पुत्र, अपनी कन्या, अपने भाई,

अपनी बहन और अपनी माता तक की हत्या कर डालता है, फिर चाहे ये सब उसे कितने भी प्रिय क्यों न रहे हो। ऐसा व्यक्ति, उन सब को अपना घोरातिघोर शत्रु मानता है, जो उसके स्वार्थ में किसी भी रूप से बाधक प्रतीत होते हो। राजा मणिरथ, अपने छोटे भाई युगबाहु पर अत्यधिक स्नेह और विश्वास रखता था। उसने, अपने अथवा अपने पुत्र के अधिकार के राज्य का उत्तराधिकारी भी युगबाहु को ही बनाया था। लेकिन जब से उसने मदनरेखा को देखा, तब से उसके हृदय मे मदनरेखा को अपनी प्रेयसी बनाने की भावना हुई, जब से उसने यह समझा, कि युगबाहु के रहते मदनरेखा मेरी नहीं बन सकती, तब से उसके हृदय मे युगबाहु के प्रति स्नेह नहीं रहा। उसका यह स्नेह सूख गया और उसका स्थान छल, कपट तथा प्रपंच ने ले लिया। इसी से उसने, बहाना निकाल कर युगबाहु को युद्ध में भी भेजा, लेकिन जब युगबाहु की अनुपस्थिति में भी उसका कार्य पूरा नहीं हुआ, मदनरेखा उसके हाथ नहीं आई, तब उसने यही माना, कि जब तक युगबाहु जीवित है, तब तक मदनरेखा मुझे प्राप्त नहीं हो सकती! ऐसा मानने के कारण, वह अपने प्रिय भाई युगबाहु को अपना महान् शत्रु मानने लगा, अपने जीवन को सुखी बनाने के मार्ग का अवरोधक समझने लगा और ऐसा समझने के कारण उसने क्या किया, यह बात इस प्रकरण से प्रकट होगी।

अपने महल मे पहुँच कर, मणिरथ, मदनरेखा को प्राप्त करने का ही उपाय विचारता रहा। उसने सोचा, कि जब तक युगबाहु जीवित है, तब तक मुझे मदनरेखा प्राप्त नहीं हो सकती। क्योंकि, मैंने, युगवाहु को युवराज बना दिया है, इसलिए मदनरेखा को यह आशा है, कि मणिरथ के पश्चात् मेरे पति राजा होंगे और मैं पटरानी होऊँगी। उसने, अपनी यह आशा मेरे सामने प्रकट भी कर दी है। जब तक उसको यह आशा बनी रहेगी, तब तक वह, मुझे आदर न देगी। इसलिए उसकी यह आशा नष्ट कर देनी चाहिए और ऐसा तभी हो सकता है, जब युगबाहु को नष्ट कर दिया जावे। जब युगवाहु न रहेगा, तब मदनरेखा के लिए न तो कोई दूसरा सहारा ही रहेगा, न भविष्य विषयक कोई आशा ही रहेगी। उस दशा में, वह मेरा कहना मानने तथा मेरी बनने के सिवा, और क्या कर सकती है। फिर तो उसके लिए कोई दूसरा मार्ग ही न रहेगा और मैं सहज ही उसको प्राप्त कर सकूँगा।

मणिरथ ने, युगबाहु को मार डालने का निश्चय किया। उधर युगबाहु ने, विना युद्ध किये ही विद्रोहियों को आधीन कर लिया और प्रजा को सन्तुष्ट करके, वह सुदर्शनपुर के लिए लौट पड़ा। युगवाहु सम्बन्धी सब समाचार, मणिरथ को प्राप्त होते ही रहते थे। सब को आधीन करके युगबाहु लौट रहा है, यह समाचार भी मणिरथ को ज्ञात हुआ। उसके हृदय में तो युगबाहु को मार

डालने का निश्चय कर ही लिया था, फिर भी, लोगों में भला बनने और बन्धु-स्नेह का ढोंग दिखाने के लिए, उसने नगर को सजाने की आज्ञा दी और युवराज का स्वागत करने की तय्यारी कराई। जब युगबाहु नगर से कुछ दूर रह गया, तब सभासदों एवं प्रजावर्ग के साथ मणिरथ, युगबाहु का स्वागत करने के लिए गया। ज्येष्ठ भ्राता आये हैं, यह जानकर, युगबाहु, वाहन से उतर कर मणिरथ के समीप आया। उसने, मणिरथ को नम्रता पूर्वक प्रणाम किया। मणिरथ ने, आशीर्वाद देकर उसे छाती से लगाया। दोनों ने, परस्पर कुशल-प्रश्न किये। मणिरथ के साथ आये हुऐ सब लोगों से, युगबाहु यथा योग्य मिला और यह सब हो जाने पर, युगबाहु को लेकर मणिरथ, उत्सव पूर्वक सभा-भवन में आया।

युगबाहु को साथ लेकर मणिरथ, अपने सिंहासन पर बैठा। वह सोच रहा था कि युगबाहु प्रजाप्रिय हो गया है। कुछ दिनों के पश्चात् इसके सामने मुझे कोई पूछेगा भी नहीं। यह, मेरा सब प्रभाव नष्ट कर देगा। इसके सिवाय, युगबाहु के जीवित रहते मुझे मदनरेखा भी प्राप्त नहीं हो सकती। इसलिए, इसको शीघ्रातिशीघ्र नष्ट कर देना ही अच्छा है। परन्तु इस समय तो इससे ऐसा प्रेम बताना चाहिए, कि जिससे इसको मेरे प्रति किसी प्रकार का सन्देह न हो और कदाचित मदनरेखा मेरे विरुद्ध इससे कुछ कहे, तो उसके कथन पर इसको विश्वास ही न हो। यदि मैंने ऐसा न

किया और मदनरेखा से सब बातें जानकर, यह मेरे विरुद्ध हो गया, तो प्रजा इसी का साथ देगी। मैं, इसका कुछ न कर सकूँगा, बल्कि मुझे मदनरेखा भी प्राप्त न होगी, लोगों की दृष्टि में मेरी अप्रतिष्ठा भी हो जावेगी और मुझे राज्य मे भी हाथ धोना पड़ेगा। इसलिए अभी तो मुझे ऐसा प्रयत्न करना चाहिए, कि मदनरेखा इससे मेरे विरुद्ध जो कुछ कहे, उस पर इसको विश्वास ही न हो, या यह मेरे प्रति विद्रोह न करे और यदि विद्रोह करे भी तो जनता इसका साथ न दे।

इस प्रकार विचार कर, मणिरथ हर्ष प्रकट करता हुआ कहने लगा, कि आज का दिन बड़े आनन्द का है, जिस प्राणप्रिय भाई के वियोग से मैं दुःखी हो रहा था, वह प्राणप्रिय भाई मिला, इससे अधिक आनन्द की बात दूसरी क्या हो सकती है। जब से युगबाहु मेरी आँखों से ओट हुआ था, तब से मुझे, खाना-पीना राग-रंग या राज-काज कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। मुझे दिन-रात इन्हीं की चिन्ता बनी रहती थी। मैं इनकी कुशल-कामना ही किया करता था। आज मेरी चिन्ता दूर हुई, इसलिए आज का दिन बहुत ही शुभ है।

सभासदों से इस प्रकार कहकर, मणिरथ, युगबाहु से कहने लगा, कि प्रिय बन्धु! तुमने विद्रोहियो को आधीन कर लिया यह तो मैं सुन ही चुका हूँ, परन्तु तुमने विद्रोहियों को किस प्रकार

आधीन किया और तुम्हे किस किस स्थिति का सामना करना पड़ा, आदि बातो से अपरिचित हूँ। अतः तुम, प्रवास सम्बन्धी सब विवरण सुनाओ। मणिरथ के कथन के उत्तर मे, युगबाहु ने उससे कहा कि पूज्य भ्राताजी! संक्षेप में मेरे प्रवास का विवरण यही है, कि आपकी कृपा से सब कुशल रही, आपके प्रताप से सब विद्रोही शरण आये और बिना युद्ध किये ही आधीन हो गये। मतलब यह कि आपकी कृपा और आपके प्रताप से शत्रु, मित्र सभी प्रसन्न रहे और बिना श्रम या क्षति के आपकी वह चिन्ता मिट गई, जो सीमा के सम्बन्ध मे आपको थी।

इतना कहकर युगबाहु चुप होगया। मणिरथ ने उससे कहा, कि—भाई! तुमने यह बात बहुत थोड़े में कही है और मैं, इस बात को विस्तृत रूप मे सुनना चाहता हूँ। जान पड़ता है, कि तुम्हे अपने प्रवास का पूर्ण वृत्तान्त कहने में संकोच होता है। युगबाहु से यह कह कर, मणिरथ ने एक उस सामन्त से, जो युगबाहु के साथ गया था, कहा कि—युवराज को अपने मुख से अपने पराक्रम का वर्णन करने और विद्रोहियो को किस प्रकार आधीन किया, यह कहने में संकोच हो रहा है। इसलिए तुम, युवराज के पराक्रम एवं इनने किस नीति से काम लिया आदि बातो का, विस्तार से वर्णन करो। मेरा हृदय, इन सब बातों को जानने के लिए बहुत उत्कण्ठित है।

मणिरथ की आज्ञानुसार, सामन्त ने उन सब बातों का वर्णन किया, जो शत्रुओं को आधीन एवं प्रजा को आनन्दित करने म सम्बन्ध रखती थीं। ऐसी सब बातों का वर्णन करके, युगबाहु की प्रशंसा करते हुए उसने कहा, कि—महाराज! युवराज की वाणी में अद्भुत शक्ति है। इनने, विद्रोहियों को प्रजा की रक्षा का उपदेश दिया और प्रजा को राजभक्त रहने, उद्योग करने एवं नीति धर्म का पालन करने का उपदेश दिया। युवराज की वाणी ने सब लोगों पर जादू-सा असर किया। सब लोगों ने, इनका उपदेश शिरोधार्य किया तथा इनके प्रति भक्ति प्रदर्शित की।

सामन्त ने सब बातें विस्तार पूर्वक कहीं। सब बातो को सुनता हुआ मणिरथ, कृत्रिम हर्ष प्रकट करता रहा। सामन्त का कथन समाप्त होने पर, मणिरथ कहने लगा, कि—ये सब बातें सुनकर मेरा हृदय बहुत ही आनन्दित हुआ है। भाई के पराक्रम और नीति कौशल की बातें सुनने से, मुझे बहुत प्रसन्नता हुई है। मुझे विशेष हर्ष तो इस विचार से है, कि मैंने युवराज-पद योग्य को ही दिया है अयोग्य को नहीं दिया है। भाई की रीति-नीति, मुझे बहुत ही पसन्द आई है। प्रजा के प्रति भाई की जो नीति है, उसको दृष्टि मे रखकर, मैं अपने लिए भी यही चाहता हूँ, कि मेरे द्वारा किसी का अहित न हो, मेरे राज्य में कोई दीन दुःखी न रहे और प्रजा-हित के लिए मेरा कोष

सदा ही खुला रहे। इसी तरह, जिस भाई के कार्य सुनकर मुझे प्रसन्नता हो रही है, उस भाई के प्रति मेरे हृदय में सद्भाव ही रहे, दुर्भाव कभी भी न आवे और मैं भाई का हित-चिन्तक ही रहूँ। हे प्रभो! मैं तेरे से यही प्रार्थना करता हूँ, कि मेरे मे सदा सुमति रहे और मेरी भावना सफल हो। मैं मनुष्य हूँ, मनुष्य से त्रुटि होना बहुत सम्भव है। इसलिए मैं तेरे से यही चाहता हूँ, कि मुझसे ऐसी कोई त्रुटि न हो, जो मेरी इस भावना के विरुद्ध या भाई के हृदय को दुःख पहुँचानेवाली हो। मैं, अपने भाई को अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय मानता हूँ। मेरे इस बन्धु-स्नेह में किसी समय अन्तर न आवे, यही मेरी मनोकामना है, जिसका पूर्ण होना तेरी कृपा के आधीन है।

इस प्रकार कह कर, मणिरथ ने युगबाहु की प्रशन्सा की, उसे बहुमूल्य वस्तुएँ पुरस्कार-रूप दीं और उसको अनेकानेक आशीर्वाद देकर सभा-विसर्जन की। सभा विसर्जन करके, मणिरथ अपने महल को गया और युगबाहु अपने महल को। युगबाहु अपने महल में आया। युगबाहु को देखकर, मदनरेखा बहुत आनन्दित हुई। उसने, हर्ष पूर्वक युगबाहु का स्वागत सत्कार किया, उसको कुशल पूछी और उसे स्नान भोजन आदि कराया। पश्चात् उसने, युगबाहु से प्रवास का सब समाचार पूछा, बिना युद्ध किये ही विजय प्राप्त करने के कारण युगबाहु की प्रशंसा की

और अपने विजयी पति का दर्शन हुआ, इसलिए अपने भाग्य की सराहना की। उसने यह सब तो किया, लेकिन मणिरथ का रात के समय महल में आना और स्वयं से प्रेम-भिक्षा करना आदि कोई हाल, उसने युगबाहु से नहीं कहा। इस सम्बन्ध में वह ऐसी चुप रही, कि जैसे कोई घटना हुई ही न हो। वह सोचती थी, कि यदि मैं उस घटना से पति को परिचित करूँगी, तो क्षत्रिय स्वभावानुसार इन्हे क्रोध होगा, ये अपने भाई से अपनी पत्नी के अपमान का बदला लेने को तय्यार होंगे और इस प्रकार, दोनों भाइयों में कलह होगा, जिसका परिणाम न मालूम क्या और कैसा भयङ्कर होगा। इसलिए उस घटना के विषय मे, पति से कुछ न कहना ही अच्छा है। मदनरेखा को मणिरथ का वह कथन भी ज्ञात हो गया था, जो उसने, युगबाहु के विषय मे उसी दिन सभा मे कहा था। इस कारण उसको यह विचार भी हुआ, कि सम्भवतः जेठ के मन में उसी समय दुर्भावना आई थी, अब उनके हृदय से वह दुर्भावना निकल गई है। ऐसी दशा मे, अब उस प्रकरण को छेड कर, आग लगाने से क्या लाभ! इस प्रकार के विचारों से, वह मणिरथ के अनुचित व्यवहार की घटना को बिलकुल ही पी गई। युगबाहु के सामने उसका नाम भी नहीं लिया। उसको यह अभिमान भी नहीं हुआ, कि मैं कैसी सती हूँ, कि जेठ ने इतना प्रलोभन दिया, फिर भी नहीं ललचाई। वह तो यही सोचती थी,

कि मैं पति के प्रताप से ही सतीत्व की रक्षा कर सकी हूँ, इसलिए इसमें मेरे को अभिमान अहङ्कार क्यों हो। केसरी सिंह की मूँछ के बाल या विषधर सर्प की मणि कोई नहीं ले सकता, तो इसमें मूँछ या मणि के लिए अहङ्कार करने योग्य कौनसी बात है। यह तो, उनके स्वामी का ही प्रताप है। इसी प्रकार, मैं जेठ द्वारा दिये गये प्रलोभन में नहीं फँसी, या उनके हाथ नहीं आई, यह सब स्वामी का ही प्रताप है। इसके लिए, मुझे किसी प्रकार का अभिमान अहङ्कार न करना चाहिए।

मदनरेखा और युगबाहु, आनंद से रहने लगे। पत्नी-धर्म का पालन करने के लिए मदनरेखा, एक पतिव्रता स्त्री की भाँति, पति की बराबर सेवा सुश्रुषा करती और चन्द्रयश एवं गर्भ के बालक का पालन करके, मातृधर्म की भी रक्षा करती थी। इसी प्रकार युगबाहु भी, सदाचार पूर्वक, अपनी गर्भवती पत्नी को सदा प्रसन्न रखता। मतलब यह, कि पति पत्नी आनंद से प्रेम पूर्वक रहते थे और आमोद प्रमोद तथा धर्म कथा के कथन श्रवण में, सुख पूर्वक दिन व्यतीत करते थे।

कुछ दिनों के बाद, वसन्त ऋतु का आगमन हुआ। युगबाहु ने विचार किया, कि ऋतुराज वसन्त के आने से सारा वन रम्य हो गया है, वृक्षों में नूतन पत्र आगये हैं और पवन भी शीतल मन्द तथा स्वास्थ्य वर्द्धक चल रहा है। इस ऋतु में, वन

का निवास बहुत आनंद देनेवाला एवं लाभकारी होता है। इसलिए यदि मदनरेखा स्वीकार करे, तो उसको साथ लेकर, कुछ दिन वन में निवास करूँ। इस समय मदनरेखा, गर्भवती है। वन के स्वच्छ पवन से, उसके गर्भ के बालक को भी लाभ होगा और उसका भी चित आनन्दित रहेगा। स्त्रियों को, खुली हवा में जाने का अवसर कम ही मिला करता है। इस वसन्त ऋतु में भी पत्नी को खुली हवा में न ले जाना और वन-विहार न कराना, अनुचित है।

युगबाहु ने अपना यह विचार मदनरेखा से कहा और उससे पूछा कि—इस सम्बन्ध में तुम्हारी क्या सम्मति है? मदनरेखा ने उत्तर दिया, कि—नाथ! आप ऐसे श्रेष्ठ पुरुषों के हृदय में ऐसा विचार कदापि नहीं हो सकता, जो लाभकारी न हो, या किसी के लिए अरुचिकर हो। भला आप ही बताइये, कि वसन्त ऋतु में वन-निवास किसे अच्छा न लगेगा? नवपल्लवित वृक्षों का देखना, कोयल का मधुर कुहू-कुहू शब्द सुनना और शीतल मन्द सुगन्धयुक्त पवन, किसको बुरा लगेगा? वसन्त ऋतु में, वन का निवास वैसे भी सुखकारी होता है तब आपके साथ होने के कारण तो, मेरे लिए वन का निवास और भी, अधिक सुखप्रद होगा। मैं, आपकी आज्ञा के आधीन हूँ, आपकी प्रसन्नता में प्रसन्नता मानना मेरा कर्त्तव्य है, फिर भी आप, मुझ से इस तरह के

सुखप्रद कार्य के विषय में सम्मति लेते हैं, यह आपकी कृपा है।

सुदर्शनपुर के सब लोग, वसन्त ऋतु में किसी नियत दिन वसन्तोत्सव मनाया करते थे, और इसके लिए, नगर के बाहर वन-उपवन में जाया करते थे। सदा की भाँति वसन्तोत्सव मनाने के लिए, सब लोग नगर के बाहर गये। मणिरथ भी, नगर के बाहर गया और मदनरेखा सहित युगबाहु भी गया। युगबाहु ने अपने निवास आदि का सब प्रबन्ध पहले से ही कर रखा था। दिन भर वसन्तोत्सव मना कर, सन्ध्या के समय मणिरथ आदि सब लोग अपने अपने घर चले गये, परन्तु मदनरेखा सहित युगबाहु ने वन में ही निवास किया। युगबाहु ने अपने निवासस्थल में सब आवश्यक सामग्रियों का प्रबन्ध करा दिया था, और निवासस्थल के आस पास, विश्वस्त रक्षक भी नियत कर दिये थे।

इधर वन मे युगबाहु और मदनरेखा तो आमोद-प्रमोद तथा धर्म-चर्चा में समय व्यतीत कर रहे थे और उधर मणिरथ, कुछ दूसरा ही विचार कर रहा था। वह, मदनरेखा पर पूरी तरह आसक्त होगया था, तथा जिस तरह भी हो सके उस तरह मदनरेखा को प्राप्त करने की चिन्ता में रहता था। मदनरेखा की प्राप्ति के मार्ग मे, वह युगबाहु को बाधक समझता था, इसलिए उसने अपने छोटे भाई युगबाहु की हत्या कर डालने तक का निश्चय

कर डाला था। वसन्तोत्सव के दिन, सन्ध्या के समय जब उसको यह ज्ञात हुआ, कि मदनरेखा सहित युगबाहु वन में ही ठहरा हुआ है और रात को भी वहीं रहेगा, तब वह बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने सोचा, कि आज युगबाहु की हत्या करने के लिए उपयुक्त अवसर है। युगबाहु, कुछ रक्षकों के भरोसे पर ही वन में रहा है। युगबाहु या उसके रक्षक लोग, मेरी शक्ति और वीरता के सामने कुछ नहीं हैं। मैं युगबाहु तथा उसके रक्षकों को सहज ही मार सकता हूँ और अपना मार्ग निर्विघ्न करके, मदनरेखा को प्राप्त कर सकता हूँ। मुझे, आज का अवसर न खोना चाहिए, किन्तु रात में ही युगबाहु को मार कर अपना कार्य साध लेना चाहिए। मुझे यह मानना चाहिए कि मेरे सद्भाग्य से ही, आज युगबाहु वन में रहा है।

युगबाहु की हत्या करने का निश्चय करके, मणिरथ ने कुछ रात जाने देकर अपना घोड़ा मँगवाया। घोड़ा आजाने पर, वह एक विष बुझी खुली तलवार हाथ मे ले, घोड़े पर बैठकर वन में उस स्थान के लिए रवाना हुआ, जहाँ युगबाहु और मदनरेखा ने निवास किया था। मार्ग में, उसके हृदय मे अनेक रौद्र भावनाएँ होती जा रही थीं। वह, भविष्य-विषयक अनेक कल्पनाएँ करता जा रहा था। घोडे को दौड़ाता हुआ मणिरथ, थोड़े ही समय में युगबाहु के निवास-स्थान के समीप जा पहुँचा। उसका विचार तो

यह था, कि मैं युगबाहु को खबर न होने देकर सीधा उसके पास पहुँच जाऊँ और इसके लिए उसने प्रयत्न भी किया, लेकिन युगबाहु के पहरेदारों की चपल दृष्टि से वह न बच सका। पहरेदारों ने मणिरथ को भीतर जाने से रोक दिया। मणिरथ पहरेदारों से कहने लगा, कि—तुम लोग जानते नहीं हो, कि मैं कौन हूँ! मैं, तुम्हारे स्वामी युगबाहु का बड़ा भाई महाराजा मणिरथ हूँ। मुझे, सब जगह जाने का अधिकार है। इसलिए मुझे जाने दो! रोको मत। अन्यथा तुम्हे इसका दण्ड भोगना पड़ेगा। जान पड़ता है, कि तुम जैसे धूर्त्तों के कहने में लगकर ही, युगबाहु रात के समय यहाँ रहा है। राज-परिवार के लोगों का और विशेषतः युवराज का, रात के समय वन मे रहना क्या उचित है? मैं, युगबाहु को नगर मे ले जाने के लिए ही आया हूँ, इसलिए मुझे भीतर जाने दो।

पहरेदारों से इस प्रकार कहकर, मणिरथ ने अपना घोड़ा आगे बढ़ाना चाहा, लेकिन पहरेदारों ने मणिरथ को ऐसा न करने दिया। उनने मणिरथ से कहा, कि आप कोई भी हों, और किसी भी कार्य से आये हो, हम इस समय आपको भीतर नहीं जाने दे सकते। युवराज के विषय मे, आप किसी तरह की चिन्ता न कीजिये। जब तक हम लोगों के प्राण हैं, तब तक युवराज का कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। इसके सिवाय स्वयं युवराज भी वीर, साहसी

और पराक्रमी हैं। ऐसी दशा मे, उनके सम्बन्ध में किसी तरह की चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है। यहाँ तो युवराज के लिए आपको ऐसी चिन्ता हुई, परन्तु युवराज जब सीमा का प्रबन्ध करने गये थे और शत्रुओं के मध्य में थे, उस समय आप कहाँ थे, उस समय, युवराज के रक्षक हम ही लोग थे, या कोई दूसरा था? फिर आज युवराज के सम्बन्ध में चिन्ता क्यो ?

पहरेदारो का कथन सुनकर मणिरथ समझ गया, कि पहरेवाले, मेरी बातों से प्रभावित होकर मुझे भीतर न जाने देंगे। इसलिए उसने, युगबाहु के पास पहुँचने के लिए दूसरा उपाय निकाला। उसने पहरेदारों से कहा कि तुम लोग मेरे साथ इतनी बातें करते हो तो इस सम्बन्ध में युगबाहु से ही क्यो नहीं पुछवा लेते। तुम लोगों में से कोई एक आदमी, युवराज के पास चला जावे और उससे कहे, कि तुम्हारा बड़ा भाई एक आवश्यक कार्य के लिए तुम से मिलने आया है, अतः उसको तुम्हारे पास आने दिया जावे, या नहीं ? इस तरह कहने पर, यदि युगबाहु कहे, कि न आने दिया जावे, तो मैं वापिस लौट जाऊँगा और यदि कहे, कि आने दिया जावे, तो उस दशा में कोई प्रश्न ही शेष न रहेगा। इसलिए किसी आदमी को भेज कर, युगबाहु से निर्णय करा लो।

मणिरथ का यह कथन, पहरेदारो ने ठीक माना। मणिरथ का कथन स्वीकार करके, पहरेदारो ने एक आदमी को युगबाहु

के पास भेजा। उस आदमी ने युगबाहु के पास जाकर अभिवादन पूर्वक उससे कहा, कि आपके बड़े भाई महाराजा मणिरथ, घोड़े पर बैठकर अकेले ही आये हुए हैं और किसी आवश्यक कार्य से आपके पास आना चाहते हैं। आप इस सम्बन्ध में पहरेदारों को क्या आज्ञा देते हैं? उनको भीतर आपके पास आने दिया जावे या नहीं?

आदमी के इस कथन को, मदनरेखा ने भी सुना। वह, मणिरथ का आना सुन कर सहम उठी और अपने मन में कहने लगी, कि इस असमय मे जेठ का आना, भय की आशङ्का उत्पन्न करता है। जान पड़ता है, कि मेरे लिए उनकी दृष्टि में जो विचार आया था, वह मिटा नहीं है, किन्तु उस विचार से प्रेरित होकर, वे कोई अनर्थ करने के लिए उतारू हुए हैं। मुझे, पति को सावधान कर देना चाहिए, जिसमें ये इस समय जेठ से न मिलें।

इस तरह सोच कर मदनरेखा ने युगबाहु से कहा, कि नाथ! आपके भाई इतनी रात को पधारे हैं, इससे उनकी ओर से मुझे किसी अनर्थ की आशङ्का होती है। राजा लोगों का रात के समय इस प्रकार आना, मर्यादा-विरुद्ध है। इसलिए मैं आपसे नम्रता पूर्वक यह निवेदन करती हूँ, कि आप अपने भाई को इस समय यहां न बुलाइये, न उनसे मिलिये ही। मुझे जान पड़ता है, कि वे किसी दुर्भावना से ही यहाँ आये हैं।

मदनरेखा का यह कथन सुनकर, युगबाहु ने मदनरेखा से कहा, कि मदनरेखा! तुम बुद्धिमती हो, परन्तु आखिर तो स्त्री ही हो न! इसलिए तुम में, स्त्री-स्वभाव का आजाना स्वाभाविक है। स्त्रियों में, दूसरे के प्रति सन्देह भी अधिक होता है और दूसरे से भय भी होता है। सन्देह और भय के कारण वे विवेक शून्य होकर मर्यादा का उल्लंघन कर डालती हैं और दूसरे को भी, ऐसी ही सम्मति देती हैं। इसी के अनुसार, तुम भी केवल व्यर्थ के सन्देह और भय से, मुझे अपने बड़े भाई का अविनय करने एवं उनसे न मिलने का कह रही हो। भला बताओ तो सही, कि जिन भाई ने, अपने पुत्र के अधिकार के राज्य का उत्तराधिकारी मुझे बना दिया है और जिनका मेरे प्रति अत्यन्त स्नेह है, उन भाई के प्रति इस प्रकार के सन्देह का क्या कारण है? आज तुम्हारी बुद्धि में कोई विकृति तो नहीं आगई है?

युगबाहु के कथन के उत्तर मे मदनरेखा ने कहा, कि—स्वामिन्! मैंने आपसे जो निवेदन किया है, या आपके भाई के प्रति मुझे जो सन्देह और आशङ्का है, वह निष्कारण नहीं है। आपके भाई के हृदय में आपके प्रति वैसा ही स्नेह था, जैसा कि आप कहते हैं, परन्तु अब वह स्नेह नहीं रहा है, किन्तु उसका स्थान द्रोह ने ले लिया है और इसका कारण मैं ही हूँ। मैंने, कलह उत्पन्न न हो

इस विचार से जो घटना छिपाकर रखी थी, आपसे प्रकट नहीं की थी, वह मैं आपको सुनाती हूँ; जिसे सुनकर आप मेरा सन्देह और भय निष्कारण न मानेंगे। मैं, इस समय भी उस घटना से आपको परिचित न करना अनुचित एवं हानिप्रद मानती हूँ, इसलिए मैं आपको वह घटना सुनाती हूँ।

यह कहकर मदनरेखा ने, युगबाहु को वे सब बातें सुनाईं, जो युगबाहु की अनुपस्थिति मे मणिरथ की ओर से हुई थीं। सब बातें सुनाकर मदनरेखा ने कहा, कि—इस प्रकार अब आपके प्रति आपके भाई का हृदय पहले वाला नहीं रहा है, किन्तु मेरे कारण उनमें बहुत दुर्भाव आगया है। आप दोनों भाइयों के बीच जो प्रेम था, वह मेरे कारण नष्ट हो गया है। आपके भाई के हृदय की स्नेह-बेल सुखाने के लिए, मैं तुषार हो गई हूँ। इसलिए मैं आपसे यही निवेदन करती हूँ कि आप इस अवसर को टाल दीजिये, अपने भाई से मत मिलिये।

मदनरेखा द्वारा कही गई बातें सुनकर, युगबाहु की आँखें लाल हो गईं। वह कहने लगा, कि—भाई ऐसा कुटिल और पापी है। तुमने यह घटना मुझ से अब तक क्यों नहीं कही थी। यदि यह हाल मुझे पहले ज्ञात हुआ होता, तो मैं, तुम्हारे साथ अशिष्ट व्यवहार करने का बदला अपने भाई से कभी का ले चुका होता और उसे यह बता देता, कि युगबाहु वीर है, कायर

नहीं है, जो अपनी पत्नी का अपमान चुपचाप सहन कर ले। परन्तु तुमने जो घटना कही है, उसमें और मैं सीमा पर से लौट कर आया उस दिन भाई ने जो उद्गार प्रगट किये उसमें, बहुत ही विरोध है। उस दिन, सभा मे भाई ने मेरे लिए जो कुछ कहा था, उस कथन पर, आज मैं तुमसे सब घटना सुनकर विचार करता हूँ, तो मुझे यही मालूम होता है, कि जैसे भाई ने अपने कार्य के विषय में पश्चाताप किया हो और भविष्य में ऐसा कोई कार्य न करने की प्रतिज्ञा की हो। इस प्रकार, भाई के उस दिन के कथन से यही जाना जाता है, कि भाई में उस समय दुर्भावना आई थी, परन्तु अब उनमें दुर्भावना नहीं रही है। मनुष्य मे, ऐसी भूल हो जाया करती है। पश्चात्ताप करने के पश्चात् भी, वैसी भूल को लेकर हृदय मे वैरभाव रखना अनुचित है। इस लिए अब उस घटना का स्मरण भी न करना चाहिए, न उसके कारण भाई पर सन्देह ही रखना चाहिए। थोड़ी देर को मान भी लें, कि भाई किसी दुर्भावना से ही आये हैं, तब भी, मैं कायर नहीं हूँ, न भाई से कुछ कम बलवान हूँ। यदि भाई ने किसी दुर्भावना का परिचय दिया, तो उन्हे उसका फल भी वैसा ही भोगना पड़ेगा! इसलिए मैं, भाई से इस समय मिलना, किसी भी प्रकार आपत्तिजनक नहीं मानता।

मदनरेखा ने, रात के समय मणिरथ से न मिलने के लिए,

युगबाहु को बहुत समझाया, उससे बहुत अनुनय-विनय की, परन्तु युगबाहु ने मदनरेखा की बात नहीं मानी। वह मदनरेखा को स्त्री-स्वभावानुसार कायर-हृदय ही मानता रहा और इसलिए उसने पहरेदारों द्वारा भेजे गये भृत्य से यही कहा, कि भाई को सम्मानपूर्वक लिवा लाओ। मदनरेखा ने जब देखा, कि पति किसी भी तरह नहीं मानते हैं और इनने अपने भाई को यहाँ आने देने की स्वीकृति दे दी है, तब वह, भीतर ओट में हो गई। युगबाहु ने, मणिरथ के सत्कार आदि का उचित प्रबन्ध किया और वह उसकी प्रतीक्षा करने लगा।

पहरेदारों द्वारा भेजे गये आदमी ने पहरेदारों के पास लौट कर, उन्हें युगबाहु की आज्ञा सुनाई। युगबाहु की आज्ञा जानकर पहरेदारों ने मणिरथ से कहा कि युवराज की स्वीकृति आगई है, इसलिए अब आप युवराज के पास पधारिये। यह आदमी, आपको युवराज के पास पहुँचा देगा। हम लोगों ने आपको रोका, यह हमारा अपराध है; जिसे क्षमा करने के लिए हम आपसे प्रार्थना करते हैं। पहरेदारों का कथन सुनकर, मणिरथ बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने पहरेदारों से कहा, कि तुम लोगों ने मुझे रोककर अपने कर्त्तव्य का ही पालन किया है, कोई अपराध नहीं किया है। इसलिए इस सम्बन्ध में, तुम्हें खेद करने या क्षमा माँगने की आवश्यकता नहीं है। बल्कि, एक तरह से

तुमने मुझे रोककर अच्छा ही किया। तुम लोगों ने मुझे रोका, इससे तुम्हे यह तो ज्ञात हो गया, कि हम दोनों भाइयों में कैसा प्रेम है।

यह कहते हुए मणिरथ ने, अपना घोड़ा आगे बढ़ाया। उसके आगे-आगे, युगबाहु का एक सेवक था। अपने निवास-स्थान के द्वार पर युगबाहु, मणिरथ की प्रतीक्षा में खड़ा हुआ ही था। द्वार पर पहुँच कर, मणिरथ घोड़े पर से उतर पड़ा। उस समय भी, वह अपने हाथ में नङ्गी तलवार लिये हुए था। युगबाहु ने, मणिरथ का उचित अभिवादन तथा स्वागत किया और आदरपूर्वक भीतर लेजाकर, उच्चासन पर बैठाया। कुछ देर के पश्चात्, युगबाहु ने मणिरथ से कहा, कि आपने इस समय आने का कष्ट कैसे किया? मेरे योग्य क्या सेवा है, आज्ञा कीजिये। युगबाहु के प्रश्न के उत्तर में मणिरथ ने कहा, कि—भाई! मैं जिस उद्देश्य से आया हूँ, वह उद्देश्य कहना ही चाहता था, इतने में तुमने ही प्रश्न कर डाला। मैं इस समय यहाँ क्यों आया हूँ यह सुनो। तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो। मैं तुम्हे अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय एवं रक्षणीय समझता हूँ। मैंने जब यह सुना, कि आज तुमने वन निवास किया है तब मुझे बहुत ही आश्चर्य हुआ और चिन्ता भी हुई। मुझे यह विचार हुआ, कि रात के समय वन में रहकर, भाई ने बड़ी गलती की है। तुम इस राज्य के उत्तराधिकारी युवराज

हो। अनेक लोग तुम से द्रोह रखते हैं तथा वे लोग तो तुम्हारे प्रति विशेष शत्रुता रखते होंगे, जिनको तुमने अभी कुछ दिनों पहले ही आधीन किया है। क्षत्रिय लोग दूसरे की अधीनता तभी स्वीकार करते हैं जब बिलकुल विवश हो जाते हैं तथा कोई दूसरा मार्ग शेष नहीं रहता। आधीन होकर भी, क्षत्रिय लोग ऊपर से चाह जैसा नम्रतापूर्ण व्यवहार करें, लेकिन हृदय मे तो आधीन करने वाले के प्रति वर ही रखते हैं और ऐसे व्यक्ति को नष्ट करके, पुन. स्वतन्त्र होने का ही उपाय सोचते एवं करते रहते हैं। जिन आततायियों को तुमने आधीन किया है, उनके हृदय मे, वैर की ज्वाला जलती ही होगी। वे इस प्रयत्न में ही होंगे, कि कोई ऐसा अवसर मिले, जब बदला लिया जासके। ऐसे लोगों को यदि यह पता लग जावे, कि युवराज वन मे ठहरे हुए हैं, तो क्या वे इस अवसर का उपयोग न करेंगे? मेरे हृदय में इस तरह का विचार होने से ही मैं इस समय तुम्हारे पास आया हूँ और तुम से कहता हूँ, कि रात के समय इस प्रकार वन मे रहना ठीक नहीं है। राजाओ या राज सम्बन्धियों को युद्ध के अवसर के सिवा शेष समय मे रात को किले से बाहर न रहना चाहिए। दुर्ग इसी उद्देश्य से होते हैं, कि कदाचित कोई शत्रु अनायास चढ़ाई कर आवे, तो वह सहसा किले के भीतर न घुस सके। तुम्हारे रहने के लिए दुर्ग विद्यमान है, फिर

तुम इस अरक्षित स्थान पर क्यों रहो। इस प्रकार मैं तुम्हारी कुशल के लिए ही रात के समय आया हूँ और घर से निकलते ही मैंने अपनी यह तलवार म्यान से बाहर निकाल कर हाथ में करली है कि कहीं कोई शत्रु न मिल जावे।

मणिरथ की आकृति देखकर और उसका कथन सुनकर, युगबाहु समझ गया, कि मदनरेखा का कथन ठीक निकला तथा अब भाई मे मेरे प्रति स्नेह नहीं है, किन्तु वैर है। यह ऊपर से तो ऐसा कहता है, परन्तु इसकी भावना कुछ दूसरी ही जान पड़ती है। कुछ भी हो मै इसके कथन का उत्तर थोड़े मे ही दिये देता हूँ और इसको यह बताये देता हूँ, कि युगबाहु तुम्हारी दुर्भावना से अपरिचित नहीं है, न असावधान ही है।

इस तरह सोचकर युगबाहु ने मणिरथ से कहा, कि—भाई, यदि अपनी रक्षा दुर्ग ही कर सकता है, दुर्ग से बाहर रक्षा नहीं हो सकती, तो फिर आप रात के समय दुर्ग त्याग कर यहाँ क्यों आये हैं? युगबाहु के इस कथन के उत्तर में मणिरथ ने कहा, कि मैं वयस्क हूँ, अनुभवी हूँ, मुझे सब बातें तथा अपनी रक्षा के उपाय मालूम हैं। साथ ही तुम्हारी अपेक्षा मेरे मे बल भी अधिक है और साहस भी। तुम अभी अल्पवयस्क हो, मेरी तरह का अनुभव भी तुम्हे नहीं है, न तुम्हे कभी विषम स्थिति का सामना हो

करना पडा है। इसलिए मुझ को मेरी चिन्ता नहीं है, लेकिन तुम्हारे विषय मे चिन्ता होना स्वाभाविक है।

युगबाहु ने उत्तर दिया, कि भाई! आप भूल रहे हैं। आप बलवान और साहसी हैं, तो क्या मैं बलहीन या कायर हूँ? क्या मैं आपका भाई नहीं हूँ? मैं युवक हूँ, मुझ मे बल साहस तथा उत्साह की कमी नहीं है, न मैं किसी तरह का भय ही करता हूँ। ऐसी दशा मे, आपको मेरे लिए चिन्ता करना अनावश्यक है। आप मेरे लिए कोई चिन्ता या भय न रखिये, किन्तु अपने महल को पधारिये।

युगबाहु का उत्तर, कुछ रूखापन लिये हुए था और मणिरथ का कथन वास्तविकता के विरुद्ध था। इस कारण युगबाहु के कथन के उत्तर मे, अधिक कुछ कहने के लिए मणिरथ का साहस न हुआ। इसके सिवा, मणिरथ ने यह भी सोचा होगा, कि मुझे वाद-विवाद करने से क्या लाभ! मुझ को तो, अपना कार्य करना है। इन कारणों मे उसने, युगबाहु से यही कहा, कि अच्छा भाई तुम्हारे लिए चिन्ता करके मैंने गल्ती की है, इसलिए मैं वापस लौट जाता हूँ। परन्तु थोड़ा पानी तो पिला दो! मैं चिन्तित हृदय से घोड़े को दौड़ाता हुआ आया हूँ, इसलिए मुझे प्यास लगी है।

मणिरथ का कथन सुनकर युगबाहु ने सोचा, कि कुछ भी हो,

तुम इस अरक्षित स्थान पर क्यों रहो। इस प्रकार मैं तुम्हारी कुशल के लिए ही रात के समय आया हूँ और घर से निकलते ही मैंने अपनी यह तलवार म्यान से बाहर निकाल कर हाथ में करली है कि कहीं कोई शत्रु न मिल जावे!

मणिरथ की आकृति देखकर और उसका कथन सुनकर, युगबाहु समझ गया, कि मदनरेखा का कथन ठीक निकला तथा अब भाई मे मेरे प्रति स्नेह नहीं है, किन्तु वैर है। यह ऊपर से तो ऐसा कहता है, परन्तु इसकी भावना कुछ दूसरी ही जान पड़ती है। कुछ भी हो मै इसके कथन का उत्तर थोड़े मे ही दिये देता हूँ और इसको यह बताये देता हूँ, कि युगबाहु तुम्हारी दुर्भावना से अपरिचित नहीं है, न असावधान ही है।

इस तरह सोचकर युगबाहु ने मणिरथ से कहा, कि—भाई, यदि अपनी रक्षा दुर्ग ही कर सकता है, दुर्ग से बाहर रक्षा नहीं हो सकती, तो फिर आप रात के समय दुर्ग त्याग कर यहाँ क्यों आये हैं? युगबाहु के इस कथन के उत्तर में मणिरथ ने कहा, कि मैं वयस्क हूँ, अनुभवी हूँ, मुझे सब बातें तथा अपनी रक्षा के उपाय मालूम हैं। साथ ही तुम्हारी अपेक्षा मेरे मे बल भी अधिक है और साहस भी। तुम अभी अल्पवयस्क हो, मेरी तरह का अनुभव भी तुम्हे नहीं है, न तुम्हे कभी विषम स्थिति का सामना हो

करना पड़ा है। इसलिए मुझ को मेरी चिन्ता नहीं है, लेकिन तुम्हारे विषय मे चिन्ता होना स्वाभाविक है।

युगबाहु ने उत्तर दिया, कि भाई! आप भूल रहे हैं। आप बलवान और साहसी हैं, तो क्या मैं बलहीन या कायर हूँ? क्या मैं आपका भाई नहीं हूँ? मैं युवक हूँ, मुझ मे बल साहस तथा उत्साह की कमी नहीं है, न मैं किसी तरह का भय ही करता हूँ। ऐसी दशा में, आपको मेरे लिए चिन्ता करना अनावश्यक है। आप मेरे लिए कोई चिन्ता या भय न रखिये, किन्तु अपने महल को पधारिये।

युगबाहु का उत्तर, कुछ रूखापन लिये हुए था और मणिरथ का कथन वास्तविकता के विरुद्ध था। इस कारण युगबाहु के कथन के उत्तर में, अधिक कुछ कहने के लिए मणिरथ का साहस न हुआ। इसके सिवा, मणिरथ ने यह भी सोचा होगा, कि मुझे वाद-विवाद करने से क्या लाभ! मुझ को तो, अपना कार्य करना है। इन कारणों से उसने, युगबाहु से यही कहा, कि अच्छा भाई तुम्हारे लिए चिन्ता करके मैंने गल्ती की है, इसलिए मैं वापस लौट जाता हूँ। परन्तु थोड़ा पानी तो पिला दो! मैं चिन्तित हृदय से घोड़े को दौड़ाता हुआ आया हूँ, इसलिए मुझे प्यास लगी है।

मणिरथ का कथन सुनकर युगबाहु ने सोचा, कि कुछ भी हो,

लेकिन जब भाई पानी माँगते हैं, तब इन्हे पानी तो पिलाना ही चाहिए। मदनरेखा ने मुझ से जो कुछ कहा था, उसकी सत्यता स्पष्ट हो गई है, फिर भी जो प्यास बुझाने के लिए पानी मांगता है, उसको पानी तो देना ही चाहिए, चाहे वह कैसा भी शत्रु क्यों न हो।

युगबाहु को मणिरथ की ओर से यह आशङ्का न थी कि भाई इसी समय मुझ पर आक्रमण कर देगा, या मेरे प्राण नष्ट करने का साहस कर डालेगा। इसलिए वह निशंक भाव से मणिरथ को पानी देने के लिए उठा; लेकिन वह झारी से ग्लास मे पानी डालने के लिए जैसे ही झुका, वैसे ही मणिरथ ने उसके मस्तक पर तलवार का वार कर दिया। मणिरथ की तलवार पड़ते ही, युगबाहु के सिर मे बड़ा भारी घाव हो गया, जिससे रक्त बहने लगा। साथ ही मणिरथ की तलवार की धार विष से बुझाई हुई थी, इसलिए तलवार का विष भी युगबाहु के शरीर में फैल गया। युगबाहु आहत होकर यह कहता हुआ पृथ्वी पर गिर पडा, कि अरे दुष्ट! तूने अपने छोटे भाई के साथ ऐसा विश्वासघात किया। युगबाहु को आहत और पृथ्वी पर गिरा देखकर मणिरथ हाथ मे रक्त-भरी तलवार लिये हुए, घोड़े पर बैठकर भाग चला। युगबाहु के गिरते और मणिरथ के भागते ही, सारे निवासालय में हाहाकार मच गया। गबाहु के विश्वस्त सेवकों को जैसे ही यह ज्ञात हुआ, कि युगबाहु

को आहत करके मणिरथ भागा जा रहा है, वैसे ही वे, मणिरथ के पीछे पकडो–पकड़ो करते हुए दौड़ पड़े। उन लोगों की पुकार सुनकर, पहरेदारो ने भागते हुए मणिरथ को रोक दिया। युगबाहु के शरीर-रक्षकों एवं पहरेदारो ने मणिरथ को चारों ओर से घेर लिया। वे मणिरथ से कहने लगे, कि तुम अपने बन्धु और हमारे स्वामी की हत्या का फल भोगने के लिए तय्यार हो जाओ। इस प्रकार, निवास-स्थल और उसके बाहर बड़ा कोलाहल होने लगा।

# धर्म-सहाय्य

संसार में स्त्रियों के लिए प्रायः यही माना जाता है, कि स्त्रियाँ संसार-वृद्धि का कारण और परलोक-साधन में बाधक हैं। वे अपना ही स्वार्थ देखती हैं, अपने स्वार्थ के लिए ही पति से प्रेम करती हैं और अपना स्वार्थ छूटने के कारण ही, पति के लिए दुःख करती हैं। वे पति का इहलौकिक हित एवं सेवा भी अपने स्वार्थ के लिए ही करती हैं। जिस पति से उनके स्वार्थ की पूर्त्ति नहीं होती, उस पति का वे आदर भी नहीं करतीं, उसके प्रति प्रेम भी नहीं करतीं, उसका हित करना तो दूर रहा, उसकी कुशल भी नहीं चाहतीं तथा अवसर पाकर ऐसे पति को उसी प्रकार त्याग देती हैं, जिस प्रकार फल विहीन वृक्ष को पक्षी एवं शुष्क वन को मृग त्याग देते हैं। इस

मान्यता के कारण ही, ग्रन्थों एवं किंवदन्तियों के आधार पर स्त्रियों की निन्दा की जाती है। लेकिन एकान्त रूप से स्त्री-मात्र को ऐसा मान बैठना, नितान्त भूल है। वास्तव में, जैसे सभी पुरुष अच्छे नहीं होते, उसी प्रकार सभी स्त्रियाँ भी बुरी नहीं होतीं। इस बात को दृष्टि में रखकर ही, शास्त्रों में स्त्रियो की एकान्त रूप से निन्दा नहीं की गई है, किन्तु कहीं २ किसी अपेक्षा से स्त्रियों की निन्दा की गई है, तो कहीं किसी अपेक्षा से स्त्रियों की प्रशंसा भी की गई है। सभी स्त्रियाँ ऐसी स्वार्थिनी होती भी नहीं हैं, जो अपने पति का इहलौकिक या पारलौकिक हित न चाहे। इसके लिए, राजा इक्षुकार की रानी कमलावती का उदाहरण देना ही पर्याप्त होगा। रानी कमलावती को अपने पति की ओर से किसी प्रकार के सांसारिक सुख की कमी न थी। उसके सभी इहलौकिक स्वार्थों की पूर्त्ति, उसके पति द्वारा होती थी। फिर भी उसने, अपने पति के पारलौकिक हिताहित को दृष्टि में रखकर अपने स्वार्थ की भी उपेक्षा करके अपने पति से यह स्पष्ट कह दिया, कि पुरोहित द्वारा परित्यक्त सम्पत्ति न अपनाइये। दूसरे द्वारा त्यागी गई वस्तु को अपनाना कौए या कुत्ते का काम है। यह कहने के साथ ही, उसने पति को और भी उचित उपदेश दिया था तथा यह सब अपने पति के पारलौकिक हित के लिए ही किया था। ऐसा करने में, उसे अपने स्वार्थ का भी त्याग तो करना ही पड़ा था। कमलावती की

ही तरह, दूसरी भी अनेक स्त्रियाँ ऐसी हुई हैं, जिनने अपने पति के हित के लिए अपने स्वार्थ का त्याग किया। मदनरेखा भी, ऐसी स्त्रियों में से ही एक थी। युगबाहु के मारे जाने पर वह अपने स्वार्थ की चिन्ता कर सकती थी, स्वार्थ छूटने मे रो सकती थी, पति के हिताहित की उपेक्षा कर सकती थी, लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। उसने, उस संकटकाल मे भी, अपने पति के पारलौकिक हिताहित का ही ध्यान रखा। इसके लिए उसने क्या किया, पति का परलोक किस प्रकार सुधारा, किस प्रकार पति को नरक जाने से बचाया आदि बातें इस प्रकरण से ज्ञात होंगी।

युगबाहु के वन-निवासालय के बाहर तो मणिरथ को घेर लेने से कोलाहल हो रहा था, लेकिन निवासालय के भीतर की स्थिति कुछ दूसरी ही थी। मदनरेखा ने जब देखा, कि जेठ ने पति के मस्तक पर तलवार का वार किया है और पति आहत होकर धराशायी हो गये हैं, तब वह भी दुःख के कारण हाय हाय करती हुई मूर्छित हो गई। दूसरी ओर पृथ्वी पर पड़ा हुआ युगबाहु, मणिरथ से बदला लेने के लिए उठने का बार-बार प्रयत्न करता था, परन्तु उससे उठा नहीं जाता था। उस समय वह क्रोध से भरा हुआ था तथा कह रहा था, कि—अरे दुष्ट! तूने इस प्रकार छलपूर्वक मेरे पर आघात किया! तू यदि वीर होता, तो मुझे सावधान कर देता और फिर आघात करता! उस समय तुझे मालूम होता, कि

युगबाहु पर आक्रमण करना कैसा होता है ? हे मदनरेखा ! तुम कहाँ हो ! तुमने मुझ से कहा था, कि इस समय उस पापी से न मिलो ! उसकी भावना विकारपूर्ण है, इसलिए सम्भव है, कि कोई अनर्थ हो जावे ! मैंने तुम्हारा यह कहना नहीं माना, उसका फल मुझे भोगना पड़ा है और उस कायर के हाथों आहत हुआ हूँ ! उस पातकी ने मेरे साथ तो यह क्रूर व्यवहार किया ही, परन्तु अब वह तुम्हे अनाथा समझ कर तुम्हारा स्वामी बनने के लिए, तुम्हारा सतीत्व नष्ट करके अपनी कामवासना तृप्त करने के लिए, तुम पर न मालूम कैसा अत्याचार करेगा ! तुम्हे न मालूम किस किस तरह पीड़ित करेगा ! तुम अपना सतीत्व बचाने के लिए जैसे-जैसे प्रयत्न करोगी, वैसे ही वैसे वह कामान्ध तुम्हे अधिकाधिक कष्ट देगा ! उसने, जब अपने सहोदर छोटे भाई पर भी ऐसा मार्मिक प्रहार किया है और वह प्रहार किया है तुम्हे प्राप्त करने के लिए ही, तब मेरे पश्चात्, वह तुम्हारे प्रति कौन-सा क्रूर व्यवहार न करेगा ! दूसरी ओर चन्द्रयश, बालक होने पर भी वीर हृदय है। वह, तुम्हारा अपमान कदापि न सह सकेगा, इसलिए उसको भी न मालूम कैसी दुर्दशा सहनी होगी ! वह कायर, मुझ पर पीछे से प्रहार करके भाग ही गया ! यदि वह भागता नहीं, तो मैं इतना आहत होने पर भी उसको अपना बल अवश्य बताता और जीवित न जाने देता !

युगबाहु क्रोध तथा घाव एवं विष की पीड़ा से तड़फड़ाता हुआ, इस प्रकार बड़बड़ा रहा था। मदनरेखा, पति के मस्तक पर हुए प्रहार और पति की दशा देखकर, मूर्छित हो गई थी। जब कुछ देर में उसकी मूर्छा दूर हुई, तब वह अपने को सम्हाल कर तथा धैर्य रखकर, पति के पास आई। पति की दशा देख कर उसका हृदय फटा जाता था, फिर भी उसने धैर्य नहीं त्यागा। उसने देखा, कि पति के मस्तक पर हुआ घाव प्राणान्तक है और पति का जीवन-दीप कुछ ही समय मे बुझ जानेवाला है। यह देखकर उसने सोचा कि मेरे ही कारण पति की यह दशा हुई है तथा अकाल मे काल—कवलित होना पड़ रहा है। मेरे सौन्दर्य ने ही मेरे जेठ के हृदय में विकृति उत्पन्न की, जिससे यह अनर्थ हुआ है। जो कुछ हुआ सो हुआ, परन्तु इस समय मुझे अपना दुःख विस्मृत करके ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे पति का परलोक न बिगड़े, इन्हे परलोक मे दुःखी न होना पड़े। पति, इस समय क्रोध से भरे हुए हैं। साथ ही, इन्हे मेरे प्रति राग भी है। यदि इनके जीवन का अन्त इस तरह के राग-द्वेष मे हुआ, तो इनको न मालूम किस नरक में जाना पड़ेगा। मैं, इनकी सह-धर्मिणी हूँ। मुझे अपने ही सुख-दुःख के लिए न रोना चाहिए, किन्तु पति के सुख-दुःख को चिन्ता करके ऐसा प्रयत्न करना चाहिए, जिससे इनका मरण सुधर जावे। इन्हे परलोक मे दुःख न सहना

पड़े। ऐसा करना, मेरा कर्त्तव्य है। मैंने जो धार्मिक शिक्षा पाई है, उसके उपयोग का समय भी यही है। यदि इस विषम समय में भी मैंने धर्म का उपयोग न किया, पति को दुर्गति से न बचाया तो फिर धर्म जानने से क्या लाभ। इसलिए मुझे, धार्मिक उपदेश द्वारा पति का राग-द्वेष शान्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

इस प्रकार सोचकर मदनरेखा ने अपना दुःख विस्मृत करके और अपने भविष्य की चिन्ता त्याग करके, पति को धर्म सुनाने का निश्चय किया। परन्तु उसको यह विचार हुआ, कि इस समय बाहर जो कोलाहल हो रहा है इसके कारण, पति को मेरा धीमा स्वर कैसे सुनाई देगा। पति कुछ ही देर के पाहुने हैं। इसलिए, पहले कोलाहल बन्द कराना चाहिए। इसके सिवा, पति के सामन्तों ने यदि जेठ को मार भी डाला, तो उससे लाभ क्या होगा। उनको मार डालने पर भी, पति का जीवन तो रह नहीं सकता। ऐसी दशा में एक हत्या अधिक होने देकर पाप क्यों बढ़ाया जावे।

मदनरेखा ने बाहर आकर सामन्तों एवं पहरेदारों से कहा, कि—तुम लोग यह क्या कर रहे हो। तुम अपने स्वामी का हित चाहते हो या अहित ? उनका हित उनके घातक को पकड़ने या मार डालने से नहीं हो सकता, किन्तु धर्म की सहायता देने से ही

हो सकता है। वे इस शरीर मे अधिक समय तक रहने वाले नहीं हैं। यदि यह समय इस कोलाहल मे व्यर्थ गया, तो इससे तुम्हारे स्वामी का अहित होगा। इसके सिवा, यदि तुमने इनकी घात की, राजा को मार भी डाला, तो भी ऐसा करने से मेरे पति जीवित नहीं हो सकते। ऐसी दशा मे, जो अपराध राजा ने किया है, वही अपराध तुम लोग क्यों करते हो! रक्त-सना वस्त्र, रक्त से स्वच्छ नहीं हो सकता। इसके अनुसार अपराध का बदला अपराध करने से पूरा नहीं हो सकता। इसलिए तुम लोग, राजा को जाने दो और कोलाहल वन्द करके शान्त हो जाओ। पति का जो जीवन शेष है, उसका उपयोग पति का मरण सुधारने मे मुझे कर लेने दो।

मदनरेखा की आज्ञा मानकर सामन्तों तथा पहरेदारों ने मणिरथ को छोड़ दिया और कोलाहल बन्द कर दिया। यह हो जाने पर, मदनरेखा फिर युगबाहु के पास आई। युगबाहु उस समय भी उसी प्रकार तड़फड़ा एवं बड़बड़ा रहा था। मदनरेखा ने युगबाहु का मस्तक अपनी गोद मे रख लिया तथा उसके शरीर को इस तरह दबा लिया, कि जिससे वह अधिक तडफड़ा न सके। यह करके मदनरेखा ने कोमल और प्रिय स्वर मे युगबाहु से कहा, कि—प्रियतम! यह अवसर कल्याण साधने के लिए अमूल्य है, फिर भी आप, किस जंजाल में पड़े हुए हैं। आप थोड़ी देर के लिए चित्त स्थिर करके मेरी बात सुनिये और मेरी अन्तिम सेवा

स्वीकार कीजिये। यह तो आप जानते ही हैं, कि मैं आपका हित चाहने वाली ही हूँ, अहित चाहनेवाली नहीं हूँ। इसलिए आप मेरी प्रार्थना ध्यान में लीजिये जिससे अपका हित हो, अहित न हो।

नाथ! आप सोच रहे होंगे, कि दुष्ट भाई बिना किसी अपराध के मेरे मस्तक पर छलपूर्वक खड्गाघात करके भाग गया है और ऐसा सोचने के कारण ही आपको क्रोध हो रहा होगा, परन्तु ऐसा सोचना-समझना भूल है। जिसने धर्म का अभ्यास किया है, वह तो यही मानता है, कि दूसरा तो निमित्त मात्र है; जीव अपने आयुर्बल से ही जीवित रहता है तथा आयुबल शेष न रहने पर, किसी भी निमित्त से मर जाता है। आप भी, ऐसा ही विचार कर यह मानो, कि मेरा आयुर्बल शेष नहीं रहा, इसी कारण मेरे मस्तक पर तलवार गिरी है। ऐसा मानकर, आप क्रोध त्यागो और अपना मरण सुधारने के लिए, परलोक में अपने को दुःख से बचाने के लिए धर्म को शरण जाओ। अर्हन्त, सिद्ध, साधु और केवली-भाषित धर्म की शरण में रहना, इस लोक के लिए भी मांगलिक है तथा परलोक के लिए भी। आप इनको ही शरण लीजिये, दूसरी झंझट मे न पड़िये।

मदनरेखा ने यह कहा, परन्तु युगबाहु क्षत्रिय था, इसलिए उसका क्रोध शान्त नहीं हुआ। बल्कि इस विचार से क्रोध बढ़ गया, कि दुष्ट भाई ने, इस धार्मिक सती का सतीत्व नष्ट करने

के लिए ही मेरे सिर पर तलवार मारी है तथा अब वह इस सती को न मालूम कैसे-कैसे कष्ट देगा। इस तथा ऐसे ही दूसरे विचारों के कारण, युगबाहु पर मदनरेखा के कथन का प्रभाव नहीं हुआ। युगबाहु की चेष्टा से मदनरेखा ने जब यह जाना, कि पति पर मेरे कथन का कोई प्रभाव नहीं हुआ है, न इनका क्रोध ही शान्त हुआ है, तब वह फिर कहने लगी, कि—स्वामिन्! आपके हृदय मे मेरे प्रति जो राग और भाई के प्रति जो द्वेष है, आप उस राग-द्वेष को मिटा दीजिये। आप मेरे को निरअपराधिन और भाई को अपराधी मानकर, मेरे से राग तथा भाई से द्वेष कर रहे हैं, परन्तु वास्तविक बात इसके विपरीत है। आप सोचते हैं, कि भाई ने मेरे सिर पर खड्ग मारा है, लेकिन आपके मस्तक पर खड्ग मारनेवाली मैं हूँ, भाई नहीं हैं। आप ही विचारिये, कि आपके भाई आपसे कितना स्नेह करते थे! उनने, आपको अपना उत्तराधिकारी युवराज बना दिया था। जिस राज्य के लिए राजा लोग अपना मस्तक कटा देते हैं, जिसे अपने प्राणों से भी अधिक मूल्यवान समझते हैं, वह राज्य, आपके भाई ने अपने पश्चात् आपको मिलने की व्यवस्था की, यह आपके प्रति उनका कैसा स्नेह था! जिसके हृदय में ऐसा स्नेह था, क्या वह भाई आपको तलवार मार सकता था! तलवार मारना तो दूर की बात, आपके भाई आपके लिए कठिन शब्द का प्रयोग भी नहीं कर सकते थे, परन्तु

मैंने या मेरे सौन्दर्य ने उनके हृदय का स्नेह–स्रोत सुखा दिया तथा उसके स्थान पर वैर–विरोध भर दिया। इसीसे आपके मस्तक पर तलवार गिरी है। इस प्रकार आपके मस्तक पर तलवार का आघात मेरे ही कारण हुआ है। आपको मेरे प्रति राग था, इसी से आपको यह दशा हुई है। अब आप, यदि फिर मेरे प्रति राग रखेंगे, तो नरक में आपके मस्तक पर न मालूम कितनी तलवारें गिरेंगी। इसी प्रकार यदि आप अपने भाई पर द्वेष रखेंगे, तो उसका दुष्परिणाम भी आप ही को भोगना पड़ेगा। इसलिए आप, अपने हृदय मे मेरे प्रति जो राग और भाई के प्रति जो द्वेष है, उसे त्यागिये। ऐसा करने से ही, परलोक में आपका कल्याण हो सकता है, अन्यथा यहाँ जो कष्ट सह रहे हैं, उससे भी अधिक भयङ्कर कष्ट आपको परलोक में सहना पड़ेगा।

मदनरेखा के इस कथन का, यथेष्ट परिणाम हुआ। युगबाहु को, मदनरेखा का कथन ठीक जँचा। वह सोचने लगा, कि वास्तव में मेरे प्रति भाई में बहुत स्नेह था, परन्तु मदनरेखा को देखकर ही वह मेरा शत्रु बना। इसलिए उस पर क्रोध करना, व्यर्थ है।

इस तरह के विचारों से, युगबाहु का क्रोध शान्त हुआ। उसका चित्त, कुछ स्थिर हुआ, इस कारण वह उपदेश सुनने का

पात्र बना। मनुष्य मे जब तक क्रोध रहता है, तब तक वह, उपदेश सुनने का पात्र नहीं होता। क्रोध से भरे हुए व्यक्ति पर, किसी भी सदुपदेश का प्रभाव नहीं होता, फिर वह सदुपदेश किसी का भी दिया हुआ क्यों न हो। इसीलिए उपदेश देने वाले, कोई दूसरा सदुपदेश देने से पहले, क्रोध शान्त करने का ही उपदेश देते हैं और जब क्रोध शान्त हो जाता है, तभी दूसरा उपदेश सुनाते हैं। शास्त्र में भी कहा है, कि क्रोध से भरा हुआ व्यक्ति उपदेश का पात्र नहीं है। श्री उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है—

अह पंचहिं ठाणेहिं जेहिं सिक्खा न लब्भई।
थम्भा कोहा पमाएणं रोगेणालस्सएणय॥

अर्थात्—पाँच तरह के व्यक्ति, उपदेश के पात्र नही होते और शिक्षा ग्रहण नही कर सकते। ऐसे पाँच तरह के व्यक्ति—अभिमानी, क्रोधी, प्रमादी, ( दुर्व्यसनी ) रोगी और आलसी है।

मदनरेखा ने जब देखा, कि अब पति का क्रोध शान्त हुआ है, तब वह फिर कहने लगी, कि—नाथ! मैंने आप से यह कहा है, कि आपके सिर पर खड्ग मारने वाली मैं हूँ, आपके भाई ने खड्ग नहीं मारा है, परन्तु आप इससे भी ऊँचा विचार कीजिये। ज्ञानियों का कथन है, कि जीव को जो भी सुख या दुःख होता है, वह स्वयं द्वारा किये गये कर्म के फल स्वरूप ही है। अपने कृत्य ही अपने को सुख या दुःख दे सकते हैं, दूसरा कोई न तो सुख

ही दे सकता है, न दुःख ही और न इष्ट या अनिष्ट ही कर सकता है। अपनी आत्मा ही, दुःख सुख का कर्त्ता-भोक्ता है। दूसरा तो निमित्त मात्र है। निमित्त को यश अपयश देना, यानी दूसरे को सुख या दुःख देने वाला मान कर अच्छा या बुरा कहना और उससे राग-द्वेष रखना भूल है। बल्कि ऐसा करना, अपनी हानि करना है। इसलिए आप किसी दूसरे को न देखकर, अपने आत्मा को ही देखो। सिर पर खड्ग गिरने के लिए, स्वयं को ही अपराधी मानो और पहले पूरी तरह धर्म मे चित्त नहीं दिया, इसी का यह परिणाम समझ कर धर्म में चित्त दो। जिसमे, आपको भविष्य में ऐसे या किन्हीं दूसरे कष्टो का सामना न करना पड़े। यदि आपने ऐसा न किया, तो आपके मस्तक पर इसी तरह न मालूम कितनी बार खड्ग गिरेगा।

नाथ! आपकी यह जीवन लीला, कुछ ही समय की है। यह कुछ समय जो शेष है, इसे अमूल्य मानकर ऐसा उपाय करो, कि जिससे आत्मा का कल्याण हो। इसके लिए, आप न तो किसी के प्रति राग रखो न द्वेष, किन्तु सब जीवों पर समभाव रखो। सब जीवों को अपना मित्र मानो। अठारह पाप त्याग कर तथा अपने पूर्वकृत पापों का पश्चात्ताप करके, हृदय में अर्हन्त देव, निर्ग्रन्थ गुरु और केवलीभाषित धर्म को स्थान दो। ऐसा करने से, आप दुर्गति से बचकर सुगति प्राप्त करेंगे। संसार-व्यवहार

में, अनेक लोगो ने आपका अपराध किया होगा और आपने भी अनेकों का। ऐसे लोगों को, आप भी क्षमा प्रदान कीजिये तथा उनसे भी क्षमा माँग लीजिये। ऐसा करने से, आपके हृदय में सब जीवों के प्रति मैत्री-भावना जागृत होगी। मैत्री-भावना होने पर, आप सब पापों से निवृत्त होकर निष्पाप बन सकेंगे। दुर्गति से बचने के लिए, आप इस प्रकार अब तक के पापों से निवृत्त होइये और सुगति प्राप्त करने के लिए, हृदय में धर्म को स्थान दीजिये। आत्मा और शरीर भिन्न हैं। शरीर की हानि से, आत्मा की कोई हानि नहीं है, न शारीरिक लाभ से आत्मा का कोई हित ही हो सकता है। शरीर और आत्मा का संयोग, आत्मा द्वारा किये गये पूर्व कर्म से है। शाश्वत संयोग नहीं है। कर्म नष्ट होते ही, आत्मा शरीर रहित हो जाता है। यानी आत्मा शरीर बन्धन मे नहीं रहता। आत्मा अविनाशी है और शरीर नाशवान। आत्मा ने, अब तक अनेक शरीर धारण किये हैं। जिन-जिन शरीरों मे आत्मा रहा है, वे शरीर तो नष्ट हो गये, परन्तु आत्मा वही है। जिस प्रकार वस्त्र बदले जाते हैं, लेकिन एक वस्त्र त्याग कर दूसरा वस्त्र धारण करनेवाला तो वही रहता है, इसी प्रकार शरीर बदले जाते हैं, परन्तु शरीर बदलने वाला आत्मा वही रहता है। यह जानने के कारण ही ज्ञानी लोग मृत्यु से दुःखी या भयभीत नहीं होते, किन्तु मृत्यु का

स्वागत करते हैं। वे सोचते हैं, कि शरीर रक्त-मांस का बना हुआ है और मैं ( आत्मा ) उससे भिन्न हूँ। ऐसे शरीर के छूटने से, मै दुःख क्यो करूँ! यह शरीर त्यागते पर, यदि मुझे दूसरा शरीर धारण करना पड़ा, तो उस दशा में भी दुःख का कोई कारण नहीं है और शरीर धारण न करना पड़ा, तब भी दुःख का कोई कारण नहीं है। बल्कि, शरीर धारण न करना पड़े, यह तो सब से अधिक सन्तोष की बात है। हमारा प्रयत्न यही है, कि हमें फिर शरीर धारण न करना पड़े! ऐसा सोचकर, ज्ञानी लोग मृत्यु का स्वागत करते हैं। मृत्यु को एक उत्सव मानते हैं। मृत्यु के पश्चात पुनः शरीर धारण न करना पड़े, अथवा शरीर धारण करने पर दुःख न भोगना पड़े, इसका प्रयत्न करते हैं। इसके लिए वे, सब जीवों पर समभाव रखते हैं। सब जीवों को अपना मित्र मानते हैं। किसी के प्रति राग-द्वेष नही रखते और अपना चित्त, अर्हन्त देव, निर्ग्रन्थ गुरु तथा केवली भाषित धर्म में स्थापित करते हैं। आप भी, अपने आत्मा का कल्याण करने के लिए ऐसा ही कीजिये। प्रसन्नता की बात यह मानिये, कि मस्तक पर खड्ग गिरते ही जीवन का अन्त नहीं हुआ, किन्तु आत्म-कल्याण करने वाली बातों को सुनने का अवसर मिल गया। इस थोड़े से समय में, मैं आपको परलोक के लिए वैसा ही खर्च दे रही हूँ, जैसा खर्च एक सहधर्मिणी अपने पति को विदेश जाने के समय देती है। आपका

अन्तकाल सन्निकट है। इसलिए मैं आपसे फिर यही निवेदन करती हूँ, कि आप, पत्नी, पुत्र, परिवार या और किसी व्यक्ति अथवा वस्तु के प्रति राग न रखिये, न किसी के प्रति द्वेष ही रखिये। किन्तु समाधिभाव रखकर, देव, गुरु, धर्म मे चित्त लगाकर अपना मरण सुधारिये। जीवन की आश और मरण के भय मे सर्वथा मुक्त हो जाइये।

युगबाहु, शान्त चित्त से मदनरेखा का उपदेश सुनता रहा। मदनरेखा का उपदेश समाप्त होने पर, युगबाहु ने अपने दोनों हाथ जोड़कर मस्तक पर लगाये और उस उपदेश को स्वीकार किया। मदनरेखा के उपदेश का उस पर उचित प्रभाव हुआ था, इसलिए उसने तड़फड़ाते हुए प्राण-त्याग करने के बदले शान्ति से प्राण-त्याग किये।

युगबाहु के प्राण-पखेरू उड़ जाने के पश्चात् मदनरेखा सोचने लगी, कि प्राणनाथ ने तो अपनी जीवन-लीला समाप्त करदी, लेकिन अब मुझे क्या करना चाहिए! मै, पति की सेवा करने के लिए अपने प्राणो को अबतक सुखद मानती रही, परन्तु पति के जाते ही मुझे मेरे प्राण दुःखदायी जान पड़ते हैं। इसलिए, अब इन प्राणों को शरीर में रहने देने से क्या लाभ! इसी प्रकार जिस सुन्दरता की पति तथा दूसरे लोग प्रशन्सा करते थे, वह सुन्दरता निगोड़ी भी कैसी निकली! पति को प्रसन्न करने के लिए, मैं इस शरीर

को शृंगार कराया करती थी, परन्तु इस शरीर की सुन्दरता ने कैसा अनर्थ किया! इस सुन्दरता के कारण ही पवित्र जेठ के हृदय में अपवित्रता आई, पति का इस तरह अकाल मे निधन हुआ और अब सतीत्व भयग्रस्त हो रहा है। यह सब, इस पापिनी सुन्दरता के कारण ही हुआ तथा हो रहा है। जिन पति के लिए यह सुन्दरता थी, वे पति ही जब चले गये, तब इस सुन्दरता की रक्षा क्यो की जावे! इसकी रक्षा करने पर तो, विपत्ति आने एवं शील नष्ट होने की ही आशङ्का है! इतना ही नहीं, किन्तु यदि मैंने इस सुन्दरता को भी रक्षा की और शील बचाने का प्रयत्न किया, तो मेरे पुत्र का जीवन संकट में पड़ जावेगा! इसलिए यही अच्छा होगा, कि मैं प्राणों का ही अन्त कर दूँ। ऐसा करने पर, सुन्दरता भी नष्ट हो जावेगी, मेरे सतीत्व कीं भी रक्षा होगी और पुत्र का जीवन भी संकट में न पड़ेगा। परन्तु मैं प्राणों का अन्त करने के लिए भी तो स्वतन्त्र नहीं हूँ! मेरे गर्भ में वालक है। मेरे प्राणों का अन्त होते ही, गर्भ का बालक भी मर जावेगा। माता का कर्त्तव्य, गर्भ के वालक की रक्षा करना है। अपने किसी कर्त्तव्य द्वारा गर्भस्थ वालक का नाश करना, मातृ-कर्त्तव्य के सर्वथा विरुद्ध है। ऐसी दशा में मुझे ऐसा कौनसा उपाय करना चाहिए, जिससे मेरे सतीत्व की भी रक्षा हो, पुत्र का जीवन भी संकट में न पड़े और गर्भ का बालक भी नष्ट न हो!

कुछ देर तक इस विषयक विचार करने के पश्चात्, मदनरेखा ने वन में भाग जाने का निश्चय किया। उसने सोचा, कि वन में भाग जाने पर मेरे पुत्र चन्द्रयश को भी संकट में न पड़ना पड़ेगा, मेरा शील भी सुरक्षित रहेगा और मेरे गर्भ मे जो बालक है, उसकी भी रक्षा होगी। वन मे भाग जाने के सिवाय, दूसरा कोई मार्ग ऐसा नहीं है, जिससे ये तीनो ही कार्य हो सकें।

मदनरेखा ने, इस प्रकार सोच-विचार कर वन मे भाग जाने का निश्चय किया। परन्तु इस निश्चय के साथ ही, उसके हृदय में यह प्रश्न उत्पन्न हुआ, कि मैं यहाँ से निकलूँ तो कैसे। यदि मैं किसी से कहकर वन जाना चाहूँ, तो न तो कोई ऐसा करने की सम्मति ही देगा, न इस कार्य में कोई मेरी सहायता ही करेगा। इसके विरुद्ध, यदि मैं चुपचाप भागने का प्रयत्न करूँगी, तो पहरेदार लोग मुझे जाने न देंगे। हाय! राज परिवार के लोगों का जीवन वन्दियों के जीवन से कुछ भी कम नहीं है। आजतक मै, राज घराने में होने के कारण अपने को सुखी मानती थी, परन्तु आज मुझे मालूम हुआ, कि राज–परिवार की स्त्रियाँ कारावास–यातना सहन करती हैं। वे, किञ्चित् भी स्वतन्त्र नहीं हैं।

मदनरेखा इस प्रकार की चिन्ता में थी, इतने ही मे उसका पुत्र चन्द्रयश वहाँ आगया। उसको जैसे ही यह ज्ञात हुआ, कि पिताजी के मस्तक पर उनके ज्येष्ठ भ्राता ने खड्गाघात किया है,

वैसे ही वह दौड़ा हुआ, वन में अपने पिता के निवासस्थान पर आया और अपने साथ वैद्य आदि को भी लाया। परन्तु युगबाहु के प्राण-पखेरू, चन्द्रयश के पहुँचने से पहले ही उड़ चुके थे। अपने पिता का आहत शव देखकर, चन्द्रयश बहुत ही दुःखी हुआ, वह रोने लगा, लेकिन मदनरेखा के समझाने से रोना त्यागकर, पिता के शव की रक्षा एवं अन्त्येष्ठि आदि का प्रबन्ध करने लगा, मदनरेखा ने देखा, कि चन्द्रयश तथा दूसरे कुछ लोग तो शव के प्रबन्ध में लगे हुए हैं और शेष लोग रोने-धोने या इस दुर्घटना की चर्चा करने में पड़े हुए हैं। यह देख कर उसने सोचा, कि भाग जाने के लिए यही अवसर उपयुक्त है। मुझे, यह अवसर न जाने देना चाहिए, किन्तु इसका उपयोग करना चाहिए और भाग निकलने का प्रयत्न करना चाहिए।
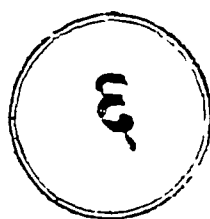
# वन की शरण

क्वचिद् भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यङ्क शयनं ।
क्वचिच्छाकाहारः क्वचिदपि च शाल्योदन रुचिः ॥
क्वचित्कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बर धरो ।
मनस्वो कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम् ॥

—भर्तृहरि-नीतिशतक

कवि कहता है, कि कार्य सिद्धि के लिए कमर कस लेने वाले धीर लोग, सुख और दुःख दोनों ही को कुछ नहीं समझते। वे, कभी जमीन पर सो रहते हैं, कभी उत्तम पलंग पर। कभी साग-पात खाते हैं, कभी सुस्वादु दाल भात। कभी दिव्य वस्त्र पहनते हैं, कभी फटी पुरानी गुदड़ी। वे

लोग, इनमें से किसी भी बात की परवाह नहीं करते। उन्हें तो अपना कार्य सिद्ध करना इष्ट होता है।

कवि का यह कथन, मदनरेखा के लिए बिलकुल ठीक ठहरता है। मदनरेखा, युवराज्ञी तथा भावी रानी थी। वह किसी राजा की ही पुत्री रही होगी, इसलिए उसका जीवन पितृगृह में भी सुख पूर्वक बीता था और पतिगृह में भी। वह, राजसी सुख-सामग्री में ही रही थी। अच्छे पलंग पर सोना, श्रेष्ठतम भोजन करना, सुन्दर तथा बहुमूल्य वस्त्र पहनना, कर्णप्रिय गीत सुनना, दास दासियों से सेवित रहना, सुगन्ध लेना एवं प्रसन्नता में समय बिताना, यह उसके जीवन का कार्यक्रम था। जिन लोगों के पास ऐसी सामग्री नहीं है उनका जीवन किस तरह व्यतीत होता है, इसका उसे अनुभव न था। लेकिन सतीत्व की रक्षा के लिए, सतीत्व नष्ट न हो इसलिए उसने इन सब सामग्रियों को एक क्षण में ही त्याग दिया और विना दुःख माने, उसने अपना रहन-सहन एक क्षण में ही बदल डाला। वह, सुन्दर महल में पलंग पर लगी हुई कोमल शय्या पर सोना त्यागकर, निर्जन और भयङ्कर वन में, भूमि पर विना बिछौने के ही सोई। उसने, स्वादिष्ट तथा षट्रस भोजन त्यागकर, बनैले फलों से अपनी क्षुधा मिटाई। उसने सुन्दर कोमल एवं बहुमूल्य वस्त्राभूषण पहनना त्यागकर, दासियों के पहनने योग्य सादे वस्त्र

पहने। इस तरह उसने, अपने सुखी माने जानेवाले जीवन को, दुःखी माने जानेवाले जीवन में बदल डाला और यह सब किया अपने शील की रक्षा का कार्य सिद्ध करने के लिए। इसी से उसने, अपने उस दुःखी माने जाने वाले जीवन को दुःखी नहीं, किन्तु सुखमय माना। उसने, अपना जीवन किस प्रकार बदल डाला, वह राजसी सुख-सामग्री छोड़ कर विपन्नावस्था में किस प्रकार पड़ी, उस अवस्था मे उसे किन-किन दुर्घटनाओं का सामना करना पड़ा और उन दुर्घटनाओं से उसकी रक्षा कैसे हुई, आदि बातें इस प्रकरण से ज्ञात होंगी।

मदनरेखा ने अपने शरीर के सब आभूषण उतार डाले और राजसी वस्त्रों के बदल दासियों के से वस्त्र पहन लिये। दासियों का सा वेष बना कर मदनरेखा, चुपचाप बन के लिए निकल पड़ी। उस समय उसने न तो पुत्र आदि का ममत्व किया, न पति की मृत्यु के लिए दुःख ही किया, न अपरिचित वन से भय किया। उसका लक्ष्य तो, प्रधानतः शील की रक्षा करना था। इसके लिए वह, पहरेदारों की दृष्टि से बचकर बाहर निकल गई और अन्धेरी रात में, अकेली वन में जाने के लिए पूर्व की ओर चल पड़ी।

रात का समय था, घने वन मे, चारों ओर सन्नाटा तथा अन्धेरा छाया हुआ था। सूखे पत्तों की सुरसुराहट तथा बनैले

पशुओं की भयानक आवाज के सिवाय कोई शब्द सुनाई न देता था। अन्धेरी रात के समय, उस वन मे जाने का किसी का साहस नहीं हो सकता था, परन्तु शील की रक्षा के लिए मदनरेखा उस भयङ्कर वन में अकेली चली जा रही थी। वन के कारण, उसके हृदय में किसी प्रकार का भय न था। उसको भय था तो केवल यही, कि कहीं मेरी खोज में कोई आता न हो या मैं रोक न ली जाऊँ। इस भय से मुक्त होने के लिए, वह वन में बनी हुई पगडंडियो पर चलना त्याग कर ऊबट चली।

मदनरेखा को चलते-चलते सवेरा हो गया। सवेरा होने पर भी, उसने चलना बन्द नहीं किया। वह जिस ओर जा रही थी, उसी ओर सामने खड़ा हुआ सिह दहाड़ रहा था। मदनरेखा, सिह को देखकर तथा उसकी दहाड़ सुनकर भी भय नहीं पाई, किन्तु सिंह के सामने की ओर ही चली। वह सोचती थी, क्रूर स्वभावी माना जाने वाला सिह केवल इस भौतिक शरीर को ही नष्ट कर सकता है, मनुष्य के शीलादि आध्यात्मिक गुणों को नष्ट नहीं कर सकता। सिंह, उन मनुष्यो से तो अच्छा ही है, जो शीलादि गुण नष्ट करते हैं। इतना ही नहीं शील के प्रताप से क्रूर पशु भी शान्त हो जाते हैं। फिर भी सिंह मेरे साथ क्रूर-व्यवहार करेगा, तो मेरे इस शरीर को खा जावेगा। सिह के इस व्यवहार पर भी, मेरे आध्यात्मिक गुणों की तो रक्षा ही होगी। इसलिए मुझे, सिंह से कोई भय न करना चाहिए।

इस प्रकार सोचती हुई मदनरेखा, सिंह के सामने की ओर चली जा रही थी। उसके हृदय में सिंह के प्रति किंचित भी वैरभाव न था, किन्तु वह सिंह को भी अपना मित्र ही मान रही थी। चलते-चलते उसने, सामने उपसर्ग देखकर सागारी अनशन भी कर लिया और सब जीवों मे क्षमा माँग कर तथा सब जीवों को क्षमा देकर, अठारह ही पाप का त्याग किया। यह करके, वह, चलती हुई सिंह के सामने पहुँची। वह, जैसे-जैसे सिंह के सामने पहुँचती जाती थी, वैसे ही वैसे यह समझती जाती थी, कि सिंह अब लपक कर मेरे इस शरीर पर आक्रमण करता है, परन्तु उसकी यह आशङ्का व्यर्थ सिद्ध हुई। सिंह के बिलकुल समीप पहुँच जाने पर भी, सिंह ने मदनरेखा पर आक्रमण नहीं किया, अपितु प्रेम प्रदर्शित करने के लिए उसके सामने लीला करने लगा। सिंह की यह चेष्टा देख कर सती ने अपने हृदय मे यही कहा, कि यह अहिंसा और शील का ही प्रताप है, कि मेरे लिए यह सिंह भी अहिंसक बन गया। इसके हृदय मे भी मेरे प्रति वैर नहीं रहा, लेकिन मेरे जेठ के हृदय का दुर्भाव नहीं मिटा, यह मेरा दुर्भाग्य ही है।

मदनरेखा आगे चली। सिंह के उपसर्ग से निकल कर, मदनरेखा ने अनशन पाला। चलने की थकावट के कारण एवं समय अधिक हो जाने से, मदनरेखा को जोर की क्षुधा लगी। मदनरेखा ने सोचा, कि मैं सिंह के उपसर्ग मे भी बच गई हूँ तथा

मणिरथ की ओर के भय से भी बच गई हूँ। मुझे शील को भी रक्षा इष्ट है और शरीर भी नष्ट नहीं करना है। शील की रक्षा के लिए शरीर नष्ट होना दूसरी बात है, लेकिन निष्कारण और गर्भ में बालक के होते हुए भी शरीर नष्ट करना महान् पाप है। इसलिए मुझे अपनी क्षुधा मिटानी चाहिए। क्षुधा मिटाने के लिए, यहाँ वृक्षों में फल लगे हुए ही हैं।

मदनरेखा ने वन फल द्वारा अपनी क्षुधा मिटाई। वन फल खाकर और झरने का जल पीकर, मदनरेखा फिर आगे को चली। वह दिन भर चलती ही रही। उसके लिए, पैदल चलने का यह पहला ही अवसर था। इससे पहले, वह कभी इतनी पैदल नहीं चली थी। जो व्यक्ति, जीवन भर कभी कुछ दूर भी पैदल न चला हो, उसके लिए कङ्करीले कांटीले वन में अकेले तथा अविराम चलना कितना कठिन होता है। लेकिन मदनरेखा वन की कठिन भूमि पर भी अकेली चली जा रही थी। उसको कभी पैदल नहीं चलना पड़ा था, इसलिए उसके कोमल पैरों में छाले पड़ गये थे, फिर भी वह कहीं ठहरी नहीं, न थकावट या श्रम से घबराई ही। इसी प्रकार, उसको अपनी इस विपन्नावस्था के लिए किसी तरह का दुःख न था।

मदनरेखा दिन भर चलती ही रही। सन्ध्या के समय वह वन के मध्य एक ऐसे स्थान पर पहुँची, जिसके चारों ओर वृक्षों

पर लताएँ चढ़ी हुई थीं, इस कारण जो एक प्राकृतिक लतागृह बना हुआ था, सूर्य अस्त हो रहा था। मदनरेखा, थक भी बहुत गई थी। साथ ही, प्रतिक्रमण का समय भी हो गया था और मदनरेखा को जागते हुए भी बारह पहर बीत गये थे। इसलिए उसने उस लतागृह मे विश्राम करके रात व्यतीत करना उचित समझा। वह उस लतागृह में गई। वहाँ विश्राम के लिये स्थल स्वच्छ करके, मदनरेखा प्रतिक्रमण करने लगी। प्रतिक्रमण समाप्त हो जाने पर मदनरेखा, शील की रक्षा होने के कारण परमात्मा को धन्यवाद देकर अपने मन में कहने लगी, कि हे मन! अब भय की कोई बात नहीं है, इसलिए स्थिर हो जा। देख, यह स्थान कैसा आनन्ददायक है! इस स्थान को प्राप्त करके अब फिर तू उन महलों की याद मत करना, जो सदैव विषय-विकार की आग मे जला करते हैं और जहाँ आध्यात्मिक गुणों के नाश का भय बना ही रहता है। तू इस पवित्र स्थान मे आनन्द मान तथा पक्षियों का अकृत्रिम एवं निर्दोष कलरव सुनकर हर्षित रह।

इस प्रकार मन को धैर्य देकर मदनरेखा, पंच परमेष्ठी की शरण ले, उस लतागृह में सो गई। चारों ओर से उसके कानों में वन्य पशुओं के भयंकर शब्द पड़ रहे थे, किन्तु मदनरेखा के हृदय में उन शब्दों के कारण न तो भय ही हुआ, न यह विचार ही हुवा कि मैं कैसे स्थान पर किस प्रकार सोती हुई कैसे कैसे गीत-वाद्य

सुना करती थी, लेकिन दुर्भाग्य से, आज कैसे स्थान पर किस प्रकार सोई हुई कैसे शब्द सुन रही हूँ। उसको, अपनी वर्त्तमान दशा के लिए किसी प्रकार का खेद या असन्तोष न था, अपितु शील की रक्षा होने से, वह प्रसन्न थी।

थकी हुई मदनरेखा, कुछ ही देर मे निद्राधीन हो गई। वह आधीरात तक तो गाढ़ निद्रा मे सोती रही, लेकिन आधीरात के पश्चात् उसके उदर मे प्रसवकालीन वेदना होने लगी। वेदना होने से, मदनरेखा सावधान हो गई। स्त्रियों के लिए, प्रसवकाल एक प्रकार का पुनर्जन्म होता है। उस विषम समय में, सेवा-सहायता करने के लिए गरीबों के यहाँ भी कोई न कोई उपस्थित रहता है और राज-परिवार की स्त्रियों के पास तो अनेकों स्त्रियाँ रहती हैं तथा दूसरे वैद्य आदि भी रहते हैं, लेकिन मदनरेखा के पास उस समय सेवा-सहायता के लिए कोई भी न था। वह, अकेली ही थी। मदनरेखा को, उस विषमकाल और अपनी असहायावस्था के कारण दुःख होना स्वाभाविक था, परन्तु धर्म जानने वाली उस सती को कोई दुःख नहीं हुआ, न वह किसी प्रकार अधीर ही हुई। वह, परमात्मा का स्मरण करती हुई, धैर्य पूर्वक प्रसव वेदना सहती रही।

रात का शेष भाग समाप्त हो रहा था। सूर्योदय की प्रतीक्षा समा लालिमा, पूर्व दिशा में प्रकट हो चली थी। घोंसलों में और

वृक्षों पर बैठे हुए पक्षीगण, सूर्योदय की प्रतीक्षा मे चोंन्चूँ कर रहे थे। उसी समय मदनरेखा ने, एक सर्वाङ्ग सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। पुत्र को देखकर, मदनरेखा बहुत आनन्दित हुई। वह कहने लगी, कि हे वत्स ! तुम्हारा जन्म इस शान्ति देनेवाले वन में हुआ है। यदि तुम नगर में जन्मते और तुम्हारे पिता जीवित होते, तो तुम्हारे जन्मोपलक्ष्य में कृत्रिम उत्सव मनाया जाता, परन्तु इस वन में तुम्हारा जन्मोत्सव प्राकृतिक रीति से हो रहा है। ये पक्षीगण, स्वतन्त्रता पूर्वक इस तरह बोल रहे हैं, जैसे तुम्हारे जन्मोपलक्ष में गीत गा रहे हों और सूर्य अपनी लालिमा इस प्रकार फैला रहा है, जैसे रंग गुलाल उड़ रहा हो। वहाँ, मेरी और तुम्हारी सहायता के लिए दूसरे लोग रहते, लेकिन यहाँ पवन सहायता कर रहा है, वृत्त छाया कर रहे हैं तथा चँवर ढुला रहे हैं। यह स्थान कैसा सुखकारी है ! इस स्थान के प्रताप से मेरे शील की भी रत्ता हुई है, तुम्हारी भी रक्षा हुई है, एवं तुम्हारे बड़े भाई की भी रत्ता हुई है। हे वत्स ! तुम बड़े ही पुण्यात्मा हो। ऐसे पवित्र स्थान पर तथा शुद्ध और स्वतन्त्र वातावरण मे तुम्हारा जन्म होना एवं तुम्हारे जन्म से पहले, मेरे हृदय मे शील की रत्ता के लिए इतना बल साहस आना, तुम्हारी पुण्यवानी को प्रकट करता है।

कुछ ही देर के पश्चात्, सूर्य ने अपनी किरणें फैला दीं। सब ओर प्रकाश ही प्रकाश हो गया। मदनरेखा ने विचार किया कि

मुझे अशुचि मे ही न पड़ी रहना चाहिए, किन्तु शुद्ध होना चाहिए। लेकिन मैं शुद्ध होने के लिए जल की खोज करूँ और शरीर शुद्ध करके लौटूँ, तब तक इस बालक की रक्षा का क्या प्रबन्ध करना चाहिए। मेरे लिए, इस बालक की रक्षा करना भी आवश्यक है और शरीर शुद्ध करना भी आवश्यक है। कुछ देर तक असमंजस में रहने के पश्चात्, मदनरेखा ने पुत्र की रक्षा का उपाय निकाल लिया। उसने यह निर्णय किया, कि मुझे अपनी साड़ी मे से कुछ वस्त्र फाड़कर, वृक्ष मे उस वस्त्र की झोली बाँध, उस झोली में बालक को सुला देना चाहिए। यह निर्णय करके मदनरेखा ने, अपनी पहनी हुई साड़ी मे से आवश्यकतानुसार वस्त्र फाड़ा और एक घने वृक्ष मे ऐसी जगह उसकी झोली बाँधी, जहाँ कोई भूचारी या गगनविहारी हिंसक पशु-पक्षी न पहुँच सके। यह करके, मदनरेखा ने उस झोली में अपने नवजात पुत्र को सुला दिया। यद्यपि पुत्र-स्नेह के कारण मदनरेखा का चित्त अपने बालक को छोड़कर जाने का नहीं होता था, परन्तु शरीर की शुद्धि भी आवश्यक थी, इसलिए वह पुत्र का मुख चूमकर एवं उसको पंच परमेष्टि की शरण में छोड़कर, जल को खोज मे चली। वह, शरीर पर लगी हुई अशुचि धोने के लिए शरीर से तो जल को खोज में अवश्य गई, लेकिन उसका मन अपने नवजात शिशु में ही लगा हुआ था; इसलिये वह घूम-घूम कर उसकी ओर देखती जाती थी।

मदनरेखा, जल की खोज करने लगी। थोड़ी ही दूर पर, उसे एक जल-पूर्ण सरोवर दिखाई दिया। वह, जल्दी से उस सरोवर पर गई। उसने, सरोवर के जल में उतर कर अपने वस्त्र तथा शरीर को धोया। शरीर और वस्त्र साफ करके मदनरेखा, अपने पुत्र के पास जाने के लिए शीघ्रता से लौट पड़ी। वह चाहती तो यही थी, कि मैं अपने पुत्र के पास शीघ्र ही पहुँच जाऊँ और इसके लिए उसने, अपनी शक्ति भर शरीर एवं वस्त्र शीघ्रता से ही स्वच्छ किये, परन्तु प्रकृति को यह स्वीकार न था, कि मदनरेखा अपने नवजात शिशु के पास पहुँचे। इसलिए वह जैसे ही सरोवर के जल से बाहर निकली, वैसे ही, वहाँ पर एक जंगली हाथी आगया। वह हाथी, जंगली था और मदमस्त भी था। साथ ही, उसने उस तालाब पर किसी मानव-मानवी को भी शायद ही कभी देखा होगा। इसलिए मदनरेखा को देखकर, वह चिढ़ गया। वह, मदनरेखा को पकड़ने के लिए मदनरेखा की ओर लपका। मदनरेखा ने भी, हाथी को अपनी ओर लपकते देखा। वह, प्राण-रक्षा के लिए, साहस और बलपूर्वक भागी। हाथी भी, उसके पीछे-पीछे दौड़ा। मदनरेखा को, एक तो इस तरह दौड़ने भागने का अभ्यास न था। दूसरे, वह गत दिवस बहुत चली थी, इसलिए थकी हुई भी थी। तीसरे, कुछ ही समय पहले उसने पुत्र प्रसव किया था, इससे उसके शरीर मे असक्तता भी थी। इन

कारणों से, वह अधिक तेज भागने मे समर्थ न हुई। अपने पीछे हाथी को आता देखकर, मदनरेखा अपने मन में कहने लगी, कि अब मैं और कहाँ तक भाग सकती हूँ और इस कृतान्त के समान पीछे आते हुए हाथी से कैसे बच सकती हूँ। जान पड़ता है, कि यह हाथी मेरा काल ही है, जो मेरे प्राण लेकर ही शान्त होगा। इसलिए अब अधिक भागना, या इससे बचने की आशा करना व्यर्थ है। अब तो मुझे, परमात्मा की शरण जाकर, यह शरीर हाथी को सौंप देना चाहिए।

इस प्रकार सोचकर, मदनरेखा ने परमात्मा का ध्यान किया और पंच परमेष्टि की शरण ली। मदनरेखा, भागना वन्द करके ठहर गई। इतने ही में, वह हाथी भी उसके समीप आगया। उस हाथी ने, मदनरेखा को अपनी सूँड से पकड़ कर आकाश मे उछाल दिया। हाथी की सूँड से दवने और जोर से उछाली जाने के कारण, मदनरेखा को मूर्छा हो आई। वह यदि इतनी ऊँचाई से पृथ्वी पर गिरती, तव तो उसके शरीर का चूरा ही हो जाता, लेकिन उसका आयुवल शेष था और उसके द्वारा आगे दूसरे सद् कार्य होने थे, इसलिए वह पृथ्वी पर नहीं गिरने पाई। जहाँ यह घटना हुई थी, उसी ओर से मणिप्रभ नाम का एक विद्याधर अपने विमान में वैठा हुआ मुनि दर्शन के लिए जा रहा था। उसने हाथी द्वारा उछाली गई मदनरेखा को देखा। विद्याधर के हृदय में,

मदनरेखा के प्रति करुणा हुई। उसने सोचा, कि यह स्त्री यदि पृथ्वी पर गिरी, तो अवश्य ही मर जावेगी। इसलिए इसको पृथ्वी पर गिरने से पहले ही बचा लेना चाहिए। मैं मुनि दर्शन के लिए जा रहा हूँ। मुनि लोग, दूसरे की करुणा करने एवं दूसरे की रक्षा करने का ही उपदेश देते हैं, जिसे मैं कई बार श्रवण कर चुका हूँ। उस उपदेश के अनुसार व्यवहार करने का अवसर उपस्थित होने पर भी, यदि मैं इस स्त्री की रक्षा करने की ओर से उदासीन रहूँ, तो मुनि दर्शन के लिए जाने तथा मुनि का उपदेश श्रवण करने से क्या लाभ ?

इस प्रकार विचार कर और करुणा की भावना से प्रेरित होकर, मणिप्रभ विद्याधर ने, अपना विमान पृथ्वी की ओर गिरती हुई मदनरेखा के नीचे करके, मदनरेखा को यत्न पूर्वक सम्हाल लिया, पृथ्वी पर नहीं गिरने दिया। मदनरेखा उस समय मूर्छित ही थी। विद्याधर ने, पानी आदि द्वारा मदनरेखा की मूर्छा मिटाई, मदनरेखा सुध में आई। उसने, अपनी आँखें खोल दीं। मदनरेखा की बड़ी-बड़ी तथा सुन्दर आँखें देखकर, मणिप्रभ विद्याधर के हृदय की करुणा एक दम से विलीन हो गई और उस करुणा का स्थान, विषय-भोग की बुरी भावना ने ले लिया। वह अपने मन में कहने लगा, कि आज मुझे अनायास ही यह स्त्री-रत्न प्राप्त हुआ, यह मेरा कैसा सद्भाग्य है। मैं, मुनि दर्शन के लिए जा

रहा था, परन्तु मुनि दर्शन के फल-रूप यह सुन्दरी मुझे पहले ही प्राप्त हो गई है। मुझे, इस रूप की राशि को अपनी बना कर, इसके साथ सुख भोग करना चाहिए और अपना जीवन सफल करना चाहिए।

एक ओर मणिप्रभ विद्याधर तो मदनरेखा के विषय मे दुर्भावना पूर्वक इस प्रकार विचार रहा था, तथा दूसरी ओर, मदनरेखा कुछ और ही सोच रही थी। मूर्छा दूर होने पर तथा आँख खुलने पर, मदनरेखा ने, स्वयं को एक विमान मे एवं अपने समीप एक अपरिचित पुरुष को देखा। यह देखकर, मदनरेखा इस आशङ्का से भयभीत हुई, कि मैं फिर किसी सङ्कट में तो नहीं पड़ गई। यह पुरुष न मालूम कौन है। कहीं यह भी मेरे सतीत्व का ग्राहक न बन जावे।

मदनरेखा को, एक ओर तो इस प्रकार सतीत्व की चिन्ता हुई। दूसरी ओर उसे यह विचार भी हुआ, कि यदि यह पुरुष मेरे प्रति भ्रातृ भाव रखकर मेरा रक्षक बन जावे, तो मेरा भय भी मिट जावे और मैं विपत्ति से छुटकारा भी पा जाऊँ! इसके लिए यही अच्छा होगा, कि यह अपना कोई विचार प्रकट करे उससे पहले ही मैं ऐसी भूमिका बना दूँ, कि जिससे या तो इसके हृदय में किसी प्रकार की दुर्भावना पैदा ही न हो, या यह अपनी दुर्भावना प्रकट न कर सके। मैं, इस समय एकान्त में दूसरे

पुरुष के साथ हूँ। शील रक्षा की दृष्टि से यह स्थिति भयावह है, लेकिन जब ऐसा अवसर आ ही पड़ा है, तब मेरे को ऐसा प्रयत्न करना चाहिए, कि जिससे मेरा सतीत्व सुरक्षित रहे।

इस प्रकार सोचकर मदनरेखा ने, मणिप्रभ विद्याधर से कहा, कि—भाई! मुझ पर आपका बहुत उपकार है। यदि आपने मेरी रक्षा न की होती, मैं पृथ्वी पर गिरी होती, तो मेरी जीवन यात्रा अवश्य ही समाप्त हो जाती। लेकिन आपने मुझे मरने से बचा लिया। इतना ही नहीं, किन्तु आपने मेरी मूर्छा भी मिटाई। मैं, इस उपकार के लिए आपकी चिरऋणी हूँ। मुझे, इस विपत्तावस्था में आप जैसा सुयोग्य तथा प्राण रक्षक भाई मिला, यह परमात्मा की असीम कृपा है।

मणिप्रभ विद्याधर के हृदय मे मदनरेखा के प्रति जो दुर्भावना उत्पन्न हुई थो, उसके कारण वह मदनरेखा की ओर से यह आशा रखता था, कि यह विपत्ति की मारी इस निर्जन वन मे अकेली आ पड़ी है और मेरे द्वारा इसके प्राणो की रक्षा हुई है, इसलिए यह विपत्ति मे छुटकारा पाने तथा अपना भविष्य सुखमय बनाने के लिए स्वयं ही मुझ से यह प्रार्थना करेगी, कि आप मुझे अपनी पत्नी बना कर दुःख से मुक्त कीजिये। लेकिन जब उसने मदनरेखा के मुँह से अपने लिए कहा गया "भाई" शब्द सुना, तब बहुत ही निराशा हुई। वह मदनरेखा से कहने लगा, कि

हे सुन्दरी ! तुम किसको भाई बना रही हो, इसका विचार करो। तुम, मुझको नहीं जानती हो, इसीलिए तुमने ऐसा कहा है। मैं, तुमको अपना परिचय देता हूँ, जिसे सुनकर तुम स्वयं ही निर्णय कर लोगी, कि तुम्हारे लिए मुझे भाई बनाना अच्छा है, या पति बनाना। मै, विद्याधरों का राजा मणिप्रभ हूँ। वैताढ्यगिरि की दो श्रेणियें जिनमे विद्याधरों के ११० नगर हैं उनका स्वामी हूँ। विद्याधरों के जितने भी राजा हैं, उन सब में, मैं प्रत्येक दृष्टि से श्रेष्ठ हूँ। तुम्हारा सद्‌भाग्य है, कि मै अनायास ही तुम्हे प्राप्त हो गया, तुम्हारे प्राणों की रक्षा हुई और तुम्हारा भविष्य सुखमय बनाने के लिए, मैं तुम्हे अपनी पत्नी बनाने का विचार कर रहा हूँ। तुम, दूसरे सब विचार और दूसरी सब बातों को छोड़कर, मुझे अपना पति बनाओ तथा मेरे इस शरीर का आनन्द लेकर, सुखपूर्वक मेरे भव्य महल मे रहो।

विद्याधर का कथन सुनकर मदनरेखा समझ गई, कि मैं फिर सङ्कट में आ पड़ी हूँ। वह अपने मन में कहने लगी, कि शील की रक्षा के लिए मैं घर त्याग कर वन में आई, परन्तु यहाँ भी मेरा सतीत्व सुरक्षित नहीं है। कुएँ से निकल कर गड्ढे में गिरने की कहावत के अनुसार उस दुःख से छूट कर मैं फिर इस दुःख मे पड़ गई हूँ। जान पड़ता है, कि विपत्ति उसी प्रकार मेरे पीछे पड़ी हुई है, जिस तरह भागने पर भी मृगी के पीछे वधिक

दौड़ता है। मैं, मणिरथ के पंजे से छूटकर, इस मणिप्रभ के पंजे में फँस गई हूँ। इस तरह की प्राण रक्षा की अपेक्षा तो यही अच्छा था, कि मैं पृथ्वी पर गिर जाती और मेरा यह शरीर नष्ट हो जाता। यदि ऐसा होता, तो मुझे फिर तो इस संकट में न पड़ना पड़ता। सतीत्व नष्ट होने के भय से तो मुक्त हो जाती। यह चिन्ता तो न रहती, कि वृक्ष मे झोली बाँध कर जिसे सुला आई हूँ, उस मेरे नवजात शिशु का क्या होगा। लेकिन अभी मुझे न मालूम कैसे कैसे संकट सहने हैं, इसी से मुझ मरती हुई को भी इस विद्याधर ने बचा लिया है। इस विद्याधर ने पहले मेरा सौन्दर्य नहीं देखा था, इसलिए इसने करुण-भावना से प्रेरित होकर मुझे बचाया, परन्तु मेरा सौन्दर्य देखने के पश्चात, इसके हृदय की करुणा का स्थान दुर्भावना ने ले लिया है। मेरे इस शारीरिक रूप-सौन्दर्य ने, कैसे-कैसे पवित्र पुरुषों मे विकार उत्पन्न किया है! मेरे रूप-सौन्दर्य के कारण ही, मेरे जेठ के हृदय में विकृति उत्पन्न हुई तथा इस दयालु विद्याधर के हृदय की दयालुता भी, मेरे रूप-सौन्दर्य ने ही नष्ट की है। इस रूप-सौन्दर्य के कारण ही मेरे को अभी न मालूम कैसे-कैसे कष्ट सहने हैं! कुछ भी हो, मैं अपना सतीत्व कदापि नष्ट न होने दूँगी। मैं अपने प्राण देकर भी, अपने सतीत्व की रक्षा करूँगी। मणिरथ ने मेरे पति का शरीर नष्ट किया, तो मणिप्रभ

मेरा शरीर नष्ट करेगा। इससे अधिक क्या हो सकता है! यह भौतिक शरीर, अन्त मे तो नष्ट होना ही है। फिर इसका शील को रक्षा के मार्ग मे नष्ट होना, क्या बुरा है। मै शील के सामने न तो अपने प्राणों को ही अपेक्षा कर सकती हूँ, न अपने उस नवजात पुत्र की ही, जिसे मैं वृक्ष की डाली मे झोली बाँध कर सुला आई हूँ। यद्यपि अपने बालक की मै रक्षा ही चाहती हूँ और उसको रक्षा के लिए अपने प्राण तक दे सकती हूँ, परन्तु शील के सन्मुख मैं उसे भी उपेक्षणीय ही मानती हूँ।

इस प्रकार का निश्चय करके, मदनरेखा ने मणिप्रभ विद्याधर से कहा, कि वीर! आप ऐसा क्या कह रहे हैं! मेरे सम्बन्ध में आपको ऐसा कहना उचित नहीं है। मैं तो आपको भाई ही कह रही हूँ, परन्तु वास्तव में, आप मेरे पिता हैं तथा मैं आपकी पुत्री हूँ। पिता, सन्तान को जन्म देने, उसकी रक्षा करने और उसको पालने-पोषने के कारण ही 'पिता' कहलाता है तथा जो उसकी सन्तान है, उसके प्रति वह पिता कहलाने वाला व्यक्ति सद्भाव ही रखता है, दुर्भाव नहीं लाता। आपने भी मुझे जीवन-दान दिया है, मेरी रक्षा की है, मुझे मरती हुई को बचाया है, इसलिए आप भी मेरे पिता हैं और मैं आपकी पुत्री हूँ। आपके प्रति मुझ को वे ही भाव रखने चाहिएँ, जो भाव पुत्रो के हृदय मे पिता के प्रति होते हैं। इसी प्रकार आपको भी मेरे प्रति वैसा

ही भाव रखना उचित है, जैसा भाव पिता का अपनी पुत्री के प्रति होता है। आप, अपने हृदय में मेरे लिए किंचित् भी दुर्भावना न आने दीजिये। मुझे, अपनी बहन या पुत्री ही मानिये।

मदनरेखा के कथन के उत्तर में मणिप्रभ विद्याधर कुछ रुष्ट होकर कहने लगा, कि तुम इस तरह की बातें करना त्याग कर, जैसा मै कहता हूँ वैसा करो। तुमको मैं अपनी बहन या पुत्री नही बनाना चाहता, किन्तु अपनी पटरानी बनाना चाहता हूँ। तुम, मेरे इस कथन को प्रसन्नता से स्वीकार कर लो। इसी मे तुम्हारा हित है। तुम, मेरे साथ चलो। मैं तुम्हे किसी तरह का कष्ट न होने दूँगा, किन्तु तुम्हे प्रसन्न रखना अपना कर्त्तव्य मानूँगा और तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य न करूँगा। इस समय तुम, सर्वथा मेरे आधीन हो। तुम्हे मेरी बात माननी ही पड़ेगी, फिर तुम सीधी रीति से ही मेरा कथन क्यों नहीं मान लेती हो। चलो, मेरे साथ मेरे घर चलो और मेरी पटरानी बनो। तुमको मैं हृदय से चाहता हूँ। तुम अपने लिए यह सौभाग्य की बात मानो, कि तुम्हे मैं अपनी पटरानी बना रहा हूँ।

यह कहकर मणिप्रभ ने, अपने विमान का मुँह वैताढ्यगिरि की ओर फिराया। मदनरेखा ने जब देखा, कि यह इस समय मोह से भरा हुआ है और समझाने से समझने वाला नहीं है तथा इस समय इससे कुछ अधिक कहना व्यर्थ है, तब उसने दूसरे

मार्ग का सहारा लिया। उसने मणिप्रभ से कहा, कि आप यदि पिता या भाई कह कर सम्बोधन करने से रुष्ट होते हैं, तो लीजिये, मैं आपको पिता या भाई न कह कर राजा कहती हूँ और आपसे पूँछती हूँ, कि हे राजन्! आप मेरे से घर चलने के लिए कहते हैं, परन्तु यह तो बताइये, कि इस समय आप कहाँ जा रहे थे? और जहाँ जा रहे थे, वहाँ अब क्यों नहीं जाते हैं? वापस घर को क्यों लौटे जा रहे हैं?

मदनरेखा के मुँह से अपने लिए 'राजा' शब्द सुनकर, मणिप्रभ विद्यधार प्रसन्न हुआ। उसको, मदनरेखा की ओर से इस बात की आशा हुई, कि अब यह मुझे स्वीकार कर लेगी। उसने प्रेम पूर्वक मदनरेखा से कहा, कि—हे प्राणप्यारी! मेरे पिता मणिचूड राजा, अपना राजपाट मुझे सौंपकर संयम मे प्रवर्जित हुए हैं। आज मेरे भाई से मैंने सुना, कि मेरे संयमधारी पिता, सुविहित संयमी हैं और उन्हे चार ज्ञान भी प्राप्त हुए हैं। यह सुनकर, मैं पिता के दर्शन करने के लिए जा रहा था। सद् भाग्य से, मार्ग में तुम मिल गई। तुम्हारा शरीर बहुत कृष तथा अशक्त है, इसलिए मैंने यह विचार किया है, कि तुमको महल में छोड़ आऊँ, जहाँ तुम्हारे शरीर का उपचार हो और फिर मुनि के दर्शन करने के लिए जाऊँ।

मणिप्रभ विद्याधर का कथन सुनकर, मदनरेखा इस विचार

से प्रसन्न हुई, कि यद्यपि इस समय यह कामान्ध होकर धर्म को भूल रहा है, फिर भी यह कुलीन है इसमें मेरे लिए भय की कोई बात नहीं है। पथ-भ्रष्ट कुलीन व्यक्ति को पथ पर लाना, कुछ कठिन नहीं होता। जिसके पिता सुविहित साधु और चार ज्ञान के धारक हैं, उस कुलीन व्यक्ति की दुर्बुद्धि मिटाना बहुत ही सरल है।

इस प्रकार विचारती हुई मदनरेखा ने मणिप्रभ से कहा, कि हे महाराज! आपके पिता सुविहित अनगार और चार ज्ञान के धारक हैं, यह जानकर मुझे बहुत ही प्रसन्नता हुई है। मेरा हृदय हर्षित हो उठा है। इस समय मेरे लिए आप ही आधार हैं, इसलिए यदि आप मेरी एक इच्छा पूर्ण करना स्वीकार करें, तो मैं आपके सामने अपनी इच्छा प्रकट करूँ?

मदनरेखा का यह कथन सुनकर, मणिप्रभ विद्याधर इस विचार से प्रसन्न हुआ, कि अब यह मेरी ओर आकर्षित हुई है, इसीमे यह अपने लिए मुझे ही आधार मान रही है एवं मेरे द्वारा अपनी इच्छा पूर्ण कराना चाहती है। वास्तव मे, स्त्रियाँ प्रसन्नता पूर्वक किसी पुरुष की ओर तभी आकर्षित होती हैं, जब उस पुरुष द्वारा उनकी इच्छा पूर्ण कर दी जाती है। यह, जब मेरे को आधार मानकर मेरे द्वारा अपनी इच्छा पूर्ण कराना चाहती है, तब मुझे यह मान लेना चाहिए, कि यह मेरी हो चुकी। इसके कथन से

स्पष्ट है, कि यह मेरी पटरानी बनना स्वीकार करती है, लेकिन इस प्रतिवन्ध के साथ, कि मै इसकी इच्छा पूर्ण कर दूँ।

प्रसन्न होते हुए मणिप्रभ विद्याधर ने मदनरेखा से कहा, कि तुम्हारी क्या इच्छा है? तुम, अपनी इच्छा निःसंकोच प्रकट करो। तुम यह विश्वास रखो, कि मेरे सामने प्रकट करने पर तथा मुझ से पूर्ण करने की प्रार्थना करने पर, तुम्हारी इच्छा कदापि अपूर्ण नहीं रह सकती।

मणिप्रभ द्वारा इस प्रकार विश्वास दिलाये जाने पर मदनरेखा ने उससे कहा, कि आपसे मैं केवल यही चाहती हूँ, कि आप मुझे भी अपने मुनिव्रतधारी पिता के दर्शन का दान दीजिये। मेरा हृदय, मुनि का दर्शन करने के लिए बहुत उत्कण्ठित हो रहा है। मैं विश्वास करती हूँ, कि आप मेरी यह इच्छा अवश्य ही पूर्ण करेंगे। यह प्रार्थना करने के साथ ही, मैं अपना यह निश्चय सुना देना भी उचित समझती हूँ, कि यदि मेरी यह इच्छा पूर्ण न हुई, मुझे उन मुनि के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त न हुआ, तो उस दशा में मैं अपना जीवन भी नहीं रख सकती।

मदनरेखा की इच्छा और उसका निश्चय सुनकर, मणिप्रभ विद्याधर अधिक प्रसन्न हुआ। वह अपने मन में सोचता था, कि इसकी यह इच्छा पूर्ण करना बहुत सरल है। इस इच्छा की पूर्ति होते ही, यह अवश्य ही मेरी पत्नी बन जावेगी। इच्छा

पूर्ण हुए बिना, स्त्रियाँ प्रसन्न भी नहीं हुआ करती हैं। इसलिए इसको प्रसन्न करने के वास्ते, मुझे इसकी इच्छा पूर्ण कर देनी चाहिए। और इसे मुनि का दर्शन करा देना चाहिए। इस कार्य में, मुझे देर भी क्या लग सकती है। मेरे पास विमान है। मैं इसको मुनि का दर्शन करा कर थोड़ी ही देर में लौट आऊँगा और फिर इसको अपनी पत्नी बना कर, इसके साथ सुख-भोग करूँगा।

मणिप्रभ तो इस प्रकार सोच रहा था, लेकिन मदनरेखा यह सोच रही थी, कि यह विद्याधर किसी तरह एक बार मुझे लेकर उन सुविहित मुनि के पास तक तो चले! फिर तो यह, मुनि के उपदेश से सुधर कर मार्ग पर आ ही जावेगा। इस प्रकार, दोनों अपना अपना दाँव देख रहे थे, और अपने-अपने विचार से प्रसन्न हो रहे थे।

मणिप्रभ विद्याधर ने मदनरेखा से कहा, कि तुमने जो इच्छा की है, वह साधारण ही है। मैं यदि तुम्हारी यह इच्छा भी पूर्ण न करूँगा तो फिर और किस की इच्छा पूर्ण करूँगा? लो, मैं अभी थोड़ी ही देर में तुम्हे मुनि का दर्शन कराये देता हूँ और फिर लौट कर, अपन महल मे सुखमय जीवन व्यतीत करेंगे।

मदनरेखा सहित विमान में बैठा हुआ मणिप्रभ विद्याधर, मुनि का दर्शन करने के लिए चला। मार्ग में, दोनों ही व्यक्ति

अपनी अपनी भावना के अनुसार विचार करते जाते थे, तथा मन में प्रसन्न होते जाते थे।

थोड़ी ही देर में विमान वहाँ जा पहुँचा, जहाँ राजा मणिप्रभ के संयमधारी पिता विराजते थे। उस स्थान पर पहुँच कर मणिप्रभ विद्याधर भी विमान से उतरा और मदनरेखा भी विमान से उतरी। उस समय मदनरेखा तो इस विचार से प्रसन्न थी कि अब मैं भय-मुक्त हुई हूँ, मेरे सतीत्व की रक्षा हुई है और मणिप्रभ इस विचार से प्रसन्न था, कि मैंने इस सुन्दरी की इच्छा पूर्ण कर दी है, इसलिए अब यहाँ से लौटकर मैं इसे अपनी पत्नी बना, इसके साथ सुख पूर्वक दाम्पत्य जीवन बिताऊँगा तथा इस प्रकार अपना जीवन सफल करूँगा।
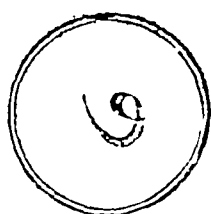
# सन्त समागम

सन्त-समागम की प्रशंसा सभी शास्त्र, सभी ग्रन्थ और सभी विचारक लोग करते हैं। सन्त-समागम को, पारस-लोह स्पर्श से भी अधिक महत्त्व दिया गया है। सन्तों को पारस से भी बढ़कर कहने वाले यह युक्ति देते हैं, कि पारस से स्पर्श होने पर भी लोह सोना ही बनता है, पारस नहीं बनता; लेकिन सन्तों के समागम मे आनेवाला व्यक्ति, सन्त बन जाता है। तुलसीदासजी ने सन्त-समाज को तीर्थराज का रूपक देते हुए कहा है कि—

मज्जन फल पेखिय ततकाला,<br>
काक होहिं पिक बकहु मराला।

सुनि अचिरज करै जनि कोई,
सतसंगति महिमा नहि गोई॥

अर्थात्--सन्त समाज रूपी तीर्थराज मे मज्जन करने का फल, तत्काल दिखाई देता है। इस तीर्थराज मे मज्जन करनेवाला, यदि कौए के समान हे तो वह कोयल की तरह का हो जाता है और यदि बगुले की तरह का है, तो हंस की तरह का हो जाता है। इस विषय में, किसी को आश्चर्य न करना चाहिए। क्योंकि, सत्सङ्ग की महिमा ऐसी ही है, जो छिपी हुई नहीं है।

सत्सङ्ग की इस प्रकार प्रशंसा करके तुलसीदासजी यह बताते हैं, कि सत्सङ्ग मे ऐसी क्या विशेषता है, जिससे कौए की तरह का मनुष्य कोयल की तरह का और बुगले की तरह का मनुष्य हंस की तरह का हो जाता है। इसके लिए वे कहते हैं:—

बिनु सत्सङ्ग विवेक न होई।

उनका कथन है कि सत्सङ्ग के बिना विवेक नहीं होता। जब तक विवेक नहीं है, तभी तक मनुष्य कौए या बगुले की तरह का रहता है, लेकिन जब सत्सङ्ग से विवेक होता है, अविवेक मिट जाता है तब कौए और बगुले की तरह के मनुष्य का कोयल और हंस की तरह का होना स्वाभाविक है। इस कथन का यह अर्थ नहीं है कि मनुष्य आकृति और रंग में कौए या बगुले की तरह का होता है, किन्तु कौए, बगुले, कोयल और हंस की उपमा

देकर यह बताया गया है कि दुर्गुणी व्यक्ति भी सत्सङ्ग के प्रभाव से सद्गुणी बन जाता है।

उक्त कथन इस प्रकरण से पूरी तरह सिद्ध होता है। मणिप्रभ विद्याधर में पर-स्त्री को अपनी बनाने का कैसा दुर्गुण था! वह मदनरेखा के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर कैसा अनुचित कार्य करना चाहता था, यह बात पिछले प्रकरण में बताई गई है। उसमें जो दुर्गुण था या वह जो कुछ करना चाहता था, वह सब अज्ञान के कारण। वह इस सम्बन्ध में अपने हिताहित और कर्त्तव्या-कर्त्तव्य को नहीं जानता था। यद्यपि मदनरेखा सब कुछ जानती थी वह सतीत्व की रक्षा के लिए ही वन में आई थी, इसलिए उसका मणिप्रभ के विचार से विरुद्ध विचार रखना स्वाभाविक था, लेकिन वह महान् मोह में घिरे हुए मणिप्रभ पर अपने विचारों का प्रभाव डालने और अविवेक मिटाने में असमर्थ रही। फिर भी:—

विधिवश सुजन कुसंगति परहीं।
फणि मणि सम निज गुण अनुसरहीं॥

अर्थात्—यदि योगायोग से सज्जन लोग कुसंगति में पड जाते हैं, तो उस समय भी वे अपने सद्गुणों की उसी प्रकार रक्षा करते है, जिम प्रकार साँप के साथ रहने वाली मणि अपना गुण नहीं जाने देती, किन्तु सुरक्षित रखती है।

इसके अनुसार मदनरेखा ने, मोहग्रस्त मणिप्रभ के पंजे में

फँसकर भी, अपने सतीत्व की रक्षा की और उसकी दुर्भावना मिटाने तथा उसका मोह हटाने के लिए, उसने उसको सन्त-समागम कराने का उपाय किया। मदनरेखा द्वारा किया गया उपाय, सफल भी हुआ। वह, मणिप्रभ को सन्त की सेवा में ले आई। सन्त की सेवा में पहुँचने पर और उनका सदुपदेश सुनने पर, मणिप्रभ का अज्ञान किस तरह मिट गया, उसका दुर्गुण किस प्रकार नष्ट हो गया तथा वह कैसा सद्गुणी एवं सदाचारी बन गया, आदि बातें इस प्रकरण में बताई गई हैं।

परस्पर विरुद्ध भावना के रंग में रंगे हुए मणिप्रभ और मदनरेखा—दोनों, उन सुविहित तथा अतिशय ज्ञान धारक मुनि की सेवा में उपस्थित हुए। दोनों, उन मुनि को विधि पूर्वक वन्दना करके यथा योग्य स्थान पर बैठ गये। मुनि का दर्शन करके, मदनरेखा को सीमातीत प्रसन्नता हुई। वह अपने मन में कहने लगी, कि आज का दिन कैसा अच्छा है, जो मुझे इस कष्ट के समय में भी इन मुनि का दर्शन हुआ। इन मुनि के दर्शन की इच्छा मात्र से ही मेरा उस सङ्कट से उद्धार हुआ है, जो वन में विद्यमान था, तो अब तो मैं मुनि की सेवा में ही आगई हूँ। इसलिए अब मेरा सब दुःख उसी तरह चला गया है, जिस प्रकार कल्पवृक्ष या चि
हो जाने पर, सब भौतिक दुःख मिट जाते हैं।

यही भावना है, कि इस मेरे भाई मे जो दुर्बुद्धि आ रही है वह मिट जावे और यह मुझे अपनी बहन माने। मुझे विश्वास है, कि यह भाई इन मुनि की सेवा में आ गया है, इसलिए इसकी भावना अवश्य ही बदलेगी, और यह सद्बुद्धि धारण करेगा। अच्छा हुआ, जो यह भाई मेरी बात मानकर इन मुनि की शरण मे आगया। इस भाई में विकार आने पर जिस तरह इसको मुनि का दर्शन हो गया, उसी तरह मेरे जेठ मे जिस समय विकार आया था, उस समय यदि उन्हे भी ऐसे मुनि का दर्शन हो जाता तो उनके द्वारा जो अनर्थ हुआ वह क्यों होता! परन्तु वह अनर्थ अवश्यम्भावी था, इसी से उन्हे मुनि का दर्शन नहीं हुआ। जो होना था वह हुआ, अब तो मैं यही चाहती हूँ, कि इस भाई की भावना शुद्ध हो तथा यह सुमार्ग पर आवे।

मुनि सेवा मे बैठी हुई, मदनरेखा तो इस प्रकार विचार रही थी और मणिप्रभ विद्याधर यह सोच रहा था, कि मैं कब यहाँ से जाऊँ तथा इस अप्सरा जैसी स्त्री को अपनी पत्नी बनाकर, इसका आलिङ्गन करूँ। तीसरी ओर वे चार ज्ञान के धारक मुनि, मदनरेखा का पूर्व एवं वर्त्तमान वृत्तान्त अपने ज्ञान से जान रहे थे और मणिप्रभ विद्याधर मे मदनरेखा के प्रति जो दुर्भावना थी, वह भी उन मुनि से छिपी हुई न थी। साथ ही, उन्हे यह भी ज्ञात था, कि यह सती अपने सतीत्व की रक्षा के लिए ही मणिप्रभ

को यहाँ लाई है तथा चाहती है, कि मणिप्रभ की भावना शुद्ध हो जावे। यह जानने के कारण उन मुनि ने, साधारण रूप से प्रसङ्गोचित उपदेश देना प्रारम्भ किया। यद्यपि मणिप्रभ विद्याधर, मुनि के समीप से मदनरेखा को लेकर अपने घर जाने के लिए उत्सुक हो रहा था, परन्तु वे मुनि उसके पिता थे, इसलिए वह ऐसा न कर सका। इतने ही में, वे मुनि प्रसङ्गोचित उपदेश सुनाने लगे। उन चार ज्ञान के धारक मुनि के मर्म स्पर्शी उपदेश का, मणिप्रभ विद्याधर के हृदय पर यथेष्ट प्रभाव पड़ा। वह कुलीन था, इसलिए मुनि का उपदेश सुनकर उसके हृदय की दुर्भावना उसी प्रकार मिट गई, जिस प्रकार सूर्योदय से घना अन्धकार भी मिट जाता है। वह, मदनरेखा के प्रति किये गये अपने व्यवहार के लिए मन ही मन पश्चात्ताप करने लगा तथा कहने लगा, कि आज मैं किस तरह पतित हो रहा था। मैं खेचर हूँ और यह भूचरी है, फिर भी मेरे हृदय में इसके प्रति दुर्भावना हो आई और मैं, धर्म एवं मर्यादा का उल्लंघन करने के लिये तय्यार हो गया। वल्कि इस सती ने तो अपने सतीत्व की रक्षा के लिए मुझे भाई और पिता ही कहा, परन्तु मुझे, इसको बहन बनाना पसन्द न था। मैं तो, इसे अपनी पत्नी बनाना चाहता था। यदि मेरी भावना की तरह इस सती की भी भावना खराब हो गई होती, तब तो मैं पतित होकर अपने कुल और धर्म को कलङ्कित

कर ही देता ! लेकिन यह अपने व्रत नियम पर दृढ़ रही तथा इसने जब मेरी दुर्भावना मिटती न देखी, तब यह मुझे यहाँ ले आई। इस प्रकार इस सती ने, मुझे भी पतित होने से बचा लिया और अपने सतीत्व की भी रक्षा की। मैंने तो इसे पृथ्वी पर गिरने से ही बचाया, परन्तु इसने मुझे नरक मे गिरने से बचाया है। यदि यह सती मुझे इन मुनि के पास न ले आती तथा इन मुनि ने यह उपदेश न दिया होता, तो मेरे पतन में शेष ही क्या रहा था !

इस प्रकार विचार कर मणिप्रभ विद्याधर, हाथ जोड़कर उन मुनि के सामने खड़ा हुआ। वह, मुनि से नम्रता पूर्वक प्रार्थना करने लगा, कि हे प्रभो! मेरे साथ आपका दर्शन करने के लिए आई हुई इस सती के प्रति, मेरे हृदय में दुर्भावना हुई थी। मैं, इसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर आप भी पथ-भ्रष्ट होना चाहता था और इस सती को भी पथ-भ्रष्ट करना चाहता था। आपके सदुपदेश से, मेरी वह दुर्भावना मिटी है। मेरे में वह दुर्भावना आई, इसके लिए मुझे पश्चात्ताप है। भविष्य में मेरे हृदय में किसी भी स्त्री के प्रति दुर्भावना न हो, इसके लिए मैं आपके सामने यह प्रतिज्ञा करता हूँ, कि आज से मेरे लिए—मेरी विवाहिता-पत्नी के सिवा दूसरी सब स्त्रियाँ, माता या बहन के समान हैं। कृपा करके, आप मुझे पर-स्त्री का प्रत्याख्यान करा दीजिये।

मणिप्रभ विद्याधर की प्रार्थनानुसार, मुनि ने उसे पर-स्त्री का प्रत्याख्यान कराया। मुनि से पर-स्त्री का प्रत्याख्यान लेकर, मणिप्रभ विद्याधर, मदनरेखा के सामने उपस्थित हुआ। वह अपने दोनों हाथ जोड़कर मदनरेखा से कहने लगा, कि हे बहन! मैंने आपका बहुत अपराध किया है। आपके लिए ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है, जिनका प्रयोग करना सर्वथा अनुचित था। मैंने ऐसा अपराध किया, फिर भी आपने मुझ पर उपकार ही किया है। मैं आपका उपकार कदापि विस्मृत नहीं कर सकता। मुझ पापी को, आप इन महात्मा के पास ले आई और इन महात्मा के सदुपदेश से मेरे हृदय की दुर्भावना मिटी, यह आपकी कैसी कृपा है! यदि आप मुझे इन महात्मा के पास न लाई होती, अथवा जैसी दुर्भावना मेरे में आई थी वैसी ही दुर्भावना आप में आ गई होती, तब तो अनर्थ ही होजाता, लेकिन आपने अपने बुद्धिबल से, मुझे भी बचा लिया और स्वयं के सतीत्व की भी रक्षा की। मैं, इसके लिए आपका बहुत उपकार मानता हूँ तथा अपने अपराधों के लिए आपसे क्षमा माँगता हूँ।

रुँधे कण्ठ से यह कहता हुआ मणिप्रभ विद्याधर, मदनरेखा के पैरों पर गिर पड़ा। उस समय मदनरेखा मणिप्रभ को उपालम्भ दे सकती थी, परन्तु उसने उपालम्भ देने के बदले उसको सान्त्वना देने के लिए उससे कहा, कि—भाई, आप किसी प्रकार का खेद न

करो। आपने, मेरा कोई अपकार नहीं किया है, किन्तु उपकार ही किया है। आपने मेरे प्राण बचाये और मुझे इन मुनि का दर्शन कराया, यह आपका मुझ पर अनन्त उपकार है। रही मुझ से आपने जो कुछ कहा उस सम्बन्ध की बात, लेकिन आप जैसे उपकारी मनुष्य से यदि कोई भूल हो भी जावे, तो वह भूल क्षम्य ही मानी जाती है, अक्षम्य नहीं मानी जाती। और अब तो आपने अपनी उस भूल के विषय में पश्चात्ताप किया है तथा भविष्य के लिए परदारा का त्याग किया है, इसलिए खेद करने की कोई बात ही नहीं रही! आप वीर हैं, वीर पर ही उपदेश का प्रभाव पड़ सकता है। वीर ही, अपनी भूल को भूल मान सकता है। आप किसी प्रकार का खेद न करिये, किन्तु इस बात के लिए प्रसन्नता मानिये, कि इस घटना के कारण आप पर-स्त्री का त्याग कर सके और सदा के लिए इस तरह के पाप से बच सके।

इस प्रकार कहकर मदनरेखा ने, मणिप्रभ विद्याधर को धैर्य दिया। मदनरेखा के वचनों से सन्तुष्ट होकर, मणिप्रभ विद्याधर अनुत्सुक भाव से मुनि की सेवा में शान्त बैठा। मणिप्रभ विद्याधर को शान्त करके मदनरेखा ने विचार किया, कि मैं जिस संकट में पड़ गई थी, उस संकट से तो मुक्त हो गई और मेरे इस भाई की भावना भी सुधर गई, परन्तु जिस नवजात शिशु को मैं वृक्ष की डाली में झोली बाँध कर सुला आई थी, उस बालक की कुशल तथा उसके भविष्य

के विषय में इन अतिशयज्ञानी मुनि से पूछना चाहिए। साथ ही, इन मुनि से यह भी जानना चाहिए, कि वह बालक होनहार जान पड़ता है, फिर भी उसका जन्म वन मे एवं संकटपूर्ण स्थिति में क्यों हुआ।

इस प्रकार विचार कर मदनरेखा ने, वन में पुत्र का जन्म आदि वृत्तान्त उन मुनि को सुनाकर उनसे प्रार्थना की, कि हे महात्मन्! यदि आपको कष्ट न हो और आप उचित समझें, तो कृपा करके मुझे उस पुत्र का भूत भविष्य तथा वर्त्तमान सम्बन्धी सब हाल बताने की कृपा कीजिये। मैं, उसका भूतकालीन वृत्तान्त जानने के लिए तो बहुत उत्सुक नहीं हूँ, परन्तु वर्त्तमान एवं भविष्य विषयक समाचार जानने के लिए मेरे हृदय मे बहुत चाह है। इसलिए आप जैसा उचित समझें, वैसा करने की कृपा कीजिये।

सामान्य साधु, साधारणतया इस तरह की बातों के सम्बन्ध मे कुछ नहीं कह सकते, लेकिन वे मुनि आगम विहारी थे। आगम विहारी साधुओं के लिए किसी नियम विशेष का प्रतिबन्ध नहीं हुआ करता, किन्तु वे अपने ज्ञान में जैसा देखते और जो उचित मानते हैं, वही करते हैं। उन मुनि ने, मदनरेखा द्वारा किये गये प्रश्न का उत्तर देने में लाभ देखा, इसलिए वे मुनि मदनरेखा से कहने लगे, कि—हे धर्मपरायण महिला! तुम अपने उस पुत्र के विषय में किसी प्रकार की चिन्ता न करो, जिसे तुम वन में जन्म देकर वृक्ष की

मेरे ही लिए इस वृक्ष की डाली मे झोली बॉध कर सुलाया गया था। यदि ऐसा न होता, तो यह घोड़ा मेरे को लेकर क्यों भागता, इस घोर वन में मुझे क्यों ले आता, इस वृक्ष के समीप ही मैं इसकी लगाम ढीली क्यों करता, यह इसी वृक्ष के नीचे क्यों रुकता और मैं विश्राम क्यों करने लगता! इन सब बातों पर विचार करनें से यही जाना जाता है, कि इस बालक से मेरा पूर्व का कोई सम्बन्ध है। मेरी, सन्तान-विषयक इच्छा पूर्ण करने के लिए ही, यह मुझे प्राप्त हुआ है। यह बालक आज का ही जन्मा हुआ जान पड़ता है, परन्तु यहाँ किसी स्त्री या पुरुष का अस्तित्व तो नहीं पाया जाता! ऐसी दशा में, यह बालक यहाँ कैसे आया और इसको किसने जन्म दिया है। यह कहीं से आया हो तथा इसको किसी ने भी जन्म दिया हो, मुझे इस प्रपंच में न पड़ना चाहिए, किन्तु इस बालक को अपने घर ले जाना चाहिए और पटरानी को देकर उसकी चिन्ता मिटानी चाहिए। लेकिन कहीं पटरानी यह कह कर इस बालक से घृणा तो न करेगी, कि यह बालक मेरा जन्मा हुआ नहीं है। पहले तो सन्तान–दुःखिनी पटरानी ऐसा न कहेगी, लेकिन कदाचित उसने ऐसा कहा भी, तो मैं उसको समझा दूँगा, जिससे वह इस बालक को अपना ही पुत्र मानेगी।

इस प्रकार सोचकर प्रसन्न होता हुआ राजा पद्मरथ तुम्हारे

पुत्र को लेकर बालक को अपने घोड़े पर बैठा मिथिलापुरी को चला। उसने बालक को अपने पास इस तरह से रखा था, जिससे बालक को कष्ट भी न हो और किसी को बालक का पास होना ज्ञात भी न हो। मिथिला में पहुँच कर बालक को लिये राजा पद्मरथ सीधा अपनी पटरानी के महल मे गया। योगायोग से उस समय उसकी पटरानी सन्तान विषयक चिन्ता में ही बैठी हुई यह सोच रही थी कि पति मुझे इतना आदर देते हैं, सब तरह से प्रसन्न रखते हैं, परन्तु मैं पति को एक सन्तान भी न दे सकी। यह मेरा कैसा दुर्भाग्य है! सन्तान हीन स्त्री का भी कोई जीवन है। रानी इस तरह की चिन्ता मे थी, उसी समय राजा पद्मरथ उसके सामने गया। पति को असमय मे अनायास आया देखकर रानी को कुछ आश्चर्य-सा हुवा। वह पति का स्वागत-सत्कार करने लगी। राजा पद्मरथ ने पटरानी के महल में पहुँचते ही पटरानी के पास उपस्थित दासियों को वहाँ से हटा दिया। फिर वह पटरानी से कहने लगा कि—प्रिये! तुम मेरा स्वागत-सत्कार करना रहने दो, किन्तु मैं तुम्हारे लिए एक लाल लाया हूँ, उसे लो। राजा के आने से पहले रानी, पुत्र विषयक चिन्ता में बैठी हुई थी, इसलिए उसका मुख उदास था। रानी ने सोचा कि पति मेरा उदास मुख देखकर उदासी का कारण अवश्य पूछेंगे। उस समय में पति से क्या कहूँगी। कोई झूठ बात

कहूँगी, तो पति उस झूठ बात पर विश्वास भी नहीं कर सकते तथा पत्नी के लिए पति से झूठ बोलना पाप भी है। और यदि चिन्ता का सच्चा कारण पति को बताऊँगी, तो इनको भी दुःख ही होगा।

इस प्रकार सोचकर, रानी अपने मुंह को राजा की दृष्टि से बचा रही थी। राजा का कथन सुनकर तो उसने अपना मुँह बिलकुल ही फिरा लिया और उसने उत्तर में राजा से कहा कि महाराज! मैं लाल को क्या करूँगी। आपने मुझे बहुत से हीरे-लाल दिये हैं, परन्तु उनसे मुझे सन्तोष नहीं है। निर्जीव लाल, मेरे तप्त हृदय को शान्त नहीं कर सकते। मुझे तो कुल दीपक पुत्र रूपी लाल चाहिए। इसलिए आप जो लाल लाये हैं उसे अपने ही पास रखिये, या कोष में डाल दीजिये। मुझे न दीजिये।

रानी का कथन सुनकर राजा समझ गया, कि रानी पुत्र कामना से दुःखी है। उसने कहा प्रिये! तुम इस लाल को एक बार देखो तो सही! रानी ने उत्तर दिया—स्वामिन्! मैं देखकर क्या करूँगी! जिसे लेकर आप स्वयं पधारे हैं और मुझे बड़े प्रेम से प्रदान कर रहे हैं, वह लाल अवश्य ही अच्छा होगा; परन्तु मैं पहले ही निवेदन कर चुकी हूँ, कि मुझे पुत्र-रत्न चाहिए। जड़ रत्नों की, मुझे आवश्यकता नहीं है। पुत्र-रत्न के लिए मैं किस

तरह तरस रही हूँ, इस बात को मैं ही जानती हूँ; आप नहीं जानते। सन्तान न होने पर स्त्रियों को कैसा मनस्ताप रहता है; इस बात को स्त्रियाँ ही जनती हैं; पुरुषों को इस बात का पता नहीं होता। मुझ अभागिनी ने आपके द्वारा सब प्रकार के सुख पाये, फिर भी मेरे द्वारा आपको एक भी सन्तान प्राप्त नहीं हुई, यह मेरे लिए कितने दुःख की बात है !

इस प्रकार कहती हुई पटरानी का गला रुँध गया। उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे। राजा ने सोचा, कि पुत्र के लिए दुःखी रानी को, अधिक समय तक दुःख मे न रहने देना चाहिए। ऐसा सोचकर उसने पटरानी से कहा, कि—महारानी! तुम एक बार मेरे पास आकर देखो तो सही! मैं, तुम्हारे लिए जड़ लाल नहीं लाया हूँ, किन्तु चैतन्य लाल ही लाया हूँ।

राजा का यह कथन सुनकर रानी, राजा के पास गई। राजा ने, अपनी गोद का बालक बता कर रानी से कहा, कि—मैं तुम्हारे लिए यह लाल लाया हूँ। बालक को देखकर, रानी साश्चर्य हर्षित हुई। उसने, राजा की गोद से बालक को प्रेम-पूर्वक उठा लिया। वह, बालक का चुम्बन करके कहने लगी, कि—स्वामिन्! आप इस बालक को कहाँ से लाये हैं? यह होनहार और प्रिय दर्शन बालक, किसका है? मुझे, इस बालक से बहुत स्नेह होता है। कहीं आप, मुझे ललचाने के लिए, यह बालक किसी से

माँगकर तो नहीं लाये हैं? अथवा मेरा दुःख मिटाने के लिए, अपनी राज-सत्ता का उपयोग करके, इसकी माता से इसे छीन तो नहीं लाये हैं? मैं, इस बालक को पाकर बहुत हर्षित हुई हूँ। यदि आप, वास्तव में यह बालक मेरे ही लिए लाये हैं और इस बालक को प्राप्त करने के लिए आपने किसी के साथ अन्याय नहीं किया है, तो मैं यही कहूँगी, कि मैं बड़ी सद्भागिनी हूँ। यह बालक, मेरे इस अन्धेरे घर को प्रकाशित करने वाला है। कृपा करके आप यह बताइये, कि आपको यह सुन्दर बालक कहाँ से तथा कैसे प्राप्त हुआ है।

वे मुनि, मदनरेखा से कहने लगे, कि—पटरानी के प्रश्न के उत्तर में राजा पद्मरथ ने, तुम्हारा बालक कहाँ तथा किस प्रकार प्राप्त हुआ, वह सब वृत्तान्त पटरानी को सुनाया। पति द्वारा कहा गया सब हाल सुनकर पटरानी कहने लगी, कि—महाराज! आपने जो कुछ कहा उसे सुनकर, मुझे इस विचार से आश्चर्य होता है, कि इस भव्य बालक को किस माता ने जन्म दिया और इसे वन में छोड़कर वह कहाँ चली गई! वह, किसी संकट में तो नहीं पड़ गई! यदि वह संकट में न पड़ी होती, तब तो इस बालक को अपने से अलग ही क्यों करती! कुछ भी हो, इस बालक को आप ले आये, यह अच्छा ही हुआ। मैं, इस बालक को अपना ही पुत्र मानूँगी। यदि मेरे पुत्र जन्मता भी, तो वह कैसा

होता यह कौन जाने, लेकिन मेरे सद्भाग्य से मुझे प्रसव सम्बन्धी कष्ट उठाये बिना ही ऐसा सुन्दर और भव्य पुत्र प्राप्त हुआ है।

रानी का कथन सुनकर राजा ने उससे कहा, कि—प्रिये! तुम्हारा कथन ठीक है और मैं भी इस बालक को अपना पुत्र बनाने के लिए ही लाया हूँ, परन्तु प्रत्येक कार्य उसकी विधि से ही होना चाहिए। यदि अपन पुत्र जन्म विषयक विधियाँ पूरी किये बिना ही इस बालक को अपना बतावेंगे, तो लोग अपना कथन स्वीकार न करेंगे। इसलिए तुम, इस पुत्र की जन्मदात्री माता की तरह प्रसूति गृह में बैठ कर यह प्रकट करो, कि मेरे गुप्त गर्भ था, जिसे मैंने किसी से प्रकट नहीं किया था, वह अब पुत्र रूप में जन्मा है। इसी प्रकार मैं भी पुत्र जन्मोत्सव मनाता हूँ। ऐसा करने पर ही, सब लोग इस बालक को हमारा पुत्र मान सकते हैं।

रानी ने अपने पति की बात स्वीकार करके वैसा ही किया, जैसा कि पति ने कहा था। सारे नगर मे यह बात फैल गई, कि महाराजा पद्मरथ के यहाँ पुत्र का जन्म हुआ है। इस समाचार को सुनकर, नगर-निवासियों को बहुत आनन्द हुआ। वे, हर्ष मना रहे हैं और राजा पद्मरथ भी पुत्र जन्मोत्सव कर रहा है। इस प्रकार तुम्हारा पुत्र, मिथिला में आनन्द से है। तुम उसके लिए चिन्ता करती हो और सोचती हो, कि वन में उसकी न मालूम क्या दशा हुई होगी, परन्तु तुम्हारा पुत्र पुण्यवान जीव है,

इसलिए वह मिथिला नगरी में पहुँच गया है तथा उसके पहुँचने से, मिथिला नगरी में आनन्द हो रहा है। पुण्यवान जीव किसी भी स्थिति मे पड़ गये हों, उन्हे कहीं भी कष्ट नहीं होता। कहावत ही है:—

भीमं वनं भवति तस्य पुरं प्रधानं।
सर्वोजनः सुजनता मुपयाति तस्य॥
कृत्स्नाच्च भूर्भवति सन्निधि रत्न पूर्णा।
यस्यास्ति पूर्व सुकृतं विपुलं नरस्य॥

*अर्थात्—जो मनुष्य पूर्व जन्म मे बहुत सुकृत करके आया है, इस जन्म मे उसके लिए घोर वन अच्छे नगर की भाँति सुख देने वाला हो जाता है, उसके लिए सब लोग सज्जनता का व्यवहार करने वाले हो जाते है और समस्त पृथ्वी, रत्न पूर्णा हो जाती है।*

हे चरम शरीरी! महापुरुषों की माता, राजा पद्मरथ के पुत्र नहीं है, इस कारण पद्मरथ के शत्रु इस विचार से प्रसन्न हो रहे थे, कि पद्मरथ के मरने के पश्चात्, उसका राज्य हम लेंगे। वे, पद्मरथ के प्रति विरोध रखते थे। परन्तु जब वे यह सुनेंगे, कि पद्मरथ के यहाँ पुत्र उत्पन्न हुआ है, तब विरोध भूलकर, भेंट ले राजा पद्मरथ के यहाँ उपस्थित होंगे और राजा पद्मरथ को नमन करेंगे। शत्रुओं के उस नमन को, राजा पद्मरथ तेरे बालक का ही प्रताप मानेगा एवं तेरे बालक का नाम नमिराज रखेगा। नमिराज कुछ काल तक राज्य-सुख भोगेगा और अन्त मे, संसार के

प्रति वैराग्य आने से, राजपाट आदि सब कुछ त्याग संयम लेगा तथा मोक्ष प्राप्त करेगा। तुम्हारा छोटा पुत्र नमिराज ही नहीं, किन्तु छोटे पुत्र को ही तरह तुम्हारा बडा पुत्र चन्द्रयश भी इसी भव मे सिद्ध बुद्ध मुक्त होगा।

मदनरेखा की इच्छानुसार, मदनरेखा के नवजात बालक का वर्तमान एवं भविष्यकालीन वृत्तान्त सुनाकर, वे मुनि मदनरेखा से बोले, कि—अब मैं तुम्हारे पुत्र का भूतकालीन वृत्तान्त सुनाता हूँ, और यह बताता हूँ, कि तुम्हारे पुत्र तथा राजा पद्मरथ के बीच, भूतकाल से क्या सम्बन्ध था एवं किस सम्बन्ध की पूर्ति के लिए तुम्हारे पुत्र का जन्म वन मे हुआ। तुम्हारा पुत्र और पद्मरथ इस समय तो पिता-पुत्र बने हैं, परन्तु पहले के कई भव में दोनों भाई-भाई रह चुके हैं। दोनों का भ्रातृ सम्बन्ध, जम्बूद्वीपान्तर्गत पूर्व विदेह में पुष्कलावती विजय के मणि तोरणपुर नगर से प्रारम्भ होता है। वे दोनों, मणि तोरणपुर नगर के चक्रवर्त्ती राजा अमितयश के पुत्र थे, जहाँ उनका नाम पुष्पशिखर और रत्नशिखर था। पुष्पशिखर तथा रत्नशिखर ने, एक चारण मुनि का उपदेश सुनकर संयम ले लिया। संयम का पालन करते हुए दोनों भाई, शरीर त्याग कर बारहवें देवलोक में देव हुए। देवलोक की स्थिति भोगकर, दोनों भाई, धात्रीखण्ड के भरत क्षेत्र में हरिसेन वासुदेव की रानी समुद्रदत्ता की कोंख से युग्म जन्मे। वहाँ, एक का नाम समुद्रदत्त था।

और दूसरे का नाम सागरदत्त था। दोनों भाइयों ने, वहाँ भी एक ही साथ संयम ले लिया। संयम लेने के तीसरे दिन, जब दोनों कायोत्सर्ग पूर्वक ध्यान मे थे तब, विद्युत् गिरी, जिससे दोनों भाई कालधर्म को प्राप्त होकर, महाशुक्र देवलोक मे देव हुए। जिस समय, भगवान अरिष्टनेमि को केवलज्ञान हुआ और भगवान अरिष्टनेमि गिरनार पर्वत पर समवशरण में विराजे, उस समय दोनो भाई, भगवान की सेवा करने के लिए समवशरण में उपस्थित हुए। भगवान को वन्दन-नमस्कार करके और भगवान का उपदेश श्रवण करके, दोनों भाइयों ने, भगवान से प्रश्न किया कि—हे प्रभो! हम दोनो भव्य और चरमशरिरी हैं अथवा अभव्य और अचरमशरीरी? इस प्रश्न के उत्तर में भगवान अरिष्टनेमि ने कहा, कि—हे देवो! तुम दोनों की आत्मा संयम की आराधना करने के कारण पवित्र है। तुम दोनो, भव्य और चरमशरीरी हो। इस समय तो तुम दोनों भाई भाई हो, परन्तु देव-स्थिति भोगने के पश्चात् एक का जन्म युगबाहु की पत्नी मदनरेखा से होगा और दूसरा, मिथिला का राजा पद्मरथ होगा। इस प्रकार तुम दोनों में भाई—भाई का सम्बन्ध न रहेगा, लेकिन इस सम्बन्ध के बदले, तुम दोनों मे पिता—पुत्र का सम्बन्ध हो जावेगा। युगबाहु की पत्नी मदनरेखा से जिसका जन्म होगा, वह, मदनरेखा की कोंख से जन्म मात्र लेगा। उसका पालन-पोषण पद्मरथ के यहाँ होगा और वह पद्मरथ का ही पुत्र कहा जावेगा,

जिसका नाम नमिराज होगा। वहाँ कुछ काल तक पुण्य-फल भोगकर, तुम दोनो क्रमशः संयम लोगे और मोक्ष प्राप्त करोगे।

भगवान अरिष्टनेमि का कथन सुनकर, दोनों देव बहुत प्रसन्न हुए। वे, भगवान को वन्दन नमस्कार करके, महाशुक्र देवलोक को लौट गये। वहाँ की स्थिति भोग कर, एक भाई तो राजा पद्मरथ हुआ और दूसरा भाई तुम्हारा वह पुत्र हुआ, जो राजा पद्मरथ के यहाँ पुत्र रूप से पल रहा है। तुम्हारे उस पुत्र का जन्म, वन और संकट पूर्ण स्थिति में इसीलिए हुआ था, कि जिस में वह राजा पद्मरथ के यहाँ पहुँच जावे।

मुनि से, अपने पुत्र का भूत भविष्य और वर्त्तमान कालीन वृत्तान्त जानकर, मदनरेखा को बहुत प्रसन्नता हुई। मुनि का कथन समाप्त होने पर, वह हाथ जोड़ कर मुनि के सन्मुख खड़ी हुई तथा कहने लगी, कि हे महात्मन्! आपकी सेवा मे उपस्थित होने से मेरा सब संकट मिट गया, मेरे इन भाई की भावना भी पवित्र हो गई और मुझे अपने उस पुत्र का हाल भी ज्ञात हो गया, जिसके सम्बन्ध में मेरे को बहुत चिन्ता थी। साधु संसर्ग से, ऐसा होता ही है। मैंने अपने पुत्र का जो सुकृत पूर्ण वृत्तान्त सुना है और इन भाई का जो सुधार हुआ है, उस पर से मैं भी संयम स्वीकार करने का निश्चय करती हूँ। वह दिन धन्य होगा, जब मैं इस निश्चय के अनुसार संयम ले सकूँगी। आपकी कृपा

होगी, तो मेरा यह निश्चय अवश्य ही पूर्ण होगा। मैं समझती थी, कि पुत्र का पालन माता ही करती है, परन्तु अब मुझे मालूम हो गया, कि सन्तान का पालन करने मे माता तो केवल निमित्त मात्र है। प्रत्येक व्यक्ति की रक्षा, उसका पूर्व-सुकृत ही करता है। जो सुकृती नहीं है, उसकी रचा करने, या उसका पालन करने और उसे कष्ट से बचाने को कोई भी समर्थ नहीं है। आपके मुख से सुकृत का प्रताप सुनकर, मुझे सुकृत पर अधिक दृढ़ विश्वास हो गया है, इसीलिए मैं, अपना जीवन एकमात्र सुकृत में लगाने के लिए संयम लेने का निश्चय करती हूँ।

मदनरेखा का कथन सुनकर, मुनि, मणिप्रभ विद्याधर और वहाँ उपस्थित दूसरे लोग, बहुत प्रसन्न हुए। मणिप्रभ विद्याधर तो अपने मन में कहने लगा, कि इस सती ने जो त्याग-वृत्ति बताई है, उसके सामने मेरा पर-स्त्री का त्याग तुच्छ ही है। धन्य है, इस सती को!

मदनरेखा का कथन समाप्त होने पर, मुनि ने मदनरेखा से कहा, कि तुम्हें जैसे सुख जान पड़े, वैसा करो। मदनरेखा से यह कहकर, वे मुनि ध्यान करने लगे।
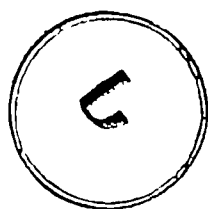
# धर्म और पाप का परिणाम

कार्य का कुछ न कुछ परिणाम होता ही है। कारण से कार्य और कार्य से परिणाम की उत्पत्ति होती ही है। कर्त्ता जो भी कार्य करता है, वह परिणाम के ही वास्ते। परिणाम-रहित कार्य करने वाला, मूर्ख माना जाता है।

प्रत्येक कार्य का परिणाम दो तरह का हुआ करता है। एक प्रकट और दूसरा अप्रकट। अथवा एक भौतिक और दूसरा आध्यात्मिक। अथवा एक परिमित और दूसरा अपरिमित। अथवा एक व्यापक और दूसरा अव्यापक। अथवा एक इहलौकिक और दूसरा पारलौकिक। अथवा एक स्थायी और दूसरा अस्थायी।

अच्छे या बुरे, दोनों ही तरह के कार्य का परिणाम दो तरह का होता है। उदाहरण के लिए, एक आदमी चोरी करता है। वह, धन के लिए चोरी करता है, जिसमे उसे धन मिल भी गया। चोरी कार्य का एक परिणाम तो धन मिलना हुआ, जो प्रकट तथा भौतिक है, लेकिन दूसरा अप्रकट परिणाम आध्यात्मिक है। चोरी करने के कारण उसके आत्मा मे जो कलुषता आई, वह कलुषता चोरी कार्य का ही परिणाम है, जो अप्रकट है। इसी तरह, एक आदमी परोपकार करता है। वह परोपकार इसलिए करता है, कि मेरी आत्मा उन्नत हो तथा मुझे पारलौकिक सुख मिले, लेकिन इस परिणाम के साथ ही दूसरा व्यापक परिणाम, उस कार्य द्वारा लोगों को तात्कालिक लाभ तथा ऐसे कार्यों की ओर जनता का आकर्षण निकला ही। इस प्रकार, प्रत्येक कार्य के दो परिणाम होते हैं। बल्कि, कार्य के दो अधिक परिणाम भी निकलते हैं। किसी भी कार्य के विषय में विचार किया जावे, तो यह बात ठीक ठहरेगी। इस बात को दृष्टि में रखकर ही, अनेकान्तवाद की परूपणा की जाती है।

धर्म और पाप के लिए भी यही बात है। इन दोनों का परिणाम भी ऐसा ही होता है। मोटी रीति से, धर्म और पाप का एक परिणाम तो इहलौकिक अथवा भौतिक होता है और दूसरा पारलौकिक अथवा आध्यात्मिक। यह बात दूसरी है, कि प्रत्येक

व्यक्ति आध्यात्मिक या पारलौकिक परिणाम को नहीं देखता या नहीं देख पाता, लेकिन धर्म या पाप का परिणाम दोनों ही तरह का होता है। पारलौकिक या आध्यात्मिक परिणाम, स्थूल दृष्टि से दिखाई नहीं दे सकते। हम उसको तभी देख सकते हैं, जब हमारी आत्मा पर का आवरण हटे और हमें विशेष ज्ञान प्राप्त हो। हमारी आत्मा पर का आवरण जितना अधिक हटा हुआ होगा, हमे जितना विशेष ज्ञान होगा, हम प्रत्येक बात उतनी ही अधिक स्पष्ट देख सकेंगे। हम, ऐसा विशेष ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। हम, आत्मा पर का आवरण हटा सकते हैं। जिन महापुरुषों ने ऐसा किया है, वे हमारे लिए अपने पदचिह्न छोड़ गये हैं और कह गये हैं, कि हमारे पद चिह्नों पर चलकर, तुम भी आत्मा को आवरण रहित तथा ज्ञान-घन बना सकते हो। बल्कि, उनने हम लोगों से ऐसा करने का अनुरोध किया है। ऐसा करने के लिए, हमें बहुत उपदेश दिया है तथा यह बताया है, कि आत्मा पर कर्म का जो आवरण है, उसे नष्ट कर देने से क्या लाभ होगा और नष्ट न करने अथवा उसको बढ़ाने से क्या हानि होगी। महापुरुषों के ऐसे उपदेश को मानकर, हमें उनके पद चिह्नों पर चलना चाहिए और आत्मा को आवरण-रहित बनाना चाहिए। उस समय हम, धर्म एवं पाप के पारलौकिक अथवा आध्यात्मिक परिणाम को भी स्पष्ट देख सकेंगे। लेकिन जब तक हम अपने

आत्मा को निरावरण नहीं बना सके हैं, धर्म और पाप के आध्यात्मिक या पारलौकिक परिणाम को देखने जानने में समर्थ नहीं हुए हैं, तब तक हमे उन महापुरुषों के कथन पर विश्वास करना चाहिए, जो धर्म या पाप के आध्यात्मिक अथवा पारलौकिक परिणाम को देखने जानने मे समर्थ थे। ऐसे ज्ञानियों ने इस सम्बन्ध में जो कुछ कहा, वह गल्त है, ऐसा मानने का तो कोई कारण ही नहीं हो सकता। क्योंकि, उन्हे झूठ बात कहने से क्या लाभ ! उनने इस विषय में जो कुछ कहा है, वह हमारे हित को दृष्टि में रख कर और हमें पाप से बचाने तथा धर्म कार्य में प्रवृत्त करने के लिए ही। ऐसा करने में, उनकी भावना जन हित की ही थी, अपने स्वार्थ की नहीं। इसलिए हमारा कर्त्तव्य है, कि हम उनके द्वारा बताये गये धर्म और पाप के पारलौकिक परिणाम को जानकर, पाप से बचें और धर्म-कार्य में प्रवृत्त हों।

मणिरथ ने महान् पाप किया था। वह, परदार—अपनी कन्या के समान मानी जानेवाली अनुजवधू—को अपनी पत्नी बनाना चाहता था। इसके लिए उसने, अपनी शक्ति भर छल-प्रपंचपूर्ण प्रयत्न भी किया और जब अपने प्रयत्न मे असफल रहा, तब अपने छोटे भाई की विश्वास घात-पूर्वक हत्या कर डाली। इस पाप कार्य का इहलौकिक परिणाम हुआ निन्दा और अकाल मृत्यु। यदि वह ऐसा पाप-कार्य न करता, रात के समय युगबाहु

को मारने के लिए न जाता, तो लोगों द्वारा उसकी निन्दा भी न होती और वह अकाल से भी न मरता। इसी प्रकार, युगबाहु ने अन्तिम समय से मदनरेखा द्वारा उपदेशित धर्म स्वीकार किया था। इसका इहलौकिक परिणाम हुआ, शान्ति से प्राण त्याग। यदि वह मदनरेखा द्वारा दिया गया धर्मोपदेश स्वीकार न करता, तो क्रोध और दुःख के कारण तड़फड़ाता हुआ प्राण त्याग करता। मदनरेखा द्वारा सुनाया गया धर्मोपदेश स्वीकार करने के कारण ही वह शान्ति से प्राण त्याग सका। मणिरथ के पाप और युगबाहु के धर्म का इहलौकिक परिणाम तो यह हुआ, लेकिन पारलौकिक परिणाम क्या हुआ, यह उन विशेषज्ञानी मुनि ने बताया, जिनके उपदेश से मणिप्रभ की दुर्भावना मिटी थी और मदनरेखा भय रहित हुई थी। इस सम्बन्ध से उन मुनि ने क्या कहा, यह बात इस प्रकरण से प्रकट होगी।

मणिप्रभ विद्याधर के पिता, जो सुविहित संयमी और अतिशय ज्ञानी थे, ध्यान में थे। मदनरेखा, मणिप्रभ विद्याधर तथा दूसरे लोग, उन मुनि के सामने बैठे हुए थे। इतने ही में, देव विमान के घण्ट की ध्वनि सुनाई दी। देखते ही देखते, एक विमान वहाँ आकर उतरा और उसमें से एक तेजस्वी देव बाहर निकला विमान से निकल कर वह देव, मुनि के सामने उपस्थित हुआ, लेकिन उसने, मुनि को वन्दन करने से पहले मदनरेखा को वन्दन

किया और फिर मुनि को वन्दन करके मुनि के सम्मुख बैठ गया, देव ने पहले एक स्त्री को वन्दन किया और फिर मुनि को वन्दन किया, यह देखकर, उपस्थित लोगों को बहुत ही आश्चर्य हुआ। कई लोग तो अपने मन मे यहाँ तक कहने लगे, कि यह देव, इस स्त्री का सौन्दर्य देखकर मर्यादा भी भूल गया है और इस पर मुग्ध होकर इसने इस स्त्री को भी वन्दन किया तथा वह भी मुनि को वन्दन करने से पहले ! मणिप्रभ विद्याधर भी अपने मन मे कहने लगा, कि इस बहन के सौन्दर्य ने मेरे को तो भ्रम मे डाला ही था, लेकिन इस देव को भी भ्रम मे डाल दिया ! जब यह देव भी, इस बहन के सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया, तब मैं मुग्ध हुआ इसमे आश्चर्य की क्या बात है !

उपस्थित लोग, अपने-अपने हृदय में देव के कार्य की आलोचना कर रहे थे। इतने ही मे, मुनि का ध्यान समाप्त हुआ। मुनि को, अपने ज्ञान द्वारा उपस्थित लोगो और विशेषतः मणिप्रभ विद्याधर के मन की बात मालूम हो गई। उनने सोचा, कि इस देव पर निष्कारण ही कलङ्क आ रहा है। लोगों को जब वास्तविक बात का पता नहीं होता है, तब वे ऊपरी कार्य देखकर किसी पर कोई कलङ्क लगाते ही हैं। इसलिए यह उचित होगा, कि लोगों को वास्तविक बात से परिचित किया जावे और इस देव पर जो कलङ्क लग रहा है, वह हटाया जावे।

इस तरह सोचकर वे मुनि, उपस्थित लोगों से कहने लगे, कि—इस देव ने इस धर्म-परायण स्त्री को वन्दन किया, इस बात को देखकर तुम लोगों के हृदय मे अनेक अनुचित विचार उठ रहे हैं। तुम लोगों के हृदय में जो विचार उत्पन्न हुए हैं, वे वास्तविक बात न जानने के कारण। इसलिए मैं तुम लोगों को यह बताता हूँ, कि इस देव ने इस महिला को वन्दन क्यों किया। इस बहन ने, इस देव पर बहुत बड़ा उपकार किया है। इसकी सहायता से ही यह देव, देव-भव पाया है, नहीं तो नरक में उपजता। यह देव, देव-भव पाने से पहले, इस बहन मदनरेखा का पति था। उस समय, इसका नाम युगबाहु था। मदनरेखा के रूप पर मोहित होकर, मदनरेखा को हस्तगत करने के लिए युगबाहु के बड़े भाई मणिरथ ने, युगबाहु पर खड्ग का प्रहार किया। युगबाहु, आहत होकर गिर पड़ा। उस समय, युगबाहु को अपने भाई के प्रति बहुत क्रोध हो रहा था। यदि उसी क्रोध में युगबाहु का प्राणान्त हुआ होता, तब तो युगबाहु नरक में जाता परन्तु इस बहन ने अपने पति युगबाहु को ऐसा धर्मोपदेश दिया, कि जिससे युगबाहु का क्रोध भी शान्त हुआ और प्राण त्यागते समय, वह पंचपरमेष्ठि की शरण भी ले सका। धर्म पर विश्वास करने तथा पंचपरमेष्ठि की शरण लेने के कारण, युगबाहु मर कर इस देव-भव में जन्मा, जिस देव को तुम लोग अपने सामने

देख रहे हो एवं जिसके कार्य के विषय मे तुम लोगों को अनेक विचार हुए हैं। देव-भव मे जन्म पाते ही, इस देव ने अपने ज्ञान का उपयोग करके अपना पूर्व-भव जानने के साथ ही यह जाना, कि मैं मदनरेखा की कृपा से ही इस भव मे जन्म पाया हूँ, अन्यथा मेरे को नरक मे जन्म लेना पड़ता। यह जानकर इसको विचार हुआ, कि मदनरेखा का मुझ पर बहुत उपकार है। उसने मेरा संकट तो मिटाया, परन्तु कहीं वह स्वयं तो संकट मे नहीं पड़ी है! मुझे, अपने पर उपकार करने वाली मदनरेखा का हाल जानना चाहिए और यदि वह संकट में हो, तो उसका संकट मिटाना चाहिए। इस प्रकार सोचकर, इस देव ने फिर अपने ज्ञान का उपयोग किया, तब इसको मदनरेखा का यहाँ होना ज्ञात हुआ। इसने विचार किया, कि मुझे दूसरे कार्य मे लगने से पहले, अपने पर उपकार करने वाली मदनरेखा की सहायता करनी चाहिए। ऐसा न करना, कृतघ्नता है। इस विचार से प्रेरित होकर, वह यहाँ आया और इसने पहले मदनरेखा को वन्दन किया। इसलिए इस देव के सम्बन्ध मे, तुम लोग अपने हृदय में कोई दूसरा विचार न लाओ।

मुनि द्वारा मदनरेखा और उस देव का पूर्व सम्बन्ध जानकर तथा देव ने मदनरेखा को वन्दन किया इसका कारण सुनकर उपस्थित लोगो के हृदय की शंका दूर हुई। सब लोग मदनरेखा

और उस उपकार मानने वाले देव की प्रशन्सा करने लगे। मणिप्रभ विद्याधर भी अपने हृदय की शंका मिटा कर यह सोचने लगा, कि ऐसी सती के लिए भी मुझ पापी के हृदय मे दुर्भावना हुई। यह तो अच्छा हुआ, कि इस सती के प्रयत्न से मैं यहाँ आ गया, जिससे मेरी भावना भी शुद्ध हो गई और मैं इस सती पर बलात्कार करने एवं इसका सतीत्व हरण करने का प्रयत्न करने से बच गया, अन्यथा मैं दुर्गति में भी जाता और इस देव का कोप-पात्र भी बनता।

देव के सम्बन्ध में मुनि ने जो कुछ कहा, उसे सुनकर उपस्थित लोगों के मन में यह जानने की इच्छा हुई, कि जिस मदनरेखा के लिए राजा मणिरथ ने अपने छोटे भाई की हत्या की, वह मदनरेखा तो यहाँ चली आई है। इसलिए अब राजा मणिरथ, मदनरेखा को प्राप्त करने के लिए क्या प्रयत्न करता है! इस इच्छा से प्रेरित होकर एक व्यक्ति ने, राजा मणिरथ के सम्बन्ध मे मुनि से प्रश्न कर ही डाला। उपस्थित जनता के हृदय का समाधान करने और पाप का फल बताने के लिए, वे मुनि कहने लगे, कि अपने भाई के मस्तक पर खड्गाघात करके मणिरथ भागा, परन्तु उसको युगबाहु के सामन्तों ने रोक लिया। मणिरथ, युगबाहु के सामन्तों के घेरे से निकलने का प्रयत्न करने लगा, इस कारण कोलाहल मच गया। उस समय युगबाहु, तलवार में

लगे हुए विष के प्रभाव से और घाव की पीड़ा से तड़फता रहा था। इस सती ने सोचा, कि पति का अन्तकाल समीप है। इस समय, इनको बहुत क्रोध हो रहा है। यदि इसी क्रोधावेश में इनकी मृत्यु हुई, तो ये नरक में जावेंगे। इसलिए इनको धर्मोपदेश सुनाना चाहिए। परन्तु इस तरह के कोलाहल में, पति मेरा शब्द कैसे सुन सकेंगे! इसके सिवा, हत्या के बदले हत्या करना, कराना या होने देना भी अनुचित है। पाप का बदला पाप करके न लेना चाहिए। इस प्रकार सोचकर इस मदनरेखा ने, अपने सामन्तों को यह आज्ञा दी, कि मणिरथ को जाने दो और कोलाहल बन्द कर दो।

मदनरेखा की आज्ञानुसार, सामन्तों ने मणिरथ को छोड़ दिया। सामन्तों के घेरे से छूट कर मणिरथ भागा, लेकिन उसको अपने दुष्कृत्य के विषय में बहुत पश्चात्ताप होने लगा। वह कहने लगा, कि हाय! मैंने यह क्या किया! जिस भाई को युवराज बनाया था, जिसके भरोसे पर मैं अनेक विचार किया करता था, जो मेरी आज्ञा का कभी भी उल्लंघन नहीं करता था, और जो मेरे प्रति पूर्ण श्रद्धा भक्ति तथा विश्वास रखता था, मैंने उस अपने प्रिय छोटे भाई की हत्या कर डाली! वह भी रात के समय तथा धोखे से कायरता पूर्वक! मुझ पापी से, यह कैसा भयङ्कर दुष्कृत्य हुआ है! मदनरेखा ने, मुझ पापी को क्यों

छुड़ा दिया। क्या ही अच्छा होता, यदि युगबाहु के सामन्त मुझे मार डालते! सामन्तों के घेरे से मुझे छुड़ा कर, मदनरेखा ने मुझ पापी पर अधिक पाप लादा है!

मणिरथ ने युगबाहु को मार तो डाला, परन्तु फिर उसके हृदय में महान् पश्चात्ताप हुआ। वह अपने महल को जाने के बदले, मार्ग मे ही घोड़े पर से उतर पड़ा और प्रकट कहने लगा, कि मैं अब उस महल मे जाकर क्या करूँगा, जिसमें रहते हुए मेरे में भाई की हत्या करने की कुमति आई! मैं, अब अपना यह कलङ्कित मुख किसी को कैसे दिखाऊँगा! मुझ बन्धु घाती के लिए, लोग क्या कहेंगे! मेरे मे यह कैसी कुमति आई, कि मैंने अपने छोटे भाई को मार डाला! मैं दूसरों को तो छोटे-छोटे अपराधों के लिए भी दण्ड देता हूँ और स्वयं ऐसा भयङ्कर अपराध करूँ! क्या मेरा यह अपराध क्षम्य हो सकता है! धिक्कार है मुझे, मेरी वीरता को, मेरे दुःसाहस को, मेरे हाथ को और मेरे खड्ग को! मैंने अपने बन्धु की हत्या की, इससे अधिक धिक्कार की बात दूसरी क्या हो सकती है! मुझे, अपने इस दुष्कृत्य का फल अवश्य ही भोगना चाहिए। मेरे लिए अब यही अच्छा है, कि मैंने जिस तलवार से अपने छोटे भाई की हत्या की है, उसी तलवार से स्वयं को भी मार डालूँ! अपना कलङ्कित मुख किसी को न बताऊँ। मेरे दुष्कृत्य का प्रायश्चित इसी तरह हो सकता है।

" मणिरथ, इस प्रकार अत्यन्त पश्चात्ताप करता हुआ दुःख से बड़-बड़ा रहा था। दुःख के कारण, उसके हाथ से उसका अश्व भी छूट गया। उसके लिए अपने दुष्कृत्य का भार असह्य हो उठा, इसलिए उसने आत्म-हत्या करने का निश्चय किया। वह, बड़बड़ाता हुआ पश्चात्ताप कर रहा था और आत्म-हत्या करने के लिए तय्यार था, इतने ही मे वहाँ, राज परिवार मे रहने वाला वीरसिह नाम का एक वीर सेवक आगया। युगबाहु के शव की व्यवस्था की जा रही थी, उसी सन्धि मे मदनरेखा वहाँ से वन में भाग गई थी। मदनरेखा के भाग जाने के पश्चात्, मदनरेखा की खोज होने लगी। जब मदनरेखा वहाँ नहीं मिली, तब इस विचार से, कि शायद गर्भवती युवराज्ञी अपने महल मे चली गई होंगी। राज महल मे मदनरेखा को उपस्थिति जानने के लिए, वीरसिह नगर को चला। वीरसिह उसी ओर होकर जा रहा था, जहाँ खड़ा हुआ मणिरथ भी पश्चात्ताप कर रहा था और आत्म-हत्या करने को तय्यार था। वीरसिह ने, मणिरथ की बड़बड़ाहट सुनी। मणिरथ का स्वर पहचान कर, उसकी बड़बड़ाहट सुनता हुआ वीरसिंह, मणिरथ के पास गया। मणिरथ की बडबडाहट से वीरसिह समझ गया, कि मणिरथ को अपने कृत्य के विषय में बहुत पश्चात्ताप हो रहा है। वह, दुःख से घबरा कर आत्म-हत्या करने को तत्पर है। मणिरथ के पास जाकर वीरसिह ने

उसका हाथ पकड लिया और वह उससे कहने लगा, कि महाराज ! आप यह क्या कर रहे हैं ! आपसे पाप अवश्य हुआ है, लेकिन आत्म-हत्या करने से पाप नही मिट सकता । बल्कि आत्म-हत्या करना, पाप पर पाप करना है । आपको युवराज की हत्या के लिए पश्चात्ताप है, यह तो मैं भी सुन चुका हूँ, परन्तु आत्म-हत्या करने से यह पाप या पश्चात्ताप नही मिट सकता । इस पाप का प्रायश्चित, आत्म-हत्या करना नही हो सकता । यदि आपको प्रायश्चित करना है और पाप मिटाना है, तो इसका मार्ग दूसरा है । अपराध तो आत्मा करे और शरीर को दण्ड दिया जावे, शरीर नष्ट किया जावे, यह अपराध का प्रायश्चित नहीं है । इसलिए आप, आत्म-हत्या करने का विचार त्याग दीजिये । मैं, आपको इस पाप के प्रायश्चित का मार्ग बताता हूँ । आपके छोटे भाई युगबाहु तो इस संसार से विदा हो गये हैं, परन्तु उनके पुत्र चन्द्रयश विद्यमान हैं । आप, उनके सामने अपने दुष्कृत्य के लिए पश्चात्ताप करके, उनसे क्षमा माँगिये । चन्द्रयश उदार स्वभाव के हैं, अत. मुझे विश्वास है, कि वे आपको अवश्य ही क्षमा कर देंगे । चन्द्रयश से क्षमा माँगने पर, आपके पाप का प्रायश्चित भी हो जावेगा । और आप, आत्म-हत्या के महान् पाप से भी बच जावेंगे ।

वीरसिंह के कथन के उत्तर में, मणिरथ दु:ख करता हुआ

कहने लगा, कि भाई वीरसिंह, तुम मुझ पापी को रोको मत, किन्तु मर जाने दो। मुझ से, चन्द्रयश को अपना पाप-पूर्ण मुँह दिखाने की बात मत कहो। मैं, चन्द्रयश का पितृहन्ता हूँ। वह, मुझे कदापि क्षमा नहीं कर सकता। चन्द्रयश, सामन्तों के घेरे से मुझे छुड़ा देने वाली मदनरेखा का पुत्र है, इसलिए सम्भव है कि अपनी माता की तरह वह भी मुझे क्षमा कर दे, परन्तु मैं अपना कलङ्कित मुँह लेकर उसके सामने कैसे जाऊँ। उससे यह कैसे कहूँ, कि मैंने तुम्हारे पिता को मार डाला है, फिर भी मुझे क्षमा कर दो! मैं क्षत्रिय हूँ। मैंने, आज तक किसी के सन्मुख नम्रता या दीनता नहीं दिखाई है। फिर मैं चन्द्रयश के सामने दीनता-हीनता कैसे दिखा सकता हूँ तथा क्षमा कैसे माँग सकता हूँ। और वह भी केवल इसलिए, कि मुझे मरना न पड़े! तुम जो मार्ग बता रहे हो, उस पर चलना मेरे लिए सर्वथा असम्भव है। इसलिए तुम उसी खड्ग से मुझे भी मर जाने दो, जो खड्ग बन्धु-रक्त से भरा हुआ है। चन्द्रयश से क्षमा माँग कर और जीवित रहकर, मैं करूँगा भी क्या। अपना मुँह किसी को कैसे बताऊँगा। जीवन भर अपने पाप के ताप से जलता ही रहूँगा! मेरे लिए, आत्म-हत्या के सिवा ऐसा कोई मार्ग नहीं है, जो मेरे चित्त को शान्ति दे तथा इस पाप के ताप से बचावे।

यह कहकर मणिरथ, अपना हाथ वीरसिंह के हाथ से छुड़ा कर, अपने कण्ठ पर खड्ग मारने के लिए उद्यत हुआ। यह देख कर वीरसिंह ने, मणिरथ के हाथ से बल पूर्वक खड्ग ले लिया और उससे कहा, कि यदि चन्द्रयश से आप क्षमा नहीं माँग सकते तो कोई हर्ज नहीं, चन्द्रयश स्वयं ही आपके पैरों पड़कर आपको ले जावेंगे। आप थोड़ी देर ठहरिये, मैं अभी चन्द्रयश को यहाँ लिये आता हूँ।

मणिरथ से इस प्रकार कह कर वीरसिंह, चन्द्रयश के पास जाने के लिए चल पड़ा। वीरसिंह के जाने के पश्चात् मणिरथ स्वगत ही कहने लगा, कि वीरसिंह से मेरा यहाँ होना जानकर जब चन्द्रयश यहाँ आवेगा, तब मैं उसको अपना मुँह कैसे दिखाऊँगा। उससे क्या कहूँगा! जब वह मेरे पैरों पड़ कर मुझ से घर चलने का अनुरोध करेगा, तब मैं उसे क्या उत्तर दूँगा। चन्द्रयश के साथ, वीरसिंह तथा दूसरे सामन्त लोग आवेंगे ही। वे, मेरे लिए क्या कहेंगे और उनसे मैं क्या कहूँगा। इसलिए यही अच्छा है, कि मैं यहाँ से किसी ओर चल दूँ, चन्द्रयश को न मिलूँ।

इस प्रकार सोचकर मणिरथ, उत्पथ से वन की ओर चला। वह, दुःख तथा पश्चात्ताप से बड़बड़ाता जा रहा था। एक तो अन्धेरी रात का समय था, दूसरे दुःख तथा पश्चात्ताप के कारण

मणिरथ की आँखें पूरी तरह मार्ग नहीं देख पाती थीं, इसलिए उत्पथ से जाते हुए मणिरथ का पाँव एक विषधारी सर्प पर पड़ गया। अपने ऊपर मणिरथ का पाँव पड़ने से, साँप क्रुद्ध हो उठा और मणिरथ को काट खाया। मणिरथ के शरीर मे, विष का प्रभाव फैल गया। सर्प काटने से पहले तक तो, मणिरथ को बन्धु हत्या के लिए खेद और पश्चात्ताप था, परन्तु सर्प काटने के पश्चात् मणिरथ की मति फिर पहले की सी हो गई। वह कहने लगा कि युगबाहु को मार डाला, इसलिए मैं खेद तथा पश्चात्ताप क्यों करता हूँ। इसमें, खेद या पश्चात्ताप की कौनसी बात है। मैं क्षत्रिय हूँ। इच्छित वस्तु की प्राप्ति के मार्ग मे उपस्थित बाधा को हटाना या नष्ट करना, क्षत्रियों का साधारण कर्त्तव्य है। मैंने, युगबाहु को मार कर इसी कर्त्तव्य का पालन किया है। मैं मदनरेखा से प्रेम करता हूँ। उसे अपनी बनाना चाहता हूँ। युगबाहु, मेरे इस प्रेम-मार्ग मे बाधक था, इसलिए उसे मारकर मैंने कुछ भी बुरा नहीं किया है। जिस तरह मदनरेखा को मैं चाहता हूँ, उसी तरह अब मदनरेखा भी मेरे से प्रेम करती है। युगबाहु के मरते ही मदनरेखा ने समझ लिया, कि अब मेरे लिए मणिरथ ही आधार है, इसलिए वह भी मुझ से प्रेम करने लगी है। इसका प्रमाण है, मदनरेखा का सामन्तो से मुझे छुड़वाना और मेरे प्राण बचाना। यदि मैंने युगबाहु को न मारा होता, तो

मदनरेखा मुझ से प्रेम न करती। इस प्रकार मैंने, युगबाहु को मारकर उचित ही किया है।

इस तरह बड़बड़ाता हुआ मणिरथ, विष के प्रभाव से पृथ्वी पर गिर पड़ा। उस समय भी, वह इसी प्रकार बड़बड़ाता हुआ युगबाहु की हत्या को उचित बता रहा था तथा कह रहा था, कि प्रिये मदनरेखा! मैंने युगबाहु को मार कर मेरे और तुम्हारे प्रेम का मार्ग निष्कण्टक कर दिया, परन्तु यहाँ मुझे साँप ने डस लिया है। मैं, यहाँ पड़ा हुआ हूँ। तुमने, मुझे जिस तरह सामन्तों से बचाया, उसी तरह क्या यहाँ सर्प के विष से मेरी रक्षा न करोगी। तुम किसी प्रकार का संकोच न करो, किन्तु यहाँ आकर मेरी रक्षा करो। मेरे प्राण बचाओ। यह न सोचो, कि युगबाहु मारा गया तो क्या हुआ, चन्द्रयश तो है! वह, मेरे को कुमार्ग पर कैसे जाने देगा! पहले तो चन्द्रयश मेरे और तुम्हारे प्रेम-सम्बन्ध में किसी प्रकार की बाधा डालेगा ही नहीं। क्योंकि, प्रेमी अपनी प्रेमिका या प्रेमिका अपने प्रेमी से मिले, यह किंचित् भी अनुचित नहीं है। ऐसा होते हुए भी, कदाचित चन्द्रयश मेरे और तुम्हारे प्रेम सम्बन्ध में बाधक होगा, तो मैं, उसको भी युगबाहु की तरह मृत्यु के हवाले कर दूँगा। इसलिए तुम, निर्भय होकर आओ और मेरे को बचाओ।

कुछ देर तक तो मणिरथ इस प्रकार बड़बड़ाता रहा,

फिर सर्प-विष के प्रभाव से उसकी जीभ खिच गई। उसका बड़-बड़ाना, सदा के लिए बन्द हो गया। वह, मर गया। युगबाहु की हत्या के पश्चात् उसके हृदय में जो खेद और पश्चाताप था, यदि उसकी मृत्यु उस पश्चात्ताप करते समय में होती, तब तो 'अन्त समय में जैसी मति वैसी गति' के अनुसार उसको कदाचित् नरक में उत्पन्न न होना पड़ता। परन्तु उसके दुष्कृत्यों ने उसमें वह पश्चात्ताप की मति न रहने दी, किन्तु जैसी गति वैसी मति, यानी जो गति प्राप्त होनी होती है, मरने के समय वैसी ही मति हो जाती है, इसके अनुसार मणिरथ के दुष्कृत्यों ने मणिरथ मे फिर वही दुर्मति ला दी, जो उसमें पहले थी और जिसके कारण उसने युगवाहु की हत्या की थी। इसलिए मणिरथ ने, मिथ्या मोह तथा पापवृत्ति में शरीर त्यागा। परिणामतः वह, धूमप्रभा-पंचमी नरक मे अपने दुष्कृत्यों का फल भोगने के लिए उत्पन्न हुआ है।

यह सब वृत्तान्त सुनाकर वे मुनि उपस्थित लोगों से कहने लगे, कि इधर मणिरथ तो मर गया और उधर वीरसिंह चन्द्रयश के पास गया। उसने, चन्द्रयश से मणिरथ का सब हाल कहा। चन्द्रयश ने सोचा, कि पिता तो अकाल मृत्यु से स्वर्गवासी हुए ही, अब पितृव्य भी आत्महत्या कर रहे हैं! यदि पितृव्य ने भी आत्महत्या कर डाली, तो बड़ा ही अनर्थ होगा! सारा घर ही नष्ट हो जावेगा! मैं, अनाथ हो जाऊँगा! मेरा रक्षक कोई न

रहेगा। इसलिए पितृव्य को अनुनय-विनय पूर्वक ले आना चाहिए। इस प्रकार सोचकर, कुछ सामन्तों तथा वीरसिंह के साथ वह उस स्थान पर गया, जहाँ वीरसिंह ने मणिरथ को छोड़ा था। लेकिन मणिरथ उस स्थान पर नहीं मिला। खोज करने पर, कुछ दूर पड़ा हुआ उसका शव मिला। मणिरथ का शव देख कर, चन्द्रयश को बहुत ही दुःख हुआ। वह विलाप करने लगा। सामन्तो ने, उसको धैर्य दिया। अन्त मे युगबाहु और मणिरथ के शव की अंत्येष्ठि करके, प्रजा के अत्याग्रह से चन्द्रयश राजा हुआ। सब के कहने सुनने से वह राजा तो हुआ, परन्तु उसके हृदय में युगबाहु, मणिरथ और मदनरेखा के लिए बड़ा ही दुःख है। युगबाहु तथा मणिरथ के लिए तो वह जानता है, कि ये दोनों मर गये, लेकिन बहुत खोज कराने पर भी, मदनरेखा का कुछ पता न लगने से उसे बहुत खेद है। अभी वह, मदनरेखा की खोज करा ही रहा है।

मुनि द्वारा यह सब वृत्तान्त सुन कर, उपस्थित लोग, धर्म एवं पाप का परिणाम जान कर बहुत प्रसन्न हुए। सब लोग, मदनरेखा तथा उस देव की प्रशंसा करने लगे। मणिप्रभ विद्याधर को भी यह विचार हुआ, कि यदि यह बहन मुझे इन मुनि की सेवा में न ले आती, तो अन्त में मुझे भी वैसा ही फल भोगना पड़ता, जैसा फल राजा मणिरथ भोग रहा है। यह मुनि-दर्शन का

प्रताप है, कि मैं परलोक के कष्ट से भी बच गया और इस लोक में भी अपयश का पात्र नहीं बना।

सब लोग, मुनि को वन्दन करके अपने अपने घर जाने लगे। मणिप्रभ विद्याधर भी, अपने घर जाने को तय्यार हुआ। वह, मुनि को विधिवत वन्दन नमस्कार करके मदनरेखा के पास गया और उसे प्रणाम करके उससे कहने लगा, कि हे माता! आपने मेरे पर बहुत उपकार किया है। मैं, आपका चिर-कृतज्ञ हूँ। आप मेरे को उसी प्रकार सन्मार्ग पर लाई हैं, जिस प्रकार चतुर महावत मस्त हाथी को मार्ग पर लाता है। आपने, मेरे को घोर नरक से बचाया है। मैं, आपके द्वारा किये गये उपकार का वर्णन करने मे समर्थ नहीं हूँ, इसलिए थोड़े मे यही कहता हूँ, कि जिस प्रकार जन्मदात्री माता का उपकार बालक के ऊपर होता है, उसी प्रकार आपका उपकार मेरे पर है। मैं, आपके उपकार से कदापि उऋण नहीं हो सकता। अब आप कृपा करके मुझे ऐसा आशीर्वाद दीजिये, कि मैं, मुनि के सन्मुख की गई अपनी प्रतिज्ञा का पूरी तरह पालन कर सकूँ और उत्तरोत्तर सन्मार्ग पर बढ़ता जाऊँ।

मणिप्रभ के कथन के उत्तर मे, मदनरेखा, अपना जीवन बचाने एवं मुनि का दर्शन कराने के लिए मणिप्रभ की प्रशंसा करके, उसका उपकार मानने लगी। इस तरह मदनरेखा और

मणिप्रभ, परस्पर एक दूसरे की प्रशंसा करने तथा एक दूसरे का उपकार बताने लगे। बात का अन्त आते न देख कर, वह देव दोनों से बोला, कि तुम दोनों परस्पर एक दूसरे की प्रशंसा करना त्याग कर इन मुनि का गुण गान करो, जिनकी कृपा से अज्ञान मिटा है, सब बातें जानने को मिली हैं, पाप-धर्म का फल सुनने को मिला है और सब का संकट टला है। महात्माओं से सुने हुए उपदेश के प्रभाव से ही, यह सती मेरे को भी नरक से बचा सकी है, तुम्हे भी नरक से बचा सकी है तथा अपने सतीत्व की रक्षा करने में भी समर्थ हुई है। इसलिए यह मानो, कि महात्माओं के प्रताप से ही बहुतों का उपकार हुआ है, होता है तथा होगा। ऐसा मान कर, महात्माओं का गुणगान करो और महात्माओं की सेवा मे चित्त लगाओ।

देव का कथन शिरोधार्य करके, मणिप्रभ विद्याधर तथा मदनरेखा ने पारस्परिक बातचीत बन्द कर दी और वे दोनों, महात्मा की वाणी का उपकार मानने लगे। मणिप्रभ विद्याधर ने, मुनि को फिर वन्दन नमस्कार किया। वह अपने घर जाने लगा, तब मदनरेखा तथा देव ने उसको प्रेम पूर्वक विदा किया।

# सती सुव्रता

बुद्धिमान और आत्मा को जीवन मुक्त बनाने की इच्छा रखने वाले भव्य लोग, यही भावना किया करते हैं, कि हम, कब संसार-व्यवहार से निकल कर आत्मा को मोक्ष की ओर अग्रसर करने के प्रयत्न मे लगें। वे, ऐसे अवसर की प्रतीक्षा किया करते हैं, ऐसा अवसर प्राप्त करने का प्रयत्न किया करते हैं तथा ऐसा अवसर मिलते ही, संयम मे प्रव्रजित होकर आत्मा का कल्याण करने में भी लग जाते हैं। ऐसे अवसर को व्यर्थ खोने की भूल, वे कदापि नहीं करते। संसार-व्यवहार के जाल मे निकल कर, फिर उसमें नहीं फँसते। वास्तव मे, जिस संसार

को एक बार त्याग चुके हैं, उसी मे फिर फँसना, बड़ी से बड़ी मूर्खता भी है। जैसे कोई बन्दी, जो बन्दीखाने से छूटने की भावना रखता हो और बन्दीखाने से छूटने के लिए प्रयत्न शील रहा हो, बन्दीखाने से निकलने का अवसर पा जावे तथा बन्दीखाने से निकल भी जावे, लेकिन फिर स्वयं ही आकर बन्दीखाने में बन्द हो जावे, तो क्या उसे मूर्ख न कहा जावेगा। इसी तरह, जो व्यक्ति संसार-व्यवहार से निकल कर, आत्म-कल्याण करने की भावना रखता हो, वह, ऐसा अवसर मिलने पर और अपने सिर पर से संसार-व्यवहार का बोझ अनायास उतर जाने पर भी यदि आत्म-कल्याण करने मे न लगे, किन्तु संसार-व्यवहार का बोझ फिर अपने सिर पर ले ले, तो क्या उसे बुद्धिमान कहा जावेगा? कदापि नहीं। बुद्धिमान व्यक्ति, अपने सिर पर से उतरा हुआ संसार-व्यवहार का बोझ, फिर अपने सिर पर कदापि नहीं लाद सकता। जिस सांसारिक प्रपंच से वह निकल चुका है, उसमे कदापि नहीं फँस सकता। उतरे हुए बोझ को फिर अपने सिर पर लादने वाला, जिस संसार-जाल से एक बार छुटकारा पा चुका है, अपने आपको फिर उसी में फँसा लेने वाला व्यक्ति मूर्ख ही है।

मदनरेखा में, युगबाहु के मरने से पहले भी धार्मिकता तो थी, वह, संयम को उत्कृष्ट मान कर यह भावना भी करती थी,

कि 'वह दिन धन्य होगा, जब मैं संसार व्यवहार से निकलकर संयम ले सकूँगी लेकिन यह भावना कब पूर्ण होगी, यह बात, वह स्वयं भी नहीं जानती थी। उसका पति युगबाहु, भावी राजा तथा वह, भावी रानी थी और गर्भवती भी थी। इसलिए निकट भविष्य में, वह, गृह संसार से निकल कर अपनी इस भावना को कार्योन्वित न कर सकती थी, लेकिन अनायास ही, उसे अपनी भावना सफल करने का अवसर मिल गया। पापी मणिरथ द्वारा युगबाहु के मारे जाने पर, वह, अपने सतीत्व की रक्षा के लिए वन में भाग गई। इस प्रकार वह, गृह-प्रपंच के भार से सहज ही छूट गई। फिर भी, उस पर, गर्भ में रहे हुए बालक को जन्म देने तथा पालने पोषने का भार रह गया था। इन दोनों मे से, बालक को जन्म देने का कार्य भी हो चुका था। रहा बालक को पालने-पोषने का कार्य। वह, बालक को अरक्षित त्याग कर, या बालक को साथ लेकर तो संयम ले नहीं सकती थी। मातृ दया और अहिंसा की रक्षा के लिए, बालक को पालन-पोषन तथा बालक की व्यवस्था करना उसके लिए आवश्यक था। परन्तु उसके ऊपर का यह भार भी, राजा पद्मरथ और उसकी रानी ने अपने पर ले लिया। अब यदि वह स्वयं ही किसी प्रपंच मे न पड़े, तो उसके लिए संयम लेने का मार्ग साफ था। लेकिन उसके हृदय मे, अपने उस बालक

को देखने की इच्छा शेष थी, जिसे उसने वन में जन्म दिया था तथा जो राजा पद्मरथ के यहाँ था। यदि उसकी यह इच्छा नष्ट न हुई होती, यदि उसने अपनी इस इच्छा को कार्यान्वित किया होता, तब तो सम्भव था कि वह प्राप्त सुयोग को खो देती, अभी संयम न ले पाती और सांसारिक प्रपंच में फिर फँस जाती। परन्तु किस प्रकार सती के उपदेश से उसकी यह इच्छा नष्ट हो गई, वह प्राप्त सुयोग का उपयोग कर सकी तथा फिर सांसारिक प्रपंच में पडने से बच गई, आदि बातें इस प्रकरण से ज्ञात होंगी।

मणिप्रभ विद्याधर को विदा करके, देव ने मदनरेखा से कहा, कि—आपका मुझ पर बहुत उपकार है। आपकी कृपा से ही, मैं नरक जाने से बच गया और यह देव-भव पाया। मैं, आपके उपकार से कदापि उऋण नहीं हो सकता, फिर भी मेरी यह प्रार्थना है, कि आप मुझे कोई कार्य बतलाइये, जिसे करके मैं अपने चित्त को कुछ शान्ति दूँ।

देव के यह कहने पर, मदनरेखा ने उससे कहा, कि—इन महात्मा का उपदेश सुनकर, मैंने, संसार-व्यवहार से निकल संयम में प्रवर्जित होने का निश्चय किया है। अब मैं, अपना शेष जीवन संयम का पालन करने में ही बिताना चाहती हूँ, परन्तु एक बार मैं अपने उस बालक को देख लेना चाहती हूँ, जिसे

जन्म देकर मैं वन में वृक्ष की डाली में झोली बाँधकर सुला आई थी और जिसे, मिथिला का राजा पद्मरथ अपने घर ले गया है। इसलिए यह अच्छा होगा, कि आप मेरे को मिथिलापुरी में पहुँचा दें। मिथिलापुरी, धार्मिक क्षेत्र है। भगवान् श्री मल्लिनाथ की जन्मभूमि है। वहाँ, कोई न कोई साध्वियाँ होंगी ही। मिथिलापुरी में, मैं अपने पुत्र को भी देख सकूँगी तथा साध्वियों से संयम भी ले सकूँगी।

यद्यपि मदनरेखा को मुनि से यह ज्ञात हो गया था, कि मेरा पुत्र चन्द्रयश राजा हुआ है और वह मेरी खोज करा रहा है, फिर भी उसने राजमाता बनने की इच्छा नहीं की तथा देव से यह नहीं कहा, कि मेरे को सुदर्शनपुर में चन्द्रयश के पास पहुँचा दो। अपितु यही कहा, कि मेरे को मिथिलापुरी पहुँचा दो, जहाँ मैं अपने पुत्र को देख कर, साध्वियों के पास से संयम ले सकूँगी। मदनरेखा का कथन सुनकर एवं उसकी धर्म भावना जान कर, देव बहुत प्रसन्न हुआ। उसने, मदनरेखा को मिथिलापुरी में पहुँचाना स्वीकार किया।

मदनरेखा और देव ने, मुनि को विधिवत वन्दना नमस्कार किया। मुनि को वन्दना-नमस्कार करके उस देव ने, मदनरेखा को अपने विमान में बैठा कर, विमान को मिथिलापुरी की ओर चलाया। मार्ग में, मदनरेखा ने अपना वन मे भाग आना, वन

मे पुत्र जन्मना, हाथी द्वारा उछाली जाना और मुनि की सेवा मे पहुँचना आदि सब वृत्तान्त उस देव को सुनाया। सब वृत्तान्त सुना चुकने पर, मदनरेखा, चुप होकर शान्ति पूर्वक विमान मे बैठी रही। यद्यपि वह देव-विमान बहुत सुन्दर था, मदनरेखा को कभी वैसा विमान बैठने के लिए तो दूर रहा, देखने के लिए भी नहीं मिला था और उस समय मदनरेखा भय या चिन्ता मे भी नहीं थी, फिर भी उसने न तो विमान या उसमे लगे हुए बहुमूल्य पदार्थों को ही उत्सुकता पूर्वक देखा, न उसको विमान मे बैठने के करण कोई प्रसन्नता ही हुई। वह, अनासक्त-भाव से विमान में बैठी हुई थी। वह, न तो उस विमान पर ललचायी थी, न उसने कोई आश्चर्य ही प्रकट किया, न उसको किसी प्रकार का अभिमान ही हुआ। मदनरेखा को निस्पृह भाव से विमान में बैठी देखकर, वह देव सोचने लगा, कि यह विमान देखकर, मेरे को आश्चर्य हुआ था और यह विमान प्राप्त होने के कारण, मैंने अपने को सद्भागी माना था, परन्तु यह सती किस प्रकार निरासक्त बैठी हुई है। इसको, न तो विमान के प्रति लोभ जान पड़ता है, न विमान के विषय मे कोई प्रसन्नता या आश्चर्य होना ही देख पड़ता है। इस प्रकार विचारते हुए उस देव ने, मदनरेखा से कहा, कि हे सती! मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ। यदि आप स्वीकृति दें, तो

मैं पूछूँ। देव के इस कथन के उत्तर में सती ने कहा, कि आप जो कुछ पूछना चाहते हैं, वह निःसंकोच पूछिये। सती की स्वीकृति पाकर देव कहने लगा, कि आप इस विमान मे भी नीची दृष्टि किये हुई ही बैठी हैं, विमान मे लगी हुई श्रेष्ठ तथा मन मोहक सामग्री को देखती तक नहीं हैं, इसलिए मैं यह जानना चाहता हूँ, कि क्या यह विमान आपके चित्त को किंचित् भी आकर्षित नहीं कर सका है? इस विमान मे बैठने के कारण, आपको कुछ भी प्रसन्नता नही हुई है?

देव के इस कथन के उत्तर मे सती ने उससे कहा, कि आप अब भी भूल रहे हैं! भला यह तो बताइये, कि यह विमान आया कहाँ से है? आपको यह विमान मिला कैसे है? आप वह समय स्मरण करिये, जब कि आपके बड़े भाई ने आपके सिर पर खड्ग मारा था और आप क्रोध से तड़फड़ा रहे थे। आपने यदि उसी क्रोध मे शरीर त्यागा होता, तो क्या आपको यह विमान मिल सकता था? आपने अपने हृदय मे धर्म को स्थान दिया, इसी से यह विमान प्राप्त हुआ है। इस तरह यह विमान, धर्म से प्राप्त हुआ है। फिर मे इस विमान को क्या देखूँ उस धर्म को ही क्यों न देखूँ। जिसके किंचित् प्रताप से यह विमान प्राप्त हुआ है! मेरे हृदय मे, इस विमान के प्रति आकर्षण नहीं है किन्तु उस धर्म के प्रति आकर्षण है, जिसको थोड़ी सी

सेवा का यह परिणाम है। मैं, आप से भी यही कहती हूँ, कि आप इस विमान को ही न देखिये, किन्तु उस धर्म को देखिये, जिसके प्रभाव से आप नरक जाने से बचे हैं तथा इस विमान को प्राप्त कर सके हैं। इस विमान के ममत्व मे पड़कर, धर्म को न भूलिये। यदि आप इस विमान पर ही आसक्त रहे, धर्म को विस्मृत हो गये, तो उस दशा मे यह विमान आपको पतित होने न कदापि नही बचा सकता। इसलिए आप इस बात की सावधानी रखें, कि यह विमान या दूसरी कोई दिव्य सम्पदा, आपको किसी बुराई मे डालकर पतित न कर दे। इसके लिए, आप धर्म को सदा याद रखें। आप क्रियात्मक धर्म तो कर नही सकते, केवल भावना रूप धर्म ही कर सकते हैं, लेकिन यदि आपने भावना से भी धर्म की सेवा न की, तो उस दशा मे आपका यह विमान तो छूटेगा ही, साथ ही दुर्गति मे भी पटना पड़ेगा।

मदनरेखा का यह कथन सुनकर देव बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने, इस उपदेश के लिए मदनरेखा की प्रशन्सा करके, उसे धन्यवाद दिया।

मार्ग भर देव और मदनरेखा मे इसी प्रकार की धर्मचर्चा होती रही। विमान, चलते-चलते मिथिलापुरी के समीप आया देव ने मदनरेखा से कहा कि वह मिथिलापुरी दिखाई दे रही है।

इस मिथिलापुरी में, साध्वियाँ भी हैं और राजा पद्मरथ के यहाँ आपका पुत्र भी है। बोलो, आप पहले किस ओर जाना चाहती हैं? पहले पुत्र को देखना चाहती हो, या सतियों का दर्शन करना चाहती हो? आप जहाँ के लिए कहें, मैं आपको पहले वहीं पहुँचा दूँ।

देव के इस कथन के उत्तर में मदनरेखा ने कहा, कि मेरे हृदय मे पुत्र के प्रति स्नेह होने पर भी, मुझे यह विचार होता है, कि पुत्र की और मेरे सतीत्व की रक्षा धर्म के प्रताप से ही हुई है और वह धर्म, मुझे सन्त सतियों की कृपा से ही प्राप्त हुआ था। मैं, आपकी जो धार्मिक सहायता कर सकी थी, वह भी सतियों की कृपा से ही। इस प्रकार, आत्मा का कल्याण करने वाली सतियाँ ही हैं, पुत्र मेरे आत्मा का कल्याण नहीं कर सकता। इस लिए आप, पहले मुझे सतियों की सेवा मे ले चलिये।

मदनरेखा के इस कथन ने भी, देव को आनन्दित ही किया। वह अपने मन मे कहने लगा, कि यह सती धन्य है। एक ओर तो, इसका पुत्र है और दूसरी ओर सतियाँ हैं, लेकिन इसकी भावना पहले सतियों की ओर ही जाने की हुई। मन मे इस प्रकार मदनरेखा की प्रशंसा करता हुआ वह देव, मदनरेखा को, सुदर्शना नाम की आर्यिका के स्थान पर ले गया। सती सुदर्शना का दर्शन करके, मदनरेखा को बहुत प्रसन्नता हुई। उसने और

देव ने, सुदर्शना सती को विधिवत वन्दन-नमस्कार किया। पश्चात् मदनरेखा ने, नम्रता पूर्वक सुदर्शना सती से यह प्रार्थना की, कि आप मुझे निःग्रन्थ-प्रवचन का उपदेश सुनाने की दया कीजिये। मेरी यह उत्कट अभिलाषा है, कि मैं आप से केवलीभाषित धर्म का उपदेश श्रवण करूँ। सुदर्शना सती ने, मदनरेखा की यह प्रार्थना स्वीकार करके, उसे संयम के महत्व का उपदेश सुनाया, जिसे सुन कर मदनरेखा को भी हर्ष हुआ और उस देव को भी।

सुदर्शना सती का उपदेश सुन कर, मदनरेखा हाथ जोड़कर सुदर्शना सती से कहने लगी, कि आपके उपदेश ने मेरे हृदय मे पूरी तरह जागृति ला दी है। मैं उन लोगों को धन्य मानती हूँ, जो सांसारिक प्रपंचों से निकल कर संयम मे प्रवर्जित होते हैं। आपके उपदेश से मेरे हृदय में भी यह भावना हुई है, कि मैं संसार के प्रपंचों से सर्वथा निकल कर संयम स्वीकार करूँ।

सुदर्शना सती से ऐसा कह कर, मदनरेखा ने देव से कहा, कि-अब मैं पुत्र को देखने के लिए भी नहीं जाऊँगी। पुत्र को देखने के लिए जाने पर, सम्भव है, कि मेरा भी अहित हो तथा पुत्र का भी। मैं जब अपने पुत्र को देखूँगी, तब मेरे हृदय में पुत्र के प्रति जो स्नेह होगा उसे देख कर, राजा पद्मरथ की रानी या दूसरे लोगों को सन्देह हो सकता है और उस सन्देह के कारण, किसी प्रकार के अनर्थ की भी सम्भावना हो सकती है। इसके सिवा,

यह भी हो सकता है, कि पुत्र को देखने पर मेरे हृदय मे उसके प्रति ऐसा ममत्व हो, कि जिसके कारण मैं संयम न ले सकूँ। इन बातों को दृष्टि मे रख कर, मैं यही उचित समझती हूँ, कि पुत्र को देखने के लिए न जाऊँ, किन्तु मुनि के तथा आप के कथनानुसार यह मान कर सन्तोष करूँ, कि पुत्र आनन्द में है। मैं, यह पूरी तरह समझ गई हूँ, कि कोई भी व्यक्ति किसी का पालन या किसी की रक्षा करने मे समर्थ नहीं है। आत्मा के साथ जो पूर्व संचित पुण्य लगा हुआ है, उसी से पालन भी होता है और रक्षा भी होती है। इसलिए अब मैं आपको यह कष्ट नहीं देना चाहती, कि आप मेरे को राजा पद्मरथ के यहाँ ले जावें, किन्तु यह कष्ट देना चाहती हूँ, कि आप इन सतीजी से कह कर, मुझे संयम दिलवा दीजिये और इस प्रकार मेरी धार्मिक सहायता कीजिये।

मदनरेखा का कथन सुन कर, वह देव, हृदय मे तो मदनरेखा की दूरदर्शिता तथा धर्म भावना से प्रसन्न ही हुआ, फिर भी उसने मदनरेखा से कहा, कि आप संयम तो लेना चाहती हैं, परन्तु कहीं आपके हृदय में पुत्र को देखने की कामना न रह जावे। किसी कामना के रहने पर भी संयम मे प्रवर्जित होने से, सम्भव है, कि संयम का पूरी तरह पालन न हो सके। आप इस बात का विचार करके, फिर मुझ से कहिये, कि मैं क्या करूँ।

देव के इस कथन के उत्तर में, मदनरेखा ने उससे कहा, कि मैंने इस तथा ऐसी ही दूसरी सब बातो का विचार करके ही यह निश्चय किया है। हृदय मे किसी प्रकार की कामना रहने पर भी संयम स्वीकार करना, किसी समय अवश्य ही हानिप्रद हो सकता है, लेकिन मेरे हृदय में ऐसी कोई कामना शेष नही है, जो कभी संयम में विघ्न उत्पन्न करे। इन सती का उपदेश श्रवण करने से पहले, मेरी यह इच्छा अवश्य थी, कि मैं एक बार अपने उस पुत्र को देख लूँ, जिसे मैं वन मे सुला आई थी, परन्तु इन सती का उपदेश सुनने से मेरी यह इच्छा भी मिट गई है। अब मैं पुत्र को देखना, अपने एवं पुत्र के लिए हानिप्रद मानती हूँ। इसलिए आप इस ओर से निश्चिन्त रहिये और इन सतीजी से कह कर, मुझे संयम दिलवा दीजिये।

मदनरेखा का कथन समाप्त होने पर, उपदेश देनेवाली सुदर्शना सती तथा उपदेश सुननेवाली मदनरेखा को, अपने हृदय से धन्यवाद देते हुए देव ने सुदर्शना सती से मदनरेखा के लिए यह प्रार्थना की, कि—इनकी इच्छा संयम लेने और आपकी शिष्या बनने की है। अतः आप, इन्हे संयम की दीक्षा देने की कृपा करें। देव के साथ ही, मदनरेखा ने भी सुदर्शना सती से दीक्षा देने के लिए प्रार्थना की। परिणाम-स्वरूप, सुदर्शना सती ने मदनरेखा को संयम की दीक्षा देकर, मदनरेखा का नाम सुव्रता

सती रखा। मदनरेखा को दीक्षा दिलाकर वह देव, सुदर्शना और सुव्रता ( मदनरेखा ) सती को विधिवत नमस्कार करके, अपने देवलोक को गया। सुव्रता सती, अपनी गुरुनी सुदर्शना सती की सेवा करती हुई, उत्कृष्ट भाव से संयम का पालन करने लगी तथा अधिकाधिक धार्मिक ज्ञान प्राप्त करने लगी।

उधर सुदर्शनपुर में, चन्द्रयश राज्य करने लगा। उसने मदनरेखा की बहुत खोज कराई, परन्तु जब मदनरेखा का कहीं पता न लगा, तब वह मदनरेखा की ओर से निराश होगया। दूसरी ओर, उसका छोटा भाई नमिराज-जिसका जन्म वन में हुआ था, जिसे वृक्ष में वस्त्र की झोली के भीतर सुलाकर, मदनरेखा सरोवर पर स्वच्छ होने के लिए गई थी और जिसे मिथिलापुरी का राजा पद्मरथ ले आया था—पाँच धायों के संरक्षण में वृद्धि पाने लगा। जब नमिराज कुछ बड़ा हुआ, तब राजा पद्मरथ ने उसको अठारह देश की दासियों के संरक्षण मे रखा, जिससे कुछ ही समय में नमिराज, अठारह देश के रहन-सहन एवं भाषा-भूषा से परिचित हो गया। जब वह अधिक बड़ा हुआ, तब राजा पद्मरथ ने उसको विद्या पढ़ने और कला सीखने के लिए, कलाचार्य के पास बैठाया। नमिराज होनहार था, इसलिए थोड़े ही काल मे वह विद्वान् तथा कलाकुशल हो गया।

नमिराज युवक हुआ। राजा पद्मरथ ने, नमिराज को विवाह

के योग्य जानकर, उसका सुन्दरी और कुलवती कन्याओं के साथ विवाह कर दिया। नमिराज, आनन्दपूर्वक गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करने लगा। कुछ समय के पश्चात्, राजा पद्मरथ ने विचार किया कि अब नमिराज सब तरह से योग्य है। यह, राजकाज भली-भाँति चला सकता है। प्रजा भी, इससे प्रसन्न है। दूसरी ओर मैं वृद्ध हो गया हूँ। ऐसी दशा मे मेरे लिए अब यह उचित न होगा, कि राजकाज और संसार व्यवहार के भार को मैं अपने ही सिर पर लादे रहूँ, सांसारिक झंझटो में फँसा हुआ ही मरूँ तथा आत्मकल्याण के लिए कोई प्रयत्न न करूँ। मेरे लिए अब यही योग्य है, कि मैं राजपाट आदि सब कुछ नमिराज को सौंपकर, संयम मे प्रवजित हो जाऊँ और परलोक का हित साधन करूँ।

राजा पद्मरथ ने अपना यह विचार नमिराज एवं अपने मन्त्रियों के सामने प्रकट किया। मन्त्रियों ने तो राजा पद्मरथ के विचार का समर्थन किया, परन्तु नमिराज को, राजा पद्मरथ का विचार सुनकर बहुत दुःख हुआ। उसने अपने पिता राजा पद्मरथ से विचार परिवर्त्तन के लिए बहुत प्रार्थना की, लेकिन अन्त मे राजा पद्मरथ और मन्त्रियों के समझाने से, नमिराज ने राजा बनना स्वीकार किया।

राजा पद्मरथ ने, राजपाट आदि नमिराज को सौंप दिया। नमिराज, मिथिला का राजा हुआ। वह, राज-काज भली-भाँति

चलाने लगा। नमिराज को राजपाट सौंपकर, पद्मरथ धर्मकार्य करने लगा। वह इस प्रतीक्षा में रहने लगा, कि मिथिला में किन्हीं मुनिराज का आगमन हो और मैं उनसे संयम ग्रहण करूँ। योगा-योग से कुछ समय के पश्चात् ही, वहाँ, एक स्थविर मुनि का शिष्य मंडली सहित आगमन हुआ। राजा पद्मरथ ने, उन स्थविर मुनि का उपदेश सुना। फिर उनसे संयम लेकर, संयम का पालन करते हुए शरीर त्याग, सिद्ध पद प्राप्त किया।

# युद्ध
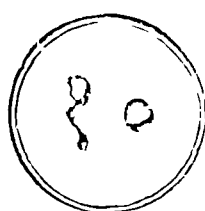
संसार में, ऐसे लोग बहुत कम होते हैं, जिन्हें प्रभुता प्राप्त होने पर भी अहंकार नहीं होता। अधिकांश लोगों को, प्रभुता मिलने पर अहङ्कार होता ही है। इस सम्बन्ध में, तुलसीदासजी ने कहा है—

> तुलसी को जनमेउ जग माहीं।
> प्रभुता पाय जाहि मद नाहीं॥

अर्थात्—संसार में ऐसा कौन जन्मा है जिसे प्रभुता पाकर अहङ्कार न हुआ।

प्रभुता और अहङ्कार का, कारण-कार्य सम्बन्ध है। जहाँ कारण है, वहाँ कार्य होता ही है। ऐसी घटना कोई-सी ही देखने में आवेगी, जहाँ कारण के होने पर भी कार्य न हो। इसके अनुसार,

प्रभुता मिलने पर भी अहङ्कार न हो, ऐसा व्यक्ति भी अपवाद रूप कोई ही देखने को मिलेगा। यद्यपि अहंकार की उत्पत्ति के दूसरे कारण भी हैं, लेकिन प्रभुता, अहंकार को बहुत शीघ्र जन्म देती है और जहाँ अहंकार है, वहाँ अविवेक का होना भी उतना ही सम्भव है, जितना सम्भव प्रभुता से अहङ्कार का होना है। प्रभुता, अहङ्कार को जन्म देती है और अहङ्कार, विवेक को नष्ट करता है। अहंकार के कारण जो व्यक्ति विवेक-भ्रष्ट हो गया है, वह, अर्थ—अनर्थ को देख समझ कर, अनर्थ से बचने में असमर्थ रहता है। ऐसा व्यक्ति, तुच्छ के लिए महान् की हानि सहज ही कर डालता है। इसी से किसी कवि ने कहा है कि—

यौवनं धन सम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता।
एकैकमप्यनर्थाय किमुयत्र चतुष्टयम् ॥

अर्थात—यौवन, धन, सम्पत्ति, प्रभुता और अविवेक, इन में से प्रत्येक अनर्थकारी है तो जहाँ ये चारों ही हों वहाँ के अनर्थ का तो कहना ही क्या है!

संसार में जितने भी युद्ध हुए हैं, उन मे से अधिकांश, केवल अहंकार के कारण ही हुए हैं। युद्ध के योग्य कोई उचित कारण न होने पर भी, अपने अहंकार का पोषण करने के लिए युद्ध किया गया तथा रक्त की नदी बहाई गई, इसके अनेकों उदाहरण मिल सकते हैं। युद्ध के प्रवर्त्तक राजालोग, अहंकारवश इस बात का

विचार तक नहीं करते, कि युद्ध करने से कितनी हानि होगी और युद्ध न करने से कितनी हानि होगी। केवल पाँच ग्राम पाकर सन्तुष्ट होने के लिए तत्पर पाण्डवो से, कौरवों ने युद्ध क्यों किया था। अपने भाई पाण्डवों का विशाल राज्य हड़प लेनेवाले कौरव राग, यदि पाण्डवों को पाँच ग्राम देकर युद्ध रोक देते, तो उनकी कोई अधिक हानि नही थी। लेकिन वे, अहंकार के कारण, कृष्ण के समझाने पर भी ऐसा करने के लिए तय्यार नहीं हुए। परिणामत वह भयङ्कर युद्ध हुआ, जो महाभारत के नाम से प्रसिद्ध है। गत वर्षों में जो यूरोपीय महायुद्ध हुआ था, उसके वास्तविक कारण की खोज की जावे तो यही ज्ञात होगा, कि वह युद्ध अहंकार के कारण ही हुआ था। दूसरा कोई ऐसा कारण न था, जिसके लिए महान् जन-संहारक युद्ध किया जाता। हल्दीघाटी के प्रसिद्ध युद्ध का कारण भी, मानसिंह या अकबर का अहंकार ही था। इस प्रकार अहंकार के कारण, युद्धादि अनेकों अनर्थ हुए और होते हैं।

इस प्रकरण में भी एक ऐसे युद्ध का वर्णन है, जो एक तुच्छ कारण को आगे रख कर, केवल अहङ्कारवश प्रारम्भ किया गया था। नमिराज और चन्द्रयश, दोनों राजा थे। दोनों के यहाँ हाथियों की कमी न थी। यदि नमिराज का एक हाथी चन्द्रयश र लेता, या चन्द्रयश का एक हाथी नमिराज ले लेता, तो दोनों में

से कोई, कङ्गाल नहीं हो सकता था। लेकिन दोनों ही राजा युवक थे, धन्न सम्पन्न थे, प्रभुताप्राप्त थे और अहङ्कार से भरे हुए थे। इस कारण दोनों ने, केवल एक हाथी के लिए युद्ध ठान दिया। उन में से, किसी ने यह विचार तक नहीं किया, कि एक हाथी के लिए युद्ध करने पर कितने हाथी मारे जावेंगे, कितने मनुष्य नष्ट हो जावेंगे, कितनी स्त्रियाँ विधवा हो जावेंगी, कितने बालक अनाथ हो जावेंगे, कितना धन नष्ट हो जावेगा तथा यह सब होने पर भी, जिसके लिए युद्ध करते हैं वह हाथी प्राप्त हो सकेगा, अथवा हमारे यहाँ रह सकेगा या नहीं।

मिथिलापुरी में, राजा नमिराज और सुदर्शनपुर मे राजा चन्द्रयश राज्य कर रहा था। यद्यपि नमिराज तथा चन्द्रयश, एक ही माता पिता से जन्मे हुए भाई थे, परन्तु यह बात दोनों में से कोई भी नही जानता था। चन्द्रयश तो यह मानता था, कि मैं युगबाहु का पुत्र हूँ और नमिराज यह मानता था, कि मैं पद्मरथ का पुत्र हूँ। दोनो ही को यह मालूम न था, कि हमारे कोई सहोदर भाई है; किन्तु दोनो यही मानते थे, कि हम अपने पिता के इकलौते पुत्र हैं। उन विशेष ज्ञानी मुनि से जिनने सुना था, उन लोगों के सिवा किसी को भी यह पता न था, कि चन्द्रयश और नमिराज दोनों भाई हैं, लेकिन एक ऐसी घटना हो गई, कि जिसके कारण यह गुप्त बात प्रगट हो गई।

राजा नमिराज के यहाँ, एक अच्छा हाथी था। वह हाथी, मदमस्त होकर, अपने स्थान से छूट जंगल मे निकल गया। राजा नमिराज के सेवको ने उस हाथी की बहुत खोज की, परन्तु वह हाथी किसी के भी हाथ नहीं आया, न उसका पता ही चला, कि वह किस ओर गया है। हाथी, वन से घूमता-फिरता सुदर्शनपुर की सीमा मे आया। सुदर्शनपुर की सीमा मे पहुँच कर, हाथी ने उत्पात मचाया। सुदर्शनपुर राज्य की प्रजा, हाथी से भयग्रस्त होकर, राजा चन्द्रयश के पास पुकार ले गई। उसने राजा चन्द्रयश से प्रार्थना की, कि एक हाथी न मालूम कहाँ से आया है, जो डील-डौल में बहुत बड़ा और देखने मे सुन्दर है। वह, उत्पात द्वारा धन जन की बहुत हानि कर रहा है। उसके उत्पात से, हम लोग बहुत दु:खी हो गये हैं, अतः आप हमे दु:खमुक्त करने की कृपा कीजिये।

राजा चन्द्रयश ने, प्रजा की प्रार्थना ध्यानपूर्वक सुनकर प्रजा को सान्त्वना दी और उससे कहा कि—मैं तुम लोगों का दु:ख मिटाकर तुम्हे सुखी करने के लिए ही राजा हूँ, अतः तुम लोग निर्भय होओ। मैं शीघ्र ही हाथी को वश करके तुम्हें कष्ट-मुक्त करूँगा।

राजा चन्द्रयश को, प्रजा द्वारा यह ज्ञात हो ही गया था, कि वह उत्पात करनेवाला हाथी, भीमकाय और सुडौल है। इसलिए

उसने, उस हाथी को भगाने या मारने के बदले, अधीन करने का निश्चय किया। इस निश्चय को कार्यान्वित करने एवं प्रजा का दुःख मिटाने के लिए, राजा चन्द्रयश, अपनी सेना और हाथी पकड़ने में कुशल लोगों को साथ लेकर उस स्थान पर गया, जहाँ हाथी ने उत्पात मचा रखा था। हाथी का पता लगाकर, चन्द्रयश ने, उसे घेर लिया तथा अधीन कर लिया। या तो हाथी का मद उतर गया हो इस कारण, अथवा और किसी गुप्त कारण से, वह हाथी, बिना किसी श्रम या कठिनाई के इस तरह चन्द्रयश के अधीन हो गया, जैसे वह चन्द्रयश के अधीन होने के लिए ही वहाँ आया हो। चन्द्रयश, उस हाथी को सुदर्शनपुर ले आया और उसे करिगृह (हाथीशाला) में बाँध दिया। हाथी, शान्तिपूर्वक रहने लगा। चन्द्रयश, कभी-कभी उस हाथी पर आरूढ़ भी हुआ करता था। राजचिह्नों के साथ उस हाथी पर बैठा हुआ वह ऐसी शोभा पाता था, जैसे ऐरावत हाथी पर बैठा हुआ दूसरा इन्द्र ही हो। उस हाथी की प्राप्ति से, चन्द्रयश को बहुत प्रसन्नता हुई। वह, अपने मन में कहा करता था, कि यह हाथी, मेरे सद्भाग्य से ही मेरे राज्य में आया तथा मेरे अधीन हुआ है।

उधर राजा नमिराज के सेवक लोग, उस हाथी की खोज में ही थे। खोज करते-करते, उन्हें ज्ञात हुआ, कि वह हाथी सुदर्शनपुर में राजा चन्द्रयश के यहाँ है। राजा चन्द्रयश ने उस हाथी को

अधीन करके बाँध रखा है। यह जानकर, सेवक लोग, महाराजा नमिराज के पास आये। उनने, राजा नमिराज से हाथी विषयक सब समाचार, कहा। मेरा प्रधान हाथी सुदर्शनपुर मे राजा चन्द्रयश के यहाँ है, यह जानकर नमिराज ने, एक बलवान और चतुर दूत को बुलाकर उससे कहा, कि—तुम, सुदर्शनपुर जाओ। मेरा प्रधान हाथी जो मस्त होकर छूट गया था, वह, सुदर्शनपुर मे राजा चन्द्रयश के यहाँ है। तुम चन्द्रयश से कहना, कि वह, उस हाथी को मेरे यहाँ भेज दे। उनसे कहना, कि हाथी भेज देने से, तुम्हारे और नमिराज के बीच मैत्री-सम्बन्ध होगा। इसके विरुद्ध, यदि तुम हाथी न दोगे, तो तुम्हे विवश होकर हाथी देना होगा तथा उसके साथ न मालूम कैसी हानि भी उठानी पड़ेगी।

नमिराज ने, दूत से इस तरह कहकर, उसे सुदर्शनपुर भेजा। नमिराज का दूत, सुदर्शनपुर गया। वह, राजा चन्द्रयश के सामने उपस्थित हुआ। उसने, राजा चन्द्रयश का उचित अभिवादन किया। राजा चन्द्रयश ने भी, दूत का योग्य सत्कार किया। राजा चन्द्रयश ने, दूत को बैठाकर, उससे उसके आने का कारण पूछा। दूत ने चन्द्रयश से कहा, कि—मुझे, मिथिलापति महाराजा नमिराज ने आपकी सेवा मे भेजा है। उनका प्रधान हाथी, मस्त होकर छूट गया था। वह आपके यहाँ आगया और इस समय भी आप ही के यहाँ है। महाराजा नमिराज ने, उस हाथी के लिए ही मुझे

आपके पास यह प्रस्ताव लेकर भेजा है, कि आप हमारा हाथी हमारे पास भेज दीजिये। ऐसा करने से, हमारे और आपके बीच नवीन मैत्री-सम्बन्ध स्थापित होगा। उन्हे विश्वास है, कि आप उनके द्वारा भेजा गया प्रस्ताव स्वीकार करके, हाथी भेज देंगे तथा इसी विश्वास के आधार पर, मैं आपकी सेवा मे उपस्थित हुआ हूँ।

दूत का कथन सुनकर, राजा चन्द्रयश ने कहा, कि–मेरे राज्य मे न मालूम कहाँ से एक हाथी आया था। उस हाथी ने ऐसा उत्पात मचाया, कि जिससे दुःखी होकर प्रजा मेरे पास पुकार आई। मैंने, उस हाथी को बल-प्रयोग द्वारा अधीन करके, प्रजा को दुःख–मुक्त किया। वह हाथी, मेरा अपराधी है। वह किसका हाथी है, यह तो मैं नहीं जानता, लेकिन यदि वह हाथी मिथिलापति का हो, तब भी, जिस हाथी ने मेरा अपराध किया है और जिसे मैंने बलपूर्वक अपने अधीन किया है, उस हाथी को मैं कैसे छोड़ सकता हूँ!

चन्द्रयश का उत्तर सुनकर, दूत फिर कहने लगा, कि—वह हाथी, अवश्य ही आपका अपराधी होगा और आपने उसे बलपूर्वक ही वश किया होगा, लेकिन किसी समय मनुष्य का भी अपराध क्षमाकर दिया जाता है, तो हाथी तो पशु है! इसलिए, क्या आप उसका अपराध क्षमा न करेंगे? और वह भी, महाराजा नमिराज जैसे बलवान तथा पराक्रमी राजा से मैत्री–सम्बन्ध जोड़ने

के लिए। महाराजा नमिराज के यहाँ अनेक हाथी हैं, परन्तु वह हाथी सब मे प्रधान है तथा महाराजा को उससे प्रेम है। यदि ऐसा न होता, तो वे, एक हाथी के लिए, मेरे द्वारा आपके पास कोई प्रस्ताव न भेजते। महाराजा नमिराज का प्रस्ताव तो मैंने आपको सुनाया ही है, उसके साथ मेरी स्वयं की सम्मति भी यही है, कि आप यदि महाराजा नमिराज का प्रस्ताव स्वीकार कर लें, तो अच्छा। ऐसा करने से, आपको महाराजा नमिराज की वह मैत्री सहज ही प्राप्त हो जावेगी, जिसके लिए अनेक राजा लोग प्रयत्न करते रहते हैं और मूल्यवान पदार्थ भेंट भेजा करते हैं। आपको, उनसे मैत्री-सम्बन्ध जोड़ने का, यह सुयोग मिला है। आप, इस सुयोग को न जाने दीजिये।

दूत के कथन के उत्तर मे, चन्द्रयश ने दूत से कहा कि तुम्हारा कथन ठीक हो सकता है, परन्तु मेरे हृदय मे, तुम्हारे महाराजा की मैत्री प्राप्त करने के लिए ऐसी उत्सुकता नहीं है, कि जिसके लिए, मैं अपने बल से वश किया गया हाथी उन्हे दूँ। यदि मेरी राजनीति अच्छी है, तो सभी राजा मेरे मित्र ही हैं। मैं, शुल्क देकर किसी से मैत्री नहीं करना चाहता, न मुझे इसकी आवश्यकता ही है।

दूत ने कहा, कि वैसे तो मैं आपका उत्तर महाराजा नमिराज की सेवा मे निवेदन कर दूँगा, लेकिन इससे पहले, मैं

आपसे यह निवेदन करना उचित समझता हूँ, कि आप एक बार अपने उत्तर पर फिर विचार कर लीजिये। आपने जो उत्तर दिया, उसे महाराजा नमिराज अपना अपमान मानेंगे और वे अपना अपमान कदापि नहीं सह सकते। इसके सिवा, वे अपने प्रिय हाथी को भी, आपके यहाँ नहीं रहने दे सकते। इसलिए वे कुपित होकर, आपके विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दें, यह बहुत सम्भव है। महाराजा नमिराज का कोप सहना, कोई सरल बात नहीं है। जिस पर महाराजा नमिराज का कोप होता है, उसकी रक्षा उसी दशा में हो सकती है, जब कि वह महाराजा नमिराज के सन्मुख दीनता बताकर उन से प्राण-भिक्षा माँगे, अथवा प्राण बचाने के लिए वन में भाग जावे। और किसी तरह, उसकी रक्षा हो ही नहीं सकती। महाराजा नमिराज से, मैत्री के बदले केवल एक हाथी के लिए, जो कि उन्हीं का है, शत्रुता मोल लेकर आप अपने सिर पर आपत्ति बुलावें, यह मेरी समझ से तो उचित नहीं है। फिर आप जैसा उचित समझें, वैसा करें और वैसा उत्तर दें।

दूत का यह कथन सुनकर, चन्द्रयश की आँखें क्रोध से लाल हो गईं। उसने नमिराज के दूत से कहा, कि तुम्हारे राजा कैसे प्रतापी तथा बलवान हैं, यह मैं भलीभाँति जान गया हूँ। एक हाथी को वश न कर सकना ही, उनके बल पराक्रम का पता

देता है। मुझे, न तो उन्हे प्रसन्न करने की इच्छा है, न उनके कोप से भय है। मैं, जिस तरह उनकी मैत्री की उपेक्षा करता हूँ, इसी तरह उनकी शत्रुता को भी उपेक्षा करता हूँ। तुम्हारे महाराजा की जैसी इच्छा हो, वे वैसा कर सकते हैं, लेकिन मैं हाथी कदापि नहीं दे सकता। यदि तुम्हारे महाराजा ने सुदर्शनपुर पर चढाई करने का दुःसाहस किया, तो उन्हे भी वही परिणाम भोगना पड़ेगा, जो परिणाम सुदर्शनपुर की सीमा मे आकर उत्पात मचाने के कारण, हाथी को भोगना पड़ा है। तुम, जाओ और अपने महाराजा से, जैसा उचित समझो वैसा कहो। इस सम्बन्ध में, अब अधिक कुछ कहने सुनने की आवश्यकता नहीं है।

बात चीत भंग हो गई। दूत, मिथिलापुरी को लौट आया। उसने नमिराज को वह सब बातचीत सुनाई, जो उसके तथा चन्द्रयश के बीच हुई थी। साथ ही, उसने अपना मन्तव्य भी प्रकट किया। उन सब बातों को सुनकर, नमिराज क्रुद्ध हो उठा। उसने, अपने मन्त्रियों को बुलाकर, उन्हे सब बातों से परिचित किया और चन्द्रयश पर चढ़ाई करने की इच्छा प्रकट की। मन्त्रियो ने भी, नमिराज की इच्छा का समर्थन किया। अन्त मे, नमिराज ने, सेना लेकर सुदर्शनपुर पर चढाई कर दी। उसने, रात के समय, सुदर्शनपुर की चारों ओर सेना का घेरा

डाल दिया। सुदर्शनपुर पर घेरा डालने से पहले, उसने, चन्द्रयश को अपनी चढ़ाई की खबर तक न होने दी।

चन्द्रयश को ज्ञात हुआ, कि नमिराज चढ़ाई करके आया है और उसकी सेना ने, नगर को घेर लिया है। यह ज्ञात होने पर चन्द्रयश ने, अपने सेनापति एवं मन्त्रियों को इस विषयक परामर्श करने के लिए बुलाया। सब की सम्मति यही हुई, कि नमिराज ने वीरोचित मार्ग त्याग कर, कायरो की तरह चढ़ाई की और नगर को घेरा है। यदि नमिराज वीर होता, तो इस तरह चुप-चाप न आता, किन्तु हमें सावधान करता। कुछ भी हो, लेकिन जब शत्रु स्वयं चढ़ाई करके आया हो और हमें युद्ध के लिए ललकार रहा हो, अथवा युद्ध करने के लिए विवश कर रहा हो, तब तो उससे युद्ध न करना कायरता है। इसलिए, नमिराज पर अवश्य ही आक्रमण करना चाहिए और युद्ध द्वारा, उसकी रण-तृष्णा सदा के लिए शान्त कर देनी चाहिए।

नमिराज के साथ युद्ध करने का निश्चय हो जाने पर, यह विचार होने लगा, कि नमिराज के साथ किस रीति से युद्ध करना चाहिए, जिसमें उसको परास्त किया जा सके। इसके लिए, चन्द्रयश के सेनापति ने यह सम्मति प्रकट की, कि शत्रु ने नगर को घेर कर अपने लिए बाहरी सहायता का मार्ग रोक दिया है। इसके सिवा, शत्रुदल मैदान में है तथा उसके लिए, सहायता

के सब मार्ग खुले हुए हैं। साथ ही, शत्रु-सेना अभी उत्तेजित होकर आई है। इसलिए अपने को इस रीति से युद्ध करना चाहिए, कि अपने द्वारा शत्रु-सेना की तो अधिक हानि हो, परन्तु शत्रु द्वारा अपनी अधिक हानि न हो। साथ ही, शत्रु-सेना निर्बल तथा उत्साहहीन हो जाय और अकुला कर थक जाय। ऐसा होने पर, अपने लिए शत्रु-दल को परास्त करना बहुत सरल होगा। उस समय, यदि हम शत्रु-सेना पर अनायास आक्रमण करेंगे, तो शत्रु-सेना अवश्य ही छिन्न-भिन्न होकर भाग जावेगी। इसके लिए मैं यह उचित समझता हूँ, कि अपनी सेना दुर्ग पर से ही, युद्ध करे। नगर एवं दुर्ग के द्वार तो बन्द हैं ही, उन्हे अभी न खोला जावे। कुछ दिनों के पश्चात्, जब शत्रु-दल में शिथिलता देखी जावे, तब अचानक द्वार खोलकर उस पर आक्रमण कर दिया जावे। इस रीति से युद्ध करने पर, निश्चय ही अपनी विजय होगी।

सेनापति की यह सम्मति, चन्द्रयश को भी उचित जान पड़ी और उसके मन्त्रियो को भी। इसलिए, सेनापति की सम्मति अनुसार युद्ध करने का निश्चय किया।

चन्द्रयश ने, अपनी सेना को सज्ज होने की आज्ञा दी। चन्द्रयश की आज्ञानुसार, सेना सुसज्जित होगई। चन्द्रयश ने सैनिकों को युद्ध के कारण से परिचित करने, नमिराज की

चढ़ाई का अनौचित्य बताया। फिर सैनिकों को उत्तेजित करने के लिए, उनकी वीरता की प्रशंसा की तथा उन्हें वीरोचित कर्त्तव्य का भी भान कराया। चन्द्रयश ने, जब सैनिकों को उत्साहित देखा, तब उन्हें, दुर्ग पर चढ़ कर शत्रु सेना पर अस्त्र-शस्त्र बरसाने की आज्ञा दी। चन्द्रयश की आज्ञा होते ही, उसकी सेना, दुर्ग पर चढ़ गई और नमिराज की सेना पर अस्त्र-शस्त्र बरसाने लगी।

नमिराज की सेना नीचे थी और चन्द्रयश की सेना दुर्ग पर थी। इसलिए नमिराज की सेना, चन्द्रयश की सेना को वैसी हानि नहीं कर पाती थी, जैसी हानि, चन्द्रयश की सेना द्वारा नमिराज की सेना की हो रही थी। नमिराज समझता था, कि चन्द्रयश की सेना दुर्ग से बाहर निकल अभिमुख हो युद्ध करेगी, लेकिन उसने जब चन्द्रयश की सेना को दुर्ग पर से ही अस्त्र-शस्त्र बरसाते देखा, तब उसे बहुत निराशा हुई। वह कुछ निश्चय न कर सका कि इस समय क्या करना चाहिए। चन्द्रयश की सेना द्वारा बरसाये गये अस्त्र शस्त्रों से नमिराज के बहुत सैनिक हताहत हुए। नमिराज की सेना का उत्साह भी बहुत कुछ मन्द हो गया।

संध्या के समय जब युद्ध बन्द हुआ तब नमिराज ने हताहत सैनिकों की व्यवस्था कराई। यह करके वह अपने साथी सामन्तों एवं सेनानियों से इस सम्बन्ध में परामर्श करने लगा कि आगामी

दिन अपनी युद्ध-विधि कैसी होनी चाहिए। उसने उपस्थित लोगों से कहा कि—चन्द्रयश वीर तो नहीं है! यदि वह वीर होता तो इस तरह द्वार बन्द करके दुर्ग से ही न बैठा रहता, किन्तु बाहर निकल कर युद्ध करता। उसका दुर्ग से बाहर न निकलना यह स्पष्ट करता है, कि वह हम लोगों से भयभीत है।

नमिराज के सामन्तों एवं सेनानियों ने भी नमिराज के सुर में अपना सुर मिलाया। वे भी चन्द्रयश को कायर कहने लगे। नमिराज ने इस तरह की प्रारम्भिक बातें करके कल को युद्ध-विधि कैसी हो, यह प्रसङ्ग छेड़ा। उसने कहा कि—चन्द्रयश तो कायरता बता रहा है, परन्तु अपने को क्या करना चाहिए और कल किस तरह युद्ध करना चाहिए। शत्रु-सेना, दुर्ग पर से शस्त्र वर्षा करके अपनी हानि करती है। यदि वह बाहर निकले, तब तो हमें अपना पराक्रम दिखाने का अवसर मिले, परन्तु वह तो कायर चन्द्रयश की सेना ठहरी! कायर की सेना भी, कायर ही होती है। ऐसी दशा में, हम लोग, नगर का घेरा डाले कब तक पड़े रहेंगे और कब तक धन जन की हानि कराते रहेंगे! इस तरह घेरा डालकर पड़े रहने से एवं धन जन की क्षति होती रहने से, अनेक सैनिकों का उत्साह मन्द हो जावेगा, वे घबरा जावेंगे और उनमें शिथिलता आजावेगी। इसलिए ऐसा कौन-सा उपाय करना चाहिए, जिससे युद्ध शीघ्र समाप्त हो जावे तथा

चढ़ाई का अनौचित्य बताया। फिर सैनिकों को उत्तेजित करने के लिए, उनकी वीरता की प्रशंसा की तथा उन्हे वीरोचित कर्त्तव्य का भी भान कराया। चन्द्रयश ने, जब सैनिकों को उत्साहित देखा, तब उन्हे, दुर्ग पर चढ़ कर शत्रु सेना पर अस्त्र-शस्त्र बरसाने की आज्ञा दी। चन्द्रयश की आज्ञा होते ही, उसकी सेना, दुर्ग पर चढ़ गई और नमिराज की सेना पर अस्त्र-शस्त्र बरसाने लगी।

नमिराज की सेना नीचे थी और चन्द्रयश की सेना दुर्ग पर थी। इसलिए नमिराज की सेना, चन्द्रयश की सेना को वैसी हानि नहीं कर पाती थी, जैसी हानि, चन्द्रयश की सेना द्वारा नमिराज की सेना की हो रही थी। नमिराज समझता था, कि चन्द्रयश की सेना दुर्ग से बाहर निकल अभिमुख हो युद्ध करेगी, लेकिन उसने जब चन्द्रयश की सेना को दुर्ग पर से ही अस्त्र-शस्त्र बरसाते देखा, तब उसे बहुत निराशा हुई। वह कुछ निश्चय न कर सका कि इस समय क्या करना चाहिए! चन्द्रयश की सेना द्वारा बरसाये गये अस्त्र शस्त्रों से नमिराज के बहुत सैनिक हताहत हुए। नमिराज की सेना का उत्साह भी बहुत कुछ मन्द हो गया।

संध्या के समय जब युद्ध बन्द हुआ तब नमिराज ने हताहत सैनिकों की व्यवस्था कराई। यह करके वह अपने साथी सामन्तों एवं सेनानियों से इस सम्बन्ध में परामर्श करने लगा कि आगामी

दिन अपनी युद्ध-विधि कैसी होनी चाहिए। उसने उपस्थित लोगों से कहा कि—चन्द्रयश वीर तो नहीं है! यदि वह वीर होता तो इस तरह द्वार बन्द करके दुर्ग में ही न बैठा रहता, किन्तु बाहर निकल कर युद्ध करता। उसका दुर्ग से बाहर न निकलना यह स्पष्ट करता है, कि वह हम लोगों से भयभीत है।

नमिराज के सामन्तों एवं सेनानियों ने भी नमिराज के सुर में अपना सुर मिलाया। वे भी चन्द्रयश को कायर कहने लगे। नमिराज ने इस तरह की प्रारम्भिक बातें करके कल को युद्ध-विधि कैसी हो, यह प्रसङ्ग छेड़ा। उसने कहा कि—चन्द्रयश तो कायरता बता रहा है, परन्तु अपने को क्या करना चाहिए और कल किस तरह युद्ध करना चाहिए। शत्रु-सेना, दुर्ग पर से शस्त्र वर्षा करके अपनी हानि करती है। यदि वह बाहर निकले, तब तो हमें अपना पराक्रम दिखाने का अवसर मिले, परन्तु वह तो कायर चन्द्रयश की सेना ठहरी! कायर की सेना भी, कायर ही होती है। ऐसी दशा में, हम लोग, नगर का घेरा डाले कब तक पड़े रहेंगे और कब तक धन जन की हानि कराते रहेंगे! इस तरह घेरा डालकर पड़े रहने से एवं धन जन की क्षति होती रहने से, अनेक सैनिकों का उत्साह मन्द हो जावेगा, वे अकुला जावेंगे और उनमें शिथिलता आजावेगी। इसलिए ऐसा कौन-सा उपाय करना चाहिए, जिससे युद्ध शीघ्र समाप्त हो जावे तथा

कायर चन्द्रयश को उसके कृत्य का दण्ड दिया जासके।

नमिराज के इस कथन के उत्तर में, सामन्त और सेनानी कहने लगे, कि-इसका एक मात्र उपाय यही हो सकता है, कि कल नगर तथा दुर्ग के द्वार पर आक्रमण करके, उसे तोड़ डाला जावे। इसके सिवा, दूसरा कोई उपाय नहीं हो सकता। जब नगर और दुर्ग का द्वार टूट जावेगा, तब हमारी सेना दुर्ग तथा नगर में प्रवेश कर सकेगी, अथवा चन्द्रयश एवं उसकी सेना को बाहर आना होगा और उस दशा में सहज ही विजय प्राप्त की जा सकेगी। हम कल ऐसा ही करेंगे। कल, चन्द्रयश और उसकी सेना को ज्ञात हो जावेगा, कि दुर्ग मे छिपकर शस्त्रास्त्र चलाने तथा बाहर न निकलने का क्या परिणाम होता है!

सामन्तों और सेनानियों का कथन समाप्त होने पर, नमिराज उनकी प्रशन्सा करके कहने लगा, कि-तुम लोगों ने अच्छा उपाय सोचा है! वास्तव में, द्वार तोड़े बिना अपना उद्देश्य पूर्ण न होगा, किन्तु अपने को हानि ही उठानी पड़ेगी। तुम लोगों के लिए, द्वार तोड़ना कोई कठिन बात भी नहीं है। यह तो क्या, वज्रनिर्मित द्वार कपाट भी, तुम लोग सरलता से तोड़ सकते हो। कल, अपनी सेना को यही कार्य करना चाहिए।

प्रातःकाल नमिराज ने, अपनी सेना की वीरता की प्रशंसा की, उसको वीरोचित उपदेश दिया और उसे, नगर एवं दुर्ग का

द्वार तोड़कर भीतर घुस जाने तथा नगर और दुर्ग पर अधिकार करने की आज्ञा दी। साथ ही, उसने सैनिकों को यह शिक्षा भी दी, कि निरस्त्र प्रजा की धन जन सम्बन्धी कोई हानि मत करना। अपराध, केवल चन्द्रयश का है, न कि प्रजा का। निरपराध प्रजा पर अत्याचार करना, वीरता पर कलङ्क लगाना है। इसलिए तुम लोग, प्रजा को किसी प्रकार का कष्ट न देना, प्रजा के धन को धूल और प्रजा की बहू-बेटियों को अपनी माँ बहन मान कर सुदर्शनपुर की प्रजा को यह सिद्ध कर दिखाना, कि मिथिला के सैनिक वीर हैं, वे निरापराध लोगों और निरस्त्र तथा भागते हुए शत्रुओं के साथ, उदारता एवं क्षमा का व्यवहार करते हैं।

# अज्ञानान्त

आत्मा में जब तक अज्ञान रहता है, आत्मा, जब तक वास्तविकता को नहीं जानता है, वस्तु के स्वरूप को नहीं समझता है, तब तक वह, कार्य भी विपरीत ही करता है। जो व्यक्ति चाँदी को चाँदी ही नहीं समझता है, किन्तु सीप मानता है, वह चाँदी का वैसा ही अनादर करता है, जैसा अनादर सीप का किया जाता है। बल्कि वह, सीप मानी हुई चाँदी को हाथ में आने पर भी त्याग देता है। वास्तविकता न जानने पर, ऐसा होता ही है। किसी कवि ने कहा ही है—

नवेतियो यस्य गुण प्रकर्षं
सतं सदा निन्दति नात्र चित्रम्।

यथा किराती करिकुम्भ लब्धां,
मुक्तां परित्यज्य विभर्ति गुञ्जाम् ॥

अर्थात्—जो, जिसके गुण को नहीं जानता वह, उसका अनादर करता है। जैसे भीलनी, गुंजा (घूँघची) तो पहनती है, लेकिन गज-मुक्ता को फेंक देती है।

भीलनी, गजमुक्ता का अनादर इसी से करती है, कि वह गजमुक्ता का महत्व नही जानती। इसी प्रकार गुंजा का आदर इस लिए करती है, कि उसकी दृष्टि में, गुंजा का बहुत महत्व है। वह, गुंजा और गजमुक्ता के गुण मूल्य एवं दोनों के भेद से अपरिचित है। इस अज्ञान के कारण ही, वह, गजमुक्ता का अनादर तथा गुंजा का आदर करती है। वास्तव में, जब तक अज्ञान है, तब तक यह मालूम ही नही होता, कि क्या हेय है, क्या ज्ञेय है और क्या उपादेय है। इस कारण, दृष्टि में विपर्यास होना और वस्तु के साथ विपरीत व्यवहार करना स्वाभाविक है।

पिछले प्रकरण में जिस युद्ध का वर्णन है, वह युद्ध भी अज्ञान के कारण ही प्रारम्भ किया गया था। नमिराज और चन्द्रयश, सहोदर भाई थे। सहोदर भाइयों के मध्य, स्नेह रहा करता है। परन्तु अज्ञान के कारण, दोनों इस बात को नहीं जानते थे, कि हम आपस में भाई भाई हैं। इसलिए, केवल एक हाथी के लिए, दोनों एक दूसरे के प्राणघातक शत्रु बन गये। उनका यह अज्ञान कैसे

मिटा और अज्ञान मिटने पर उनकी भावना कैसी हो गई, वैर का स्थान स्नेह ने कैसे लिया, आदि बातें इस प्रकरण से ज्ञात होंगी।

सेना को प्रोत्साहन एवं वीरोचित कर्त्तव्य की शिक्षा देकर, नमिराज, नगर और दुर्ग का द्वार तोड़ने के लिए सेना को भेजना ही चाहता था, इतने ही में, उसकी दृष्टि दो साध्वियों पर पड़ी, जो नमिराज की ही ओर आ रही थीं। साध्वियो को देखकर, नमिराज को इस विचार से आश्चर्य हुआ, कि ये संयमधारिणी यहाँ युद्धस्थल पर कैसे आईं! इस तरह आश्चर्य करता हुआ नमिराज, उन साध्वियों के सामने गया। उसने, साध्वियों को विधिवत वन्दन-नमस्कार किया तथा उनका दर्शन हुआ, इसके लिए अपने भाग्य को सराहना की। पश्चात् उसने साध्वियों से कहा, कि—आप संयमधारिणी, यहाँ युद्धस्थल पर कैसे आईं? आप लोगों के लिए, ऐसे स्थान पर जाने का, भगवान तीर्थङ्कर ने निषेध किया है, जहाँ युद्ध हो रहा हो। इस समय, मैं चन्द्रयश को मार डालना चाहता हूँ और चन्द्रयश, मुझे मार डालना चाहता है। ऐसे द्वन्द के समय, आपका कोई उपदेश सार्थक नहीं हो सकता तथा इसी कारण भगवान ने, संयमधारी के लिए ऐसे समय में एवं ऐसे स्थान पर जाने का निषेध किया है। ऐसा होते हुए भी, आपका आगमन यहाँ कैसे हुआ, यह जानने के लिए मैं बहुत उत्सुक हूँ।

नमिराज के सन्मुख उपस्थित दोनों सतियो में से, एक तो

सती सुव्रता ( पूर्व की मदनरेखा, नमिराज की जन्मदात्री माता ) थीं और दूसरी सती, उनके साथ आई थीं। नमिराज के कथन के उत्तर में, सती सुव्रताजी ने नमिराज से कहा, कि—राजन्, तुम्हारा कथन ठीक है। वास्तव में, संयमधारी को ऐसे स्थान पर न जाना चाहिए, परन्तु हम किसी विशेष कारण से ही यहाँ आई हैं और यह जानना चाहती हैं कि इस युद्ध का कारण क्या है। किस घटनावश, इस युद्ध का प्रसङ्ग उपस्थित हुआ है ?

नमिराज, अधिकार के गर्व एवं क्रोध के वश होकर, चन्द्रयश पर चढ़ाई अवश्य कर आया था और युद्ध भी प्रारम्भ कर दिया था, फिर भी वह चरमशरीरी महापुरुष था तथा धर्म भी जानता था। इस कारण, सुव्रताजी सती के प्रश्न का उत्तर देने के लिए, वह असमंजस में पड़ गया। वह सोचने लगा, कि मैं इन सती के प्रश्न का क्या उत्तर दूँ। इनके सन्मुख झूठ बोल कर, युद्ध का दूसरा कारण बताना तो सर्वथा अनुचित एवं महान् पाप होगा और यदि युद्ध का वास्तविक कारण बताता हूँ, तो ये सती यही कहेंगी, कि तुम, दूसरे के छोटे-छोटे अपराध का तो विचार करते हो तथा अपराधी को दण्ड देते हो और स्वयं एक हाथी के लिए इतने मनुष्यों का रक्त-पात करने—कराने का अपराध कर रहे हो ! ऐसी दशा में, इन सती को क्या उत्तर दूँ।

कुछ देर के विचार के पश्चात्, नमिराज इस निश्चय पर

पहुँचा, कि इन सती का प्रश्न, विना उत्तर दिये ही टाल देना चाहिए। इस निश्चय पर पहुँच कर, उसने सती सुव्रताजी से कहा, कि आप जैसी त्यागिनियों को यह प्रश्न करना ही न चाहिए। ये संसार के झगड़े, इसी तरह चला करते हैं। संयमधारी लोगों को न तो ऐसे झगड़ों का कारण ही पूछना चाहिए, न इस तरह के किसी प्रपंच में ही पड़ना चाहिए। इसलिए आप युद्ध का कारण न पूछिये, किन्तु यहाँ से पधार जाइये और किसी शान्त स्थान पर विराज कर, ज्ञान ध्यान द्वारा मोक्ष-प्राप्ति का प्रयत्न कीजिये।

नमिराज का यह उत्तर रुक्ष था, फिर भी, सुव्रता सती के हृदय पर, नमिराज के उत्तर का कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं हुआ। वे, पहले की ही तरह प्रसन्न बनी रहीं। उनने नमिराज से कहा, कि-राजन्, जान पड़ता है, कि युद्ध का कारण बताने मे तुम्हे कुछ संकोच हो रहा है। इसी से, तुमने यह टालाटूली का उत्तर दिया है और जिस अज्ञान के कारण तुम नर-रक्त बहाने को तय्यार हुए हो, उसी अज्ञान मे हमें भी रखना चाहते हो। लेकिन तुम्हारा यह प्रयत्न व्यर्थ है। हम से युद्ध का कारण छिपा हुआ नहीं है, किन्तु हम सब बातें जानती हैं तथा इसी कारण हम, तुम्हारा यह अज्ञान मिटाने के लिए यहाँ आई हैं, जिसके कारण यह युद्ध-काण्ड मचा हुआ है।

सती के कथन के उत्तर मे, नमिराज ने कहा, कि हो सकता है कि आपका कथन ठीक हो, आप युद्ध का कारण भी जानती हों और मुझ मे अज्ञान भी हो, लेकिन मै जब आप से यह निवेदन कर चुका, कि आप इस प्रपंच मे न पड़िये, किन्तु ज्ञान ध्यान में लगिये, तब आपका अधिक कुछ कहना व्यर्थ ही है। नमिराज ने यह उत्तर दिया, फिर भी सुव्रता सती दृढ़ ही रहीं। उनने कहा-राजन्, तुम, मेरे कथन को व्यर्थ मानते हो, यह भी तुम्हारा अज्ञान ही है। यदि ज्ञान होता, तो तुम ऐसा कदापि नहीं कह सकते थे। हम, तुम्हारा यह अज्ञान मिटाने के लिए ही तो आई हैं।

सती का उत्तर सुन कर तथा उनकी दृढ़ता देख कर, नमिराज अपने मन में कहने लगा, कि ये सतियें साधारण तो नहीं जान पड़तीं। यदि साधारण होतीं, तो मेरा उत्तर सुन कर ही चली जातीं, अधिक बातें न करतीं। इस तरह विचारते हुए नमिराज ने, सती से कहा, कि आप उसी का अज्ञान मिटाइये, जो अपना अज्ञान मिटाना चाहता हो। मुझे इतना अवकाश नहीं है, कि मैं, अज्ञान मिटाने के लिए आप जो उपदेश दें, उसे सुनूँ। राजनीति और धर्म, भिन्न-भिन्न हैं। आप, धर्म का मर्म तो जानती होंगी, लेकिन राजनीति नहीं जानती हैं इसी से मेरा अज्ञान मिटाने का प्रयत्न करना चाहती हैं।

नमिराज के कथन के उत्तर में, सती ने कहा, कि—राजनीति और धर्म में कोई सम्बन्ध न मानना भी अज्ञान है और हमें राजनीति से अनभिज्ञ कहना भी अज्ञान है। हम, राजनीति ही नहीं, किन्तु उसका तल भी जानती हैं। तुम अपना अज्ञान नहीं मिटाना चाहते हो, लेकिन अज्ञान न मिटाने पर, चन्द्रयश की अपेक्षा तुम अपनी ही हानि अधिक करोगे। जो अज्ञान हम अभी मिटाना चाहती हैं, वह यदि अभी न मिटकर युद्ध के पश्चात मिटा, तो उस दशा में, तुम्हे असह्य पश्चात्ताप तथा दुःख होगा। लेकिन फिर तुम्हारा किया कुछ नहीं हो सकता। इसलिए यही अच्छा है, कि तुम, हमारे कथन को सुनना स्वीकार करो और अज्ञानान्धकार से निकल कर, प्रकाश में आओ। हमारा कथन ऐसा विस्तृत भी न होगा, कि जिसे सुनने में अधिक समय की आवश्यकता हो।

सती सुव्रताजी के इस कथन ने, नमिराज के हृदय मे खलबली पैदा कर दी। वह सोचने लगा, कि ये सतियें न मालूम क्या कहना चाहती हैं! यदि मैं इनका कथन नहीं सुनता हूँ, तो सम्भव है, कि—जैसा ये कहती हैं—मुझे युद्ध के अन्त मे दुःख करना पड़े। और यदि सुनना स्वीकार करता हूँ, तो ये न मालूम क्या कहेंगी। इस तरह सोचता हुआ नमिराज, इस निश्चय पर आया, कि एक बार इनका कथन सुनना तो चाहिए। यदि इनके कथन मे कोई महत्त्व की बात हुई तब तो ठीक ही है, नहीं तो मैं अपना कार्य

करने के लिए स्वतन्त्र हूँ ही। मै किसी बन्धन में तो पड़ ही नहीं रहा हूँ!

इस तरह सोचकर, नमिराज ने, सती सुव्रताजी से कहा, कि अच्छा, आप क्या कहना चाहती हैं, कहिये। लेकिन आप जो कुछ कहे वह बहुत थोड़े मे कहे। नमिराज के यह कहने पर सुव्रता सती कहने लगीं, कि—राजा, तुम यह युद्ध एक हाथी के लिए कर रहे हो; परन्तु यह तो बताओ, कि यदि छोटे भाई का एक हाथी बड़ा भाई ले ले, तो क्या छोटे भाई के लिए यह उचित है, कि वह बड़े भाई को मार डाले, या मार डालने के लिए उद्यत हो? सती के इस कथन के उत्तर में नमिराज ने कहा, कि—नहीं, छोटे भाई को ऐसा कदापि न करना चाहिए, किन्तु बड़े भाई के लिए अपना सर्वस्व त्याग देना चाहिए। लेकिन मेरे और चन्द्रयश के बीच यह सम्बन्ध कब है, जो आप ऐसा प्रश्न करती हैं? न तो चन्द्रयश मेरा भाई है, न मैं ही चन्द्रयश का भाई हूँ। इसलिए आपका यह कथन, प्रसङ्ग के लिए असंगत है।

नमिराज का कथन समाप्त होने पर, सुव्रता सती बोलीं कि राजन्, तुम में यही तो अज्ञान है। इस अज्ञान को मिटाना ही, मेरा उद्देश्य है। लो, सुनो। तुम और चन्द्रयश, दोनों सहोदर भाई हो तथा मैं, तुम दोनों की जन्मदात्री माता हूँ। चन्द्रयश, तुम्हारा बड़ा भाई है और तुम, चन्द्रयश के छोटे भाई हो। इस

सम्बन्ध के होते हुए भी, तुम केवल एक हाथी के लिए चन्द्रयश से युद्ध करो, या चन्द्रयश तुम से युद्ध करे, यह कदापि उचित नहीं है।

सती का कथन सुनकर, नमिराज को बहुत ही आश्चर्य हुआ। उसने कहा, कि—आपके इस कथन को मैं सत्य कैसे मान सकता हूँ, जबकि मैं, महाराजा पद्मरथ और महारानी पुष्पमाला का पुत्र हूँ। चन्द्रयश, मेरा भाई कैसे है तथा आप, मेरी माता किस तरह हैं? नमिराज के इस कथन पर मे, सती सुव्रताजी ने, अपने गार्हस्थ्य जीवन का परिचय देकर उस घटना का वर्णन किया, जिसके कारण उन्हे वन में भाग जाना पड़ा था। पश्चात् वे कहने लगीं, कि—वन में मेरे उदर से तुम्हारा जन्म हुआ था। मैं, एक वृक्ष की डाली में वस्त्र की झोली बाँध, उस झोली मे तुम्हे सुलाकर, शरीर-शुद्धि के लिए सरोवर पर गई थी, जहाँ हाथी ने अपनी सूँड से मुझे आकाश में फेंक दिया और मैं, मणिप्रभ विद्याधर के विमान में गिरी। मणिप्रभ की कृपा से, मै, एक विशेष ज्ञानी मुनि की सेवा में पहुँच गई, जिनने तुम्हारे विषय मे मुझ मे यह कहा, कि तुम्हारे बालक को, मिथिला का राजा पद्मरथ ले गया है तथा उसकी रानी पुष्पमाला, तुम्हारे बालक को अपना पुत्र बनाकर पालपोष रही है। मुनि से यह जानकर, मुझे सन्तोष हुआ। साथ ही, तुम्हें देखने की प्रबल इच्छा भी हुई। इतने ही मे, वहाँ पर तुम्हारे

देव-भव धारी पिता भी आ गये, जिनके विमान मे मै मिथिला आई। मिथिला में, मैंने सुदर्शना सती का उपदेश सुना, जिससे मुझे, संसार से सर्वथा विरक्ति हो गई। मैंने, तुम्हे देखना मेरे एवं तुम्हारे लिए हानिप्रद मानकर, तुम्हे देखने का विचार त्याग दिया तथा सुदर्शना सती की शिष्या बनकर, संयम का पालन करने लगी। मैं, संयम का पालन करती हुई अपना जीवन बिता रही थी, इतने ही मे मुझे, अवधिज्ञान द्वारा तुम्हारे और चन्द्रयश के युद्ध का वृत्तान्त ज्ञात हुआ। मैंने सोचा, कि अज्ञान के कारण ही मेरे दोनों पुत्र परस्पर एक दूसरे के शत्रु बने हुए हैं। यह सोचकर मैं अज्ञान की निन्दा करती हुई, अपनी गुरुनी सती सुदर्शना के समीप गई। मेरे मुख से अज्ञान की अप्रासंगिक निन्दा सुनकर, गुरुनी ने पूछा, कि—आज अज्ञान की इतनी निन्दा क्यों? मैंने कहा, कि अज्ञान के कारण इस समय संसार में आग-सी लगी हुई है, जिसमें अनेकों मनुष्य का भस्म होना सम्भव है। यदि आप आज्ञा दें, तो मैं जाकर यह अज्ञान मिटा दूँ और उस आग को शान्त कर दूँ। मेरे यह कहने पर गुरुनी ने पूछा, कि संसार में आग किस तरह लगी हुई है तथा तुम, उसको किस तरह शान्त कर सकती हो? मैंने कहा, कि—मेरे दोनों पुत्र नमिराज और चन्द्रयश यह नहीं जानते, कि हम दोनों सहोदर भाई हैं। इस अज्ञान के कारण, वे आपस में युद्ध कर रहे हैं,

तथा एक दूसरे के प्राण लेना चाहते हैं। यदि उनका यह अज्ञान मिट जावे, तो सम्भव है, कि वे युद्ध करना त्याग दें। आप स्वीकृति दें, तो मैं जाकर, इस गुप्त रहस्य को प्रकट करके उनका अज्ञान मिटा दूँ जिससे युद्ध रुक जावे।

मेरी इस प्रार्थना पर, गुरुनी ने कहा, कि—संयमधारियों को युद्ध स्थल पर जाना तो न चाहिए, लेकिन वह युद्ध तुम्हारे गये बिना मिट भी तो नहीं सकता। क्योंकि, वे दोनों भाई-भाई हैं इस बात को तुम्हीं जानती हो। ऐसी बातों को दृष्टि में रखकर ही, भगवान ने, उत्सर्ग तथा अपवाद ये दो मार्ग बताये हैं। उत्सर्ग मार्ग मे तो संयमी का युद्धस्थल पर जाना निषिद्ध ही है, लेकिन मैं अपवाद स्वरूप तुम्हे यह आज्ञा देती हूँ, कि तुम जाकर इस अज्ञान को मिटाने और युद्ध रोकने का प्रयत्न करो। इस प्रकार गुरुनी की आज्ञा लेकर ही, मैं यहाँ आई हूँ तथा तुम से कहती हूँ, कि तुम और चन्द्रयश आपस में भाई-भाई हो, इस लिए युद्ध न करो।

सती सुव्रताजी के कथन को, 'नमिराज ने ध्यानपूर्वक सुना। सती का कथन समाप्त हो जाने पर, वह कहने लगा, कि—आप साध्वी होने के कारण झूठ तो नहीं बोल सकतीं, फिर भी, मैं, आपके कहने मात्र से आपको अपनी माता तथा चन्द्रयश को अपना भाई कैसे मान सकता हूँ। साथ ही, जिनने मेरा पालन-पोषण

करके, मुझे अपना उत्तराधिकार दिया है, राज्य सौंपा है, उन महाराजा पद्मरथ और महारानी पुष्पमाला को माता-पिता मानना, कैसे त्याग सकता हूँ ! आज तो आप मेरी माता बनने को तय्यार हो गई, लेकिन बाल्यकाल में, यदि पद्मरथ तथा पुष्पमाला ने मेरी रक्षा न की होती, मेरा पालन-पोषण न किया होता, तो क्या मेरा जीवन रह सकता था ! इसके सिवा, यदि आपके कथनानुसार मै आप ही का पुत्र होऊँ, तब भी, मैं आपका परित्यक्त पुत्र हूँ। इसलिए मेरा और आपका क्या सम्बन्ध रहा ! मैं, आपको अपनी माता कैसे मान लूँ !

नमिराज के कथन के त्तर में, सती सुव्रता कहने लगीं, कि—राजा, स्त्रियों का जीवन कैसा होता है और तुम्हे जन्म देने के पश्चात् मैं कैसे कष्ट में पड़ गई थी, इसका तुम्हें पता ही नहीं है। नहीं तो, तुम ऐसा कदापि न कहते। यह तो मेरा आयुर्बल शेष था, इससे मैं जीवित रह गई तथा तुम से यह कह रही हूँ, कि मैं तुम्हारी जन्म-दात्री माता हूँ, लेकिन यदि मर गई होती, तो यह भी कौन कहता ! मैं, तुमको सदा के लिए त्याग कर तो गई नहीं थी। कुछ देर के लिए छोड़ कर शरीर शुद्ध करने गई थी। यदि मुझे सदा के लिए तुम्हारा परित्याग करना होता, तो मैं, तुम्हारी रक्षा का प्रयत्न क्यों कर जाती, वृक्ष की डाली में, अपने वस्त्र की झोली बाँध कर उसमें तुम्हें क्यों सुला जाती और

तुम्हारे सम्बन्ध मे मुनि से पूछ-ताछ क्यों करती। मैं, विषम परिस्थिति मे पड़ गई थी, इसी से तुम मुझ से छूटे। नहीं तो, मातृ-हृदय ऐसा कठोर नहीं होता है, कि जो अपने बालक को त्याग दे। इतने पर भी मै यह नहीं कहती, कि तुम पुष्पमाला को माता न मानो। मैं तो यही कहती हूँ, कि तुम्हारी जन्मदात्री माता मैं हूँ, पुष्पमाला पालन-कर्तृ माता है। इसके सिवा, मैं यह सम्बन्ध तुम से कुछ चाहने के लिए नहीं बता रही हूँ। मेरे हृदय में यह कामना नहीं है, कि तुम मुझे राजमाता बनाओ और मैं, राजमाता बन कर राजैश्वर्य का उपभोग करूँ। मैं तो केवल यह कह रही हूँ, कि चन्द्रयश तुम्हारा भाई है, अतः एक हाथी के लिए उसके प्राणों के ग्राहक मत बनो। कदाचित तुम्हारी दृष्टि में मैं अपराधिन होऊँ, इस कारण मुझे माता न मानना चाहो, लेकिन चन्द्रयश ने तो तुम्हारा कोई अपराध नहीं किया है। इसलिए उसको भाई मानने में तो, तुम्हे कोई आपत्ति न होनी चाहिए और उसके साथ प्रेम का व्यवहार करना चाहिए; युद्ध तो न करना चाहिए।

सती सुव्रताजी के इस कथन ने, नमिराज के हृदय पर बहुत प्रभाव डाला। वह, सती के कथन का कुछ भी उत्तर न दे सका, किन्तु मन ही मन सोचने लगा, कि इन सती का कथन युक्ति संगत है। ये, संकट मे पड़ जाने के कारण ही मुझ से दूर हुई

थी। साथ ही, ये किसी लालच से भी मेरी माता नहीं बन रही हैं। इस पर भी, कदाचित मै इनका कोई अपराध मान भी लूँ, तो इस सम्बन्ध मे चन्द्रयश का तो कोई अपराध हो ही नही सकता, जो मैं उसको अपना भाई न मानूँ। परन्तु एक ओर तो यह सब परिस्थिति है और दूसरी ओर यह प्रसिद्ध बात है, कि मैं, महाराजा पद्मरथ तथा महारानी पुष्पमाला का पुत्र हूँ। मैं भी, अब तक ऐसा ही मान रहा हूँ। ऐसी दशा मे मुझे क्या करना चाहिए, वह समझ मे नहीं आता।

नमिराज, किंकर्त्तव्यविमूढ़ की तरह असमंजस मे पड़ा हुआ था। राजा को असमंजस मे पड़ा हुआ देखकर, सुव्रता सती ने उससे कहा कि—राजा, जान पड़ता है, कि तुम असमंजस मे पड़े हुए हो। तुम्हे असमंजस से निकालने के लिए, मैं यह कहती हूँ, कि तुम तो जन्मते ही मुझ से छूट गये थे, इस कारण मुझे नहीं पहचानते, परन्तु चन्द्रयश तो मुझे अब भी पहचान लेगा। क्योंकि, जिस समय तुम्हारे पिता की हत्या की गई थी तथा मैं वन में भाग गई थी, उस समय चन्द्रयश सयाना था। इसलिए वह, मुझे अवश्य ही पहचान लेगा। मै, उसके पास जाकर उसे भी यह बताती हूँ, कि नमिराज तुम्हारा छोटा भाई है। मै विश्वास करती हूँ, कि यह जानते ही चन्द्रयश भ्रातृ-स्नेह के वश हो अवश्य ही तुम्हारे पास आकर तुमसे प्रेम प्रदर्शित

करेगा और इस प्रकार, तुम्हे पूरी तरह विश्वास हो जावेगा, कि चन्द्रयश मेरा बड़ा भाई है। लेकिन मैं, चन्द्रयश के पास जाने से पहले, तुम से यह प्रतिज्ञा कराना आवश्यक समझती हूँ, कि जब चन्द्रयश तुम से मिलने के लिए आवे, तव तुम सद्भाव पूर्वक उसका सम्मान करोगे, हृदय में किसी प्रकार का दुर्भाव न रखोगे, न ऐसा व्यवहार ही करोगे, बड़े भाई के प्रति जिसका करना अनुचित माना जाता हो। क्या तुम, इन बातों के लिए मुझे विश्वास दिला सकते हो?

नमिराज ने उत्तर दिया, कि आपके इस कथन ने, इस समय मुझे असमंजस में डूबते हुए को बचा लिया है। मैं, आपके कथनानुसार प्रतिज्ञा करता हूँ, कि यदि महाराजा चन्द्रयश मुझ से मिलने आवेंगे, तो मैं उनका सम्मान करूँगा, उनके प्रति दुर्भाव न रखूँगा। मिलने आये हुए शत्रु के प्रति भी आदर और प्रेम का व्यवहार किया जाता है, तो जिन्हे आप मेरा बड़ा भाई कहती हैं, उनके साथ मैं अनादर का व्यवहार कैसे कर सकता हूँ! बल्कि, यदि मुझे यह विश्वास हो जावे कि चन्द्रयश मेरे भाई हैं, तो मैं स्वयं उनकी सेवा में उपस्थित होकर अपने अपराध के लिए उनसे क्षमा माँग सकता हूँ। आप मेरी ओर से निश्चिन्त रहिये तथा जो कुछ करना चाहती हैं वह करिये।

नमिराज का कथन सुनकर, सती सुव्रताजी, नमिराज से यह

कहकर सुदर्शनपुर की ओर चल दीं, कि अब तुम सुदर्शनपुर नगर और दुर्ग पर आक्रमण मत करना। नमिराज के समीप से चलकर दोनों सतियाँ सुदर्शनपुर के द्वार पर आईं। सुदर्शनपुर का द्वार बन्द था। द्वार-रक्षकों के सरदार ने सती से कह दिया, कि यह युद्ध का समय है, इसलिए द्वार नहीं खुल सकता। सती ने, उस सरदार का नाम लेकर उससे कहा, कि—तुम पूर्ण स्वामि-भक्त हो, यह मैं जानती हूँ। इसलिए युद्ध के समय, तुम्हारा द्वार न खोलना और किसी को भीतर न आने देना उचित ही है, परन्तु जिस समय युद्ध स्थगित है, उस समय, हम साध्वियों को नगर मे आने देने मे तो कोई आपत्ति न होनी चाहिए।

सुव्रताजी सती के मुख से अपना नाम सुनकर, सरदार को आश्चर्य हुआ। उसने सती से कहा, कि आपको मेरा नाम कैसे ज्ञात हुआ? सती ने उत्तर दिया, कि मै तुम्हारा नाम बहुत पहले से जानती हूँ। सरदार ने पूछा, कि कब से और कैसे? सरदार के इस प्रश्न के उत्तर में, सती ने अपना पूर्व परिचय सुनाकर बताया कि मैं तुम्हारे राजा चन्द्रयश की माता हूँ। सती का परिचय जानकर सरदार ने कहा, कि आप पधारीं यह तो प्रसन्नता की बात है, परन्तु युद्धकाल में दुर्ग या नगर का द्वार खोलना, आपत्ति-जनक एवं नियम-विरुद्ध है। सरदार के इस कथन के उत्तर में सती ने कहा, कि यदि तुम अपने अधिकार से द्वार नहीं खोलना

चाहते, तो अपने महाराजा की स्वीकृति प्राप्त कर लो। मेरा परिचय देने के साथ ही, उनसे यह भी कहना, कि नमिराज से तुम्हें किंचित भी भय न करना चाहिए। नमिराज तुम्हारा छोटा भाई है, जो अज्ञानवश तुम पर चढ़ाई कर आया था, परन्तु अब यह सम्बन्ध जानकर उसने युद्ध स्थगित कर दिया है।

सती का अन्तिम कथन सुनकर, द्वाररक्षक सामन्त को और भी आश्चर्य हुआ। उसने सती से कहा, कि अच्छा, आप ठहरी रहिये, मैं अभी जाकर महाराजा चन्द्रयश को सब समाचार सुनाता हूँ। फिर वे जैसी आज्ञा देंगे, वैसा किया जावेगा। सती से यह कह कर, द्वाररक्षक सामन्त, चन्द्रयश के पास गया। उसने चन्द्रयश के पास सूचना भेजी, कि द्वार-रक्षक सामन्त एक आवश्यक शुभ समाचार लेकर उपस्थित हुआ है। द्वार रक्षक सामन्त द्वारा भेजी गई सूचना पाकर, चन्द्रयश बहुत ही प्रसन्न हुआ। शत्रु का नम्र होना और सन्धि-प्रस्ताव भेजना, यही समाचार युद्ध के समय मे शुभ समाचार माना जाता है, इसलिए चन्द्रयश ने यही समझा, कि एक ही दिन मे हुई क्षति से, नमिराज भयभीत हो गया होगा और उसने, किसी के द्वारा सन्धि का प्रस्ताव भेजा होगा। यह समझने के कारण, प्रसन्न होते हुए चन्द्रयश ने, द्वाररक्षक सामन्त को सम्मुख उपस्थित होने की आज्ञा दी। द्वाररक्षक, चन्द्रयश के सम्मुख

उपस्थित हुआ। उसने चन्द्रयश से कहा, कि महाराज, आपकी जय हो, विजय हो. मैं, एक बहुत आनन्ददायक समाचार लेकर आपकी सेवा मे उपस्थित हुआ हूँ। चन्द्रयश ने कहा, कि क्या शुभ समाचार है, कहो। द्वार-रक्षक कहने लगा, कि महाराज, आप अपनी जिन माताजी की खोज मे थे, बहुत खोज कराने पर भी जिनका पता न लगा था और जिनके न मिलने से आप दुखी रहा करते हैं, आपकी वे माताजी, साध्वी-वेश मे आई हैं तथा नगर का द्वार बन्द होने से, नगर के बाहर ठहरी हुई है। उनके मुख से यह भी ज्ञात हुआ, कि महाराजा नमिराज आप के छोटे भाई हैं। इसलिए आप जैसी आज्ञा दें, वैसा किया जावे।

द्वार-रक्षक सामन्त का कथन सुन कर, चन्द्रयश बहुत ही हर्षित हुआ। उसने द्वाररक्षक से कहा, कि द्वार के समीप शत्रु सेना तो नहीं है, यह जानने के पश्चात्, तुम द्वार खोलकर माता को भीतर आने दो, तब तक मैं भी आता हूँ। चन्द्रयश की आज्ञा पाकर, द्वाररक्षक सामन्त, द्वार पर आया। उसने नमिराज की सेना द्वार के समीप कहीं नहीं है, यह विश्वास करने के पश्चात् कपाट खोल कर, सुव्रता सती और उनके साथ की दूसरी सती को, भीतर बुला लिया। दोनों सती जब नगर मे आ गई, तब द्वाररक्षक सामन्त ने, उनसे अपने अपराध के लिए क्षमा माग कर यह प्रार्थना की, कि आप यहीं ठहरिये,

महाराजा चन्द्रयश अभी यहीं आते हैं। सती से द्वाररक्षक ऐसा कह रहा था, इतने ही में, चन्द्रयश भी वहीं आगया। उसने, अपनी माता को देखते ही पहचान लिया। माता का दर्शन होने के कारण उसे इतना हर्ष हुआ, कि उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे। उसने, सती को विधिपूर्वक प्रणाम किया और फिर रुँधे कण्ठ से कहने लगा, कि मैंने आपकी बहुत खोज कराई थी, लेकिन आपका कहीं भी पता न लगा। आज का दिन धन्य है, जो अनायास ही आपका दर्शन हुआ और वह भी, इस विग्रह के समय में। आज, मुझे वह दुःखद समय याद आ रहा है, जब कि पिता तथा पितृव्य के देह त्याग के साथ ही, मुझ अभागे को आपने भी असहाय छोड़ दिया था। मेरी समझ मे नही आता, कि आप, उस संकटकाल में कहाँ तथा क्यो चली गई थीं। मेरा हृदय यह जानने के लिए उत्सुक हो रहा है, कि आप इतने समय तक कहाँ रहीं, संयम-वेश क्यों धारण किया एवं उस बालक का क्या किया, जो आपके गर्भ में था।

सती सुव्रता ने, चन्द्रयश को धैर्य देकर शान्त किया। महाराजा चन्द्रयश की संयम धारिणी माता आई है, यह जान कर नगर और राजपरिवार के अनेक लोग, उस स्थान पर आकर एकत्रित हो गये, जहाँ चन्द्रयश सती सुव्रताजी से बातें कर रहा था। चन्द्रयश को धैर्य देकर सती ने, युगबाहु के मरने के पश्चात्

का अपना सब हाल सुनाया और यह बताया, कि मैं किन कारणों से वन गई थी। सती द्वारा कहा गया हाल सुनते हुए चन्द्रयश ने जब सती के मुख से नमिराज विषयक समाचार सुना, तब वह बहुत ही प्रसन्न हुआ। वह कहने लगा, कि इस समाचार ने मेरे हृदय को बहुत ही आनन्दित किया है, कि नमिराज मेरा भाई ही है। मुझ को पहले यह बात मालूम न थी, नहीं तो मैं, एक हाथी के लिए नमिराज से युद्ध करने को कदापि तय्यार न होता। अब मैं, नमिराज से युद्ध न करूँगा, किन्तु उसकी प्रसन्नता के लिए, अपना सर्वस्व त्यागना भी कर्त्तव्य मानूँगा।

यह कह कर चन्द्रयश, नमिराज के पास जाने को उद्यत हुआ। उपस्थित लोगों को भी, सती के मुख से यह सुनकर बहुत प्रसन्नता हुई, कि नमिराज और चन्द्रयश दोनों भाई-भाई हैं। सब लोग इस विचार से और भी अधिक आनन्दित हुए, कि जिस युद्ध के कारण सब लोगों का हृदय भविष्य की चिन्ता से दुःखी हो रहा था, वह युद्ध मिट जावेगा।

नमिराज के पास जाने के लिए उद्यत चन्द्रयश से, सती ने कहा, कि चन्द्रयश, ठहरो। इतने उतावले न होओ। अभी मैंने यह तो बताया ही नहीं है, कि मैंने संयम क्यों लिया और यहाँ क्यों नहीं आई! चन्द्रयश को ठहरा कर, सती ने, संयम लेने के कारण रूप विचार और नमिराज के पास जाने एवं सुदर्शनपुर

आने तक का सब हाल कहा तथा नमिराज से उनकी जो बात-चीत हुई थी, वह भी सुनाई। पश्चात् वे कहने लगीं, कि तुम में और नमिराज में, अज्ञान के कारण ही युद्ध हो रहा था। नमिराज भी अज्ञान में था तथा तुम भी अज्ञान में थे। दोनों ही यह नहीं जानते थे, कि हम आपस में भाई भाई हैं। मैं तुम दोनों का यह अज्ञान मिटाने के लिए ही आई थी। मेरा, यह उद्देश्य पूरा हुआ है। अब तुम्हें जैसा उचित जान पड़े वैसा कर सकते हो, लेकिन मैं अपनी ओर से तो नमिराज की ही तरह तुम से भी यही कहती हूँ, कि एक हाथी के लिए भाई-भाई का आपस में युद्ध करना और मनुष्यों का रक्त बहाना, सर्वथा अनुचित है। नमिराज ने, मेरे इस कथन को स्वीकार करके युद्ध स्थगित कर दिया है। वह, तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा होगा।

सती का कथन समाप्त होने पर, चन्द्रयश कहने लगा, कि अब तक मुझे यह ज्ञात न था कि मेरे कोई भाई है, इसलिए मैं, अपने आपको भ्रातृहीन और अभागा मान कर खेद किया करता था तथा सोचा करता था, कि मुझे किस पाप के कारण भ्रातृ-हीन होना पड़ा है! आज यह जान कर, कि नमिराज मेरा छोटा भाई है, मेरा वह खेद मिट गया तथा मुझे अत्यन्त आनन्द हुआ है। ऐसी दशा में, अब मैं नमिराज से युद्ध क्यों करूँगा! हाथी तो क्या, यदि वह मेरे प्राण लेने को भी उद्यत हो जावे तब भी, मैं उसके

विरुद्ध शस्त्र नहीं उठा सकता। आपने, जन्म देकर और पाल-पोष कर तो मुझे अपना ऋणी बनाया ही था, लेकिन मुझे भाई-वाला बनाकर, आपने मेरा बहुत उपकार किया है। इस उपकार के लिए, मैं आपका महान् ऋणी हूँ। अब मैं नमिराज के पास जाता हूँ। सानुज लौट कर, आपका दर्शन एवं आपको वन्दन करूँगा।

# भ्रातृ मिलन

सांसारिक लोगों के लिए, 'भाई' शब्द बहुत ही प्रिय होता है और जिसका वाचक शब्द प्रिय है, उसका वाच्य व्यक्ति या पदार्थ प्रिय हो, यह स्वाभाविक है। इसके अनुसार भाई भी बहुत प्रिय होता है। संसार में जितने भी बड़े स्नेह हैं, भ्रातृस्नेह भी उनमे से एक है। बड़े-बड़े लोगो का कहना है, कि संसार में दूसरे स्नेही सम्बन्धियों का मिलना उतना कठिन नहीं है, जितना कठिन भाई का मिलना है। तुलसीदासजी ने, रामायण में राम के मुख से कहलाया है—

सुत वित नारि भवन परिवारा,<br>
होहिं जाहिं जग बारहिंबारा।

अस विचारि जिय जागहु ताता,
मिलइ न जगत सहोदर भ्राता ॥

अर्थात्—( मूर्छित लक्ष्मण से रामचन्द्रजी कहते है ) संसार में, पुत्र, धन, स्त्री और घर परिवार तो बार-बार मिलते तथा जाते है, लेकिन सहोदर भाई का मिलना कठिन है, यह जानकर तुम जागो ।

इस तरह, रामचन्द्रजी ने भी भाई का मिलना कठिन बताया है। वैसे तो, 'भाई' शब्द और भाई का सम्बन्ध प्रिय होने से, व्यवहार में भी एक दूसरे को भाई कहते हैं, लेकिन इस शब्द के साथ लगा हुआ स्नेह-सम्बन्ध बहुत कम जगह देखने में आवेगा और जहाँ भ्रातृ-सम्बन्ध का पूरी तरह पालन किया जाता है, इस मर्त्यलोक में भी, वहाँ स्वर्गीय सुख देखने में आवेगा। भाई का सम्बन्ध किस तरह निभाया जाता है, या किस तरह निभाना उचित है, उसके लिए राम, लक्ष्मण और भरत का भ्रातृस्नेह आदर्श माना जाता है। राम ने, अपने भाई भरत के लिए, अपने अधिकार का राज्य ही त्याग दिया था। लक्ष्मण, अपने भाई राम के स्नेहाधीन हो, राजसी सुख त्याग राम के साथ वन गये थे और भरत ने, यह जान कर बहुत दुःख किया था, कि राम मेरे ही लिये वन गये हैं तथा उनने, राम को लौटाने का बहुत प्रयत्न किया था और वह प्रयत्न असफल होने पर, उनने राम की ओर से ही राज-काज चलाया था एवं राम के लौटने

पर, राजपाट उन्हें सौंप दिया था। मतलब यह, कि भ्रातृ-सम्बन्ध बहुत स्नेहपूर्ण होता है और उसे निभाने के लिए, अधिक से अधिक त्याग एवं औदार्य की आवश्यकता है।

जब भाई का ऐसा सम्बन्ध है, तब भाई का मिलना कैसा सुखद होगा! और वह भी ऐसे भाई का मिलना, जिसे पहले देखा नहीं है तथा जो भ्रातृ-सम्बन्ध ज्ञात न होने के कारण, प्राणघातक शत्रु बना हुआ था। राणा प्रताप का भाई शक्तसिंह राणा प्रताप का शत्रु बनकर, अकबर की सेना के साथ राणा प्रताप से युद्ध करने के लिए आया था। लेकिन जब शक्तसिंह ने, प्रताप को आहत एवं प्रताप के प्राणों को संकट में देखा, तब वह शत्रुता त्याग, प्रताप की रक्षा को दौड़ पड़ा तथा प्रताप का पीछा करनेवाले शत्रुओं को मारकर, प्रताप से मिला। उस समय, दोनों भाइयों को कैसा हर्ष हुआ होगा! उस हर्ष से भी अधिक हर्ष, चन्द्रयश और नमिराज को उस समय हुआ होगा, जब वे आपस में मिले होंगे। राणा प्रताप और शक्तसिंह को, मिलने पर जो आनन्द हुआ था, उससे अधिक आनन्द चन्द्रयश और नमिराज को होना स्वाभाविक भी है। क्योंकि, चन्द्रयश तथा नमिराज का एक दूसरे को देखना तो दूर रहा, वे दोनों यह भी नहीं जानते थे, कि हमारे कोई भाई है। वे, स्वयं को भ्रातृहीन मानते थे। इसके विरुद्ध राणा प्रताप और शक्तसिंह, दोनों अपने

लिए यह जानते थे, कि हम भाई हैं। चन्द्रयश एवं नमिराज को अपना भ्रातृ-सम्बन्ध, उनकी माता सती सुव्रता द्वारा ज्ञात हुआ था। यह सम्बन्ध ज्ञात होने पर, दोनों भाई किस तरह मिले और भ्रातृ-सम्बन्ध को विशालता देने के लिए कैसा त्याग किया गया, आदि बातें इस प्रकरण से ज्ञात होंगी।

सती सुव्रता का कथन सुनकर, चन्द्रयश, सती के लिए ठहरने आदि की व्यवस्था कराकर, नमिराज के पास जाने को चला। उस समय, उसके हृदय में अत्यन्त हर्ष था। सुदर्शनपुर की प्रजा भी, युद्ध मिटने और नमिराज तथा चन्द्रयश में भ्रातृ-सम्बन्ध है यह जानने के कारण, बहुत आनन्दित थी। चन्द्रयश के साथ, राजपरिवार एवं नगर के अनेक प्रतिष्ठित लोग भी, नमिराज का स्वागत करने की सामग्री लेकर चले।

उधर, सती के पास से लौट कर नमिराज ने सेना को, युद्ध स्थगित रखने की आज्ञा दी। वह, इस बात की प्रतीक्षा करने लगा, कि देखें, सुदर्शनपुर का द्वार खुलता है या नहीं और चन्द्रयश आता है या नहीं। सहसा उसने देखा, कि सुदर्शनपुर का द्वार खुल रहा है तथा उसमें से, बहुत आदमी बाहर निकल रहे हैं। यह देखने के कुछ ही देर पश्चात्, उसको यह समाचार मिला, कि चन्द्रयश आपसे मिलने के लिए आ रहा है। यह देख-सुनकर, नमिराज, बहुत ही प्रसन्न हुआ और अपने सामन्तों

सहित, चन्द्रयश की अगवानी के लिए चला। साथ ही, उसने विश्वासघात न हो, यह सोचकर—अपनी सेना को, सावधान रहने की आज्ञा दी।

इधर से, चन्द्रयश जा रहा था और उधर से, नमिराज आ रहा था। दोनों का, सुदर्शनपुर तथा नमिराज के शिविर के मध्य, समागम हुआ। दोनों जब समीप हुए, तब नमिराज, चन्द्रयश के पैरों पड़ा। चन्द्रयश ने भी, नमिराज को तत्क्षण अपनी छाती से लगा लिया। उस समय, दोनों ही के हृदय में अपार हर्ष था और दोनों ही की आँखों से, हर्षाश्रु गिर रहे थे। दोनो भाइयों का हर्ष मिलन देख कर, सुदर्शनपुर की प्रजा तथा नमिराज की सेना आनन्दित होती हुई जयजयकार करने लगी।

हर्षावेग कम होने पर, नमिराज, युद्ध एवं अपने बड़े भाई चन्द्रयश के वास्ते कहे गये कटु शब्दों के लिए, स्वयं को अपराधी मान कर, चन्द्रयश से अपराध क्षमा करने की प्रार्थना करने लगा। दूसरी ओर चन्द्रयश, स्वयं को अपराधी बताकर कहने लगा, कि तुम्हारा कोई अपराध नहीं है। तुमने अपनी ओर से तो, मेरे पास यही प्रस्ताव भेजा था कि हाथी देकर प्रेमसम्बन्ध जोड़ लिया जावे, परन्तु उस प्रस्ताव को, मैंने ही ठुकराया और तुम्हारा हाथी तुम्हें लौटाने के बदले, तुम्हारे लिए कठोर एवं अपमानपूर्ण शब्द कहे। मेरे इस तरह के व्यवहार से, यदि तुम्हारा रक्त गर्म हो

जावे और तुम मुझ पर चढ़ाई कर आओ, तो यह बात, एक क्षत्रिय के लिए अस्वाभाविक नहीं है। इस प्रकार, अपराध तुम्हारा नहीं, किन्तु मेरा है। तुम्हारे लिए क्षमा माँगने का कोई कारण नहीं है, क्षमा तो मैं माँगता हूँ।

दोनो भाई, इस तरह अपना-अपना अपराध मानकर, एक दूसरे से क्षमा माँगने लगे। जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपना अपराध मानता है, वहाँ किसी प्रकार का कलह नहीं रहता, किन्तु प्रेम और आनन्द ही रहता है। कलह तो वहीं है, जहाँ दूसरे को अपराधी बताया जाता है तथा स्वयं को निरापराधी माना जाता है। इसके लिए, राजा भोज के समय की एक घटना भी प्रसिद्ध है, जो इस प्रकार है।

राजा भोज के नगर में, एक गरीब ब्राह्मण रहता था। उसके घर में, वह, उसकी माता और उसकी पत्नी, ऐसे सब तीन व्यक्ति थे। वह ब्राह्मण, भीख माँगने को बुरा मानता था, परन्तु आजीविका का कोई दूसरा साधन न था, इसलिए यदि विना माँगे ही कोई कुछ दे देता था, तो वह ले लेता था और उससे अपना काम चलाता था।

एक दिन, वह ब्राह्मण, सब जगह बहुत घूमा, परन्तु उसको किसी ने कुछ नहीं दिया। दिन भर भटक कर, सन्ध्या के समय वह अपने घर आया। वह, भूखा भी बहुत था तथा थक भी बहुत गया था। घर आकर, उसने अपनी पत्नी से कहा, कि आज मुझे कहीं से कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ है। भटकने के

कारण, मैं बहुत थक भी गया हूँ और मुझे, भूख भी बहुत लगी है। इसलिए, कुछ खाने को हो तो मुझे दो। ब्राह्मणी भी, दिन भर से भूखी थी। जब उसने पति से यह सुना, कि आज कुछ नहीं मिला है, तब उसे निराशा भी हुई और क्रोध भी हुआ। उसने, पति के कथन के उत्तर में कहा, कि मेरे पास क्या है, जो मैं तुम्हे दूँ! यदि कुछ लाये होते तथा फिर मुझ से देने का कहते, तब तो ठीक भी था, लेकिन लाने को तो कुछ नहीं और मुझ से कहते हो, कि खाने को दो! मैं, क्या किसी के यहाँ चोरी करने जाऊँ! ब्राह्मण ने कहा, कि मैं नित्य जो कुछ लाता हूँ, वह तुम्हे सौंप देता हूँ। गृहिणी का कर्त्तव्य है, कि वह, घर में आई हुई वस्तु में से कुछ आगे के लिए बचा रखे, जिसमें समय असमय पर भूखा न रहना पड़े। तुमको इस कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए था, जो नहीं किया और उल्टा कड़ा जबाब देती हो। ब्राह्मणी ने कहा, कि आज तक कभी इतना अन्न घर मे लाये भी थे, कि एक भी बार पूरी तरह पेट भर जाता? यदि नहीं, तो मैं बचा कर कहाँ से रखती। तुम्हारी तरह के लोग जो अपनी पत्नी को पेट भर अन्न भी नहीं दे सकते विवाह करके, पत्नी का जीवन कष्ट में क्यों डालते हैं!

ब्राह्मण और ब्राह्मणी मे, इसी तरह की बातें होते-होते, झगडा हो गया। पहले तो बातों तक ही झगड़ा रहा, परन्तु फिर, ब्राह्मण

क्रुद्ध होकर ब्राह्मणी को पीटने लगा। ब्राह्मणी, रोने चिल्लाने लगी तथा कहने लगी, कि मेरे को खाने के लिए देना तो दूर रहा, उल्टे मुझ से खाने को मॉंगते हैं और इसके लिए पीटते हैं, आदि। ब्राह्मणी का रोना सुनकर एवं ब्राह्मण द्वारा उसे पीटी जाती देख कर, पुलिस ने, ब्राह्मणी को ब्राह्मण से बचाया तथा पत्नी को पीटने के अपराध में, ब्राह्मण को पकड़ लिया। पुलिस द्वारा पकडा जाने के पश्चात्, ब्राह्मण अपने मन में पश्चात्ताप करने लगा। वह अपने मन में कहने लगा, कि मैंने पत्नी को पीट कर बहुत बुरा किया। मेरा यह कर्त्तव्य है, कि मैं पत्नी का पालन पोषण करूँ। मैंने अपने इस कर्त्तव्य का भी पालन नहीं किया और पत्नी को पीटा, यह मेरा अपराध है। क्षुधा के दुःख तथा क्रोध के आवेश में मैंने, यह अनुचित कार्य कर तो डाला, लेकिन अब मुझे बात सम्हाल लेनी चाहिए। बात, बढ़ने न देनी चाहिए।

ब्राह्मण को, न्यायालय मे उपस्थित किया गया। ब्राह्मण ने, न्यायाधिकारी से कहा, कि मेरे मामले का निर्णय, महाराजा भोज ही कर सकते हैं। वे, मेरे अपराध के लिए मुझे जो दण्ड देंगे, उसे मैं सहर्ष स्वीकार करूँगा, परन्तु दूसरे से मैं इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकता। न्यायाधिकारी तथा पुलिस अधिकारी ने, ब्राह्मण से बहुत कहा सुना, लेकिन ब्राह्मण अपनी ही बात पर दृढ़ रहा। अन्त में, उसे राजा भोज के सन्मुख उपस्थित किया

गया। पुलिस-अधिकारी ने, राजा को, ब्राह्मण का अपराध सुनाया और कहा, कि इस ब्राह्मण को, इसकी इच्छानुसार आपके सामने उपस्थित किया गया है, अतः आप इसे उचित दंड दीजिये, जिसमें भविष्य में कोई पुरुष अपनी पत्नी के साथ मार-पीट न करे। अधिकारी द्वारा ब्राह्मण पर लगाया गया अभियोग सुन कर, राजा भोज ने, ब्राह्मण से कहा, कि कहो ब्राह्मण, तुमने अपनी पत्नी को पीटा या नहीं? और पीटा, तो क्यो? राजा के प्रश्न के उत्तर में, ब्राह्मण ने कहा, कि महाराज, मैं ब्राह्मण नहीं, किन्तु चाण्डाल हूँ। मेरे में से, ब्राह्मणोचित अहिंसा, क्षमा आदि सद्गुण निकल गये और इनके स्थान पर, चाण्डालोचित क्रोध, निर्दयता आदि दुर्गुण आगये, इसी से तो मुझे आपके सन्मुख उपस्थित ही किया गया है। इसलिए आप, मुझे ब्राह्मण नहीं किन्तु चाण्डाल कहिये। ब्राह्मण के कथन के उत्तर में, राजा ने कहा, कि तुम्हारा कथन ठीक है, लेकिन मेरे को तो चाण्डाल का भी न्याय करना होता है। इस लिए यह बताओ, कि तुमने अपनी पत्नी को क्यों मारा। ब्राह्मण कहने लगा, कि महाराज, सुनिये—

अम्बा तुष्यति न मया न स्नुषया,
सामपि न अम्बया न मया।
अहमपि न तया न तया,
वद राजन् कस्य दोषोयम्॥

अर्थात--मेरे घर मे तीन व्यक्ति है। मै, मेरी माता और मेरी पत्नी। मेरी माता, मुझे कभी सन्तोष नहीं देती। वह, मेरे लिए मीठे शब्द भी नही बोलती, किन्तु जब भी बोलती है कटु शब्द ही। वह, मेरे ही प्रति नही, किन्तु मेरी पत्नी के प्रति भी ऐसा ही व्यवहार करती है। इसी प्रकार, मेरी पत्नी भी, मेरी माता की सेवा सुश्रुषा करना या उसकी आज्ञा मानना तो दूर रहा, मेरी माता को कटु शब्द ही कहती है। उससे, मधुर शब्द तक नही कहती। मेरी माँ या मेरी पत्नी ही ऐसी हों, यह बात नही है, किन्तु मैं भी, माँ और पत्नी दोनों ही के प्रति ऐसा ही व्यवहार रखता हूँ। किसी को भी सन्तुष्ट नहीं रखता। और मेरी पत्नी का मेरे प्रति कैसा व्यवहार रहता है, इसके लिए तो मैं, आपके सन्मुख अभियुक्त बन कर खड़ा हुआ ही हूँ। अब राजा, आप ही बताइये, कि इसमें किसका दोष है और आप जिसका दोष मानते हों, उसे दण्ड दीजिये।

राजा भोज ने, ब्राह्मण के कथन पर विचार किया और भंडारी को बुलाकर उसे आज्ञा दी, कि इस ब्राह्मण को एक सहस्र स्वर्ण-मुद्रा दे दो। भंडारी ने, सब बातें जानकर राजा से कहा, कि पत्नी को पीटने के कारण इस ब्राह्मण को एक हजार स्वर्ण मुद्रा दी जाने पर, बेचारी स्त्रियों की तो दुर्गति ही हो जावेगी। आपसे हजार मुहरें प्राप्त करने के लिए, बहुत से पुरुष, अपनी अपनी पत्नी को पीट कर आपके पास हजार मुहरें लेने को आ पहुँचेंगे। राजा ने, भण्डारी का कथन सुनकर उससे कहा, कि

तुम केवल ऊपरी बातों को ही देख रहे हो, वास्तविक बात नहीं देखते। दण्ड उसी को देना चाहिए, जिसका अपराध हो। जिस अपराध के कारण इसको मेरे सामने उपस्थित किया गया है, उस अपराध का कारण है दरिद्रता। उस दरिद्रता को दण्ड न देकर इसे दण्ड देना, अन्याय है और ऐसा करने से, अपराधो की परम्परा भी बढ़ेगी। क्योंकि, अपराधों का कारण तो बना ही रहेगा, जिससे यह दंड भोग कर फिर अपराध करेगा। इस लिए उस दरिद्रता को ही दंड क्यों न दिया जावे, जिसके कारण इसके यहाँ कलह रहता है। राजा का काम है, कि प्रजा की दरिद्रता मिटावे, जिससे प्रजा अपराध न करे। यदि राजा होकर भी, मैं, राज्य का कोष प्रजा की द्ररिद्रता मिटाने के लिए खुला न रखूँ, तो फिर मैं राजा किस काम का! मैं, इस ब्राह्मण को हजार मुहरें इसलिए नहीं दे रहा हूँ, कि इसने पत्नी को पीटा है, किन्तु इसकी द्ररिद्रता मिटाने के लिए दे रहा हूँ। यदि इसका उदाहरण लेकर, कोई सम्पन्न व्यक्ति अपनी पत्नी को पीटेगा, तो वह मुझ से दण्ड पावेगा, लेकिन यदि कोई व्यक्ति दरिद्रता के कारण ऐसा करेगा, तो उसकी दरिद्रता मिटाना, मेरा कर्त्तव्य ही है।

राजा का कथन सुनकर, भंडारी तथा अन्य सब लोग प्रसन्न हुए। भण्डारी ने, ब्राह्मण को एक सहस्र स्वर्ण-मुद्रा दे दीं। राजा ने ब्राह्मण से कहा, कि जिसका अपराध था, उसे मैंने

दण्ड दिया है। अब, सावधानी रखना और जिसने दण्ड पाया है, उसको फिर अपने यहाँ मत आने देना। राजा का कथन शिरोधार्य्य करके, ब्राह्मण, राजा को आशीर्वाद देता हुआ अपने घर को चला। उसके घर मे, उसकी पत्नी तथा उसकी माता में यानी सासू-बहू मे झगड़ा हो रहा था। सासू, बहू को दोष देकर कहती थी, कि मेरे भूखे लड़के से यदि तुमने क्रोध-भरी बातें न कीं होतीं, किन्तु मीठी बातें कहीं होतीं, तो झगडा क्यों होता और उसे शान्तिरक्षक ( पुलिस ) क्यों पकड़ ले जाते। अब उसको, न मालूम क्या दण्ड भोगना पड़ेगा। दूसरी ओर बहू, अपनी सासू को दोष देती हुई कह रही थी, कि तुमने ऐसा मतकमाऊ पुत्र क्यों जन्मा! जब तुम्हारा पुत्र मेरा पेट भी नहीं भर सकता, तब उसके साथ मेरा विवाह क्यों किया! तुमने ऐसा बेटा जन्मा जो मुझे खाने को देने के बदले और पीटता है, इसलिए सब अपराध तुम्हारा ही है।

सासू बहू, इस तरह एक दूसरी को दोष देकर झगड़ा कर रहीं थीं, इतने ही में, उनने, गठरी लिये हुए ब्राह्मण को आते देखा। ब्राह्मण के पास की गठरी देखकर, दोनों का झगड़ा बन्द हो गया और सासू यह कहती हुई उठने लगी, कि—मेरा भूखा बेटा भार लेकर आ रहा है, मैं जाकर उसका भार ले लूँ! खड़ी होती हुई सासू से बहू ने कहा, कि आप ठहरिये, मैं

जाती हूँ। आप वृद्धा हैं, इसलिए आपसे भार न उठेगा। सासू ने कहा, नहीं बहू, तुम कष्ट न करो, मुझे ही जाने दो। मार के कारण, तुम्हारा शरीर व्यथित हो रहा होगा। बहू, ने उत्तर दिया—नहीं, पति के हाथ की ऐसी मार दुःख नहीं देती है, किन्तु आनन्द देती है। कहावत ही है, कि 'पति के हाथ की मार और घी की नाल बराबर होती है।'

इस तरह कहती हुई बहू, अपने पति के सन्मुख गई तथा पति से गठरी लेने लगी। पति ने उससे कहा भी कि रहने दो, कष्ट न करो, मैंने तुम्हे बहुत पीड़ा दी है आदि। परन्तु पत्नी नहीं मानी; किन्तु उसने पति से यह कह कर गठरी ले ही ली, कि आप भी भूखे हैं, आपको भी कष्ट हुआ है, आदि।

बहू, गठरी लेकर घर मे आई। गठरी की मुहरे देखकर, सासू बहू बहुत ही प्रसन्न हुई। ब्राह्मण की माता, आँखों मे आँसू गिराती हुई कहने लगी, कि—'मुझ पापिन ने अपने पुत्र के प्रति कभी अच्छा व्यवहार नहीं किया, किन्तु सदा ही दुर्वाक्य कहे। लेकिन पुत्र कैसा सुपुत्र है, कि जो मेरा दुर्व्यवहार सहकर भी मेरे साथ ही रहता है।' वह, अपने पुत्र से कहने लगी, कि वत्स, मैंने बहुत अपराध किया है। मेरा अपराध क्षमा करो। माता के इस कथन के उत्तर मे, वह ब्राह्मण हाथ जोड़कर कहने लगा, कि जननी, आपने कोई अपराध नहीं किया है, अपराध

मैंने किया है। आपकी तो, मुझ पर सदा ही दया रही है। मैं ऐसा अभागा हूँ, कि कभी आपको पेट भर भोजन भी नहीं दे सका और न कभी आपका सम्मान ही कर सका; किन्तु आपको सदा ही असन्तुष्ट रखा। फिर भी आपकी कैसी कृपा है, कि आपने मुझ जैसे कुपुत्र को भी घर मे ही रहने दिया, घर से नहीं निकाला।

माता और पुत्र में इस तरह की बातें हो रही थीं, इतने ही में बहू कहने लगी, कि आप दोनों का कोई अपराध नहीं है, अपराध तो मेरा है। मैं ही अभागिन हूँ। आज, मार खाकर दुर्भाग्य भाग गया है, इसीसे सब आनन्द हुआ है। पत्नी के इस कथन के उत्तर में, ब्राह्मण ने कहा, कि प्रिये! तुम दुर्भागिन नहीं हो। तुम तो सद्भागिन ही हो, परन्तु मुझ दुर्भागी के साथ होने के कारण कष्ट पाती रही हो। जो हुआ सो हुआ, अब अपने को, भविष्य मे कलह न करने के लिए सावधान रहना चाहिए और उस राजा भोज की जय मनानी चाहिए, जिसने कलह का कारण दरिद्रता को पहचान कर, उसे दण्ड दिया है।

मतलब यह, कि झगड़ा तभी तक रहता है, जब तक कि मनुष्य दूसरे को अपराधी मानता है, दूसरे का दोष देखता है और स्वयं को निर्दोष तथा निरपराधी मानता और समझता है। जो लोग, दूसरे मे दोष न देखकर प्रत्येक बात के लिए स्वयं को ही अपराधी मानते

हैं, उनसे, किसी के साथ कभी झगड़ा होता ही नहीं है, किन्तु सब के साथ प्रेम रहता है। चन्द्रयश और नमिराज में, इसी कारण कलह था, कि वे एक दूसरे को अपराधी मानते थे। जब दोनों अपने को ही अपराधी मानने लगें, तब कलह कैसे रह सकता था।

नमिराज और चन्द्रयश, अपना अपना अपराध मानकर, एक दूसरे से क्षमा माँगते थे। बात का अन्त आता न देखकर, किसी बुद्धिमान ने दोनों से कहा, कि इस विषयक निर्णय का भार, सती पर रखिये। वे बता देंगी, कि अपराध किसका है। इसलिए, सती की सेवा में चलना ही अच्छा है। बुद्धिमान का कथन उचित मान कर, दोनों भाई, सुव्रताजी सती की सेवा में उपस्थित होने के लिए चले। साथ के लोग, 'महाराजा चन्द्रयश' 'महाराजा नमिराज' तथा दोनों की शत्रुता मिटाकर, दोनों मे भ्रातृ-प्रेम करानेवाली 'महासती सुव्रताजी' की जय बोलते जाते थे। इस प्रकार हर्षोत्साह-पूर्वक, चन्द्रयश और नमिराज, सब लोगों के साथ, महासती सुव्रताजी की सेवा में उपस्थित हुए। उस [समय, नगर मे अपूर्व आनन्द छाया हुआ था। सब लोग यही कह रहे थे, कि आज कैसा घमासान युद्ध होने वाला था और नगर निवासियों पर कैसी महान् आपत्ति आनेवाली थी। परन्तु महासतीजी की कृपा से वह आपत्ति टल गई और यह आनन्द हुआ है।

चन्द्रयश, नमिराज एवं उसके साथ के सब लोग, सती को वन्दन करके, सती के सन्मुख बैठ गये। चन्द्रयश, हाथ जोड़कर सती सुव्रताजी से कहने लगा, कि इस समय आपने यहाँ पधार कर, एक प्रकार से सब लोगो को जीवन-दान दिया है। मैं और भाई नमिराज, परस्पर शत्रु बनकर, एक दूसरे के प्राण लेने को उद्यत थे। यदि आज आप न पधारी होतीं, तो हम दोनो, अपनी भावनानुसार, एक दूसरे के प्राण लेने का प्रयत्न करते और इसके लिए, भयंकर युद्ध होता तथा अनेकों मनुष्य हताहत होते। लेकिन आपकी दया से, वह विषमय वातावरण अमृतमय बन गया है। मैंने, अपनी मूर्खता से ही धन-जन नाशक युद्ध छेड़ दिया था। मुझे, अपनी इस भूल के लिए, बहुत पश्चात्ताप है और यह विचार होता है, कि यदि आप न पधारीं होतीं, तो या तो भाई नमिराज मुझे मार डालते, या मैं इन्हे मार डालता तथा इस प्रकार, दूसरे रूप में उसी घटना की पुनरावृत्ति होती, जो हमारे पिता और पितृव्य के बीच घटी थी।

इस प्रकार कहते हुए, चन्द्रयश की आँखों से आँसू गिरने लगे। नमिराज की आँखों से भी, आँसू बह चले। सती सुव्रताजी दोनों को धैर्य देने के लिए कहने लगीं, कि—तुम लोगों को अब किसी प्रकार का दुःख, या पश्चात्ताप न करना चाहिए। तुम दोनों एक दूसरे के शत्रु बने इसमे, तुम्हारा नहीं, किन्तु अज्ञान का अपराध

था। अज्ञान के कारण ही तुम दोनों भाइयो ने युद्ध प्रारम्भ किया था, जिसमे बहुत से मनुष्यों का घमासान होना स्वाभाविक था। अज्ञान के कारण, प्रारम्भ मे तो युद्ध प्रिय लगता है, परन्तु युद्ध का अन्त सदा ही बुरा हुआ करता। युद्ध में अनेकों मनुष्य और पशु मारे जाते हैं, रम्य प्रदेश ऊजड़ हो जाता है, बहुतसी स्त्रियाँ विधवा तथा अनेक बालक अनाथ हो जाते हैं। इतना होने पर भी, दोनों पक्ष में से किसकी विजय होगी, यह तो अनिश्चित रहता ही है। परन्तु जब अज्ञान और अहंकार का प्रकोप होता है, तब इन बातों का विचार तक नहीं होता, किन्तु दूसरी ही बातो का विचार होता है। यह बात, तुम दोनों अपने पर से ही देखो। यदि नमिराज का एक हाथी चला गया था, या चन्द्रयश ने ले लिया था, तो इससे न तो नमिराज गरीब हो सकता था, न चन्द्रयश धनवान हो सकता था। इसी प्रकार, उस एक हाथी के लिए युद्ध करने पर, युद्ध से होनेवाली हानि, हाथी के मूल्य से कही बहुत अधिक होती। परन्तु अज्ञान और अहंकार के कारण, यह बात, दोनो में से किसी के भी समझ में नहीं आई। दोनो ही इस बात से अज्ञान थे, कि हम दोनों में क्या सम्बन्ध है तथा दोनो ही को यह अहंकार था, कि मेरा हाथी वह कैसे रख सकता है, अथवा जिसे मैंने अपने बल से अधीन किया है, वह हाथी मैं उसको कैसे दे सकता हूँ, जिसकी अधीनता से हाथी निकल आया है, या जो एक

हाथी को भी अधीनता में नहीं रख सका है। इस तरह का अहंकार, अज्ञान के ही कारण होता है। इस प्रकार, तुम दोनों ने जो कुछ किया, वह अज्ञान के ही कारण। यदि तुम दोनों में अज्ञान न होता, तो क्या छोटे भाई की वस्तु बड़ा भाई नहीं ले लेता है! अथवा बड़े भाई की गोद मे बैठा हुआ छोटा भाई, धृष्टता नहीं करता है। क्या ऐसे छोटे कारण को लेकर, बड़ा भाई छोटे भाई को, अथवा छोटा भाई बड़े भाई को मार डालता है। लेकिन अज्ञान के कारण तुम लोगो को यह ज्ञात ही न था, कि हम दोनों आपस में भाई-भाई हैं। इसलिए ऐसा होना, स्वाभाविक है। अज्ञान होने पर, ऐसा होता ही है। अब, जब कि अज्ञान मिटा, तब युद्ध भी मिट गया और तुम दोनों, शत्रु मिट कर भाई बन गये। इस अज्ञान को मैंने नहीं मिटाया है, किन्तु ज्ञान ने मिटाया है। इसलिए तुम दोनों भाइयों का मिलना तथा युद्ध का मिटना, ज्ञान को आभारी है। अब तक उस हाथी को क्लेश का कारण माना जाता रहा है, लेकिन अब विचार करो, कि हाथी का यहाँ आना क्लेश का कारण रहा, या हर्ष का। हाथी, क्लेश का कारण तभी तक था, जब तक कि अज्ञान था। अज्ञान मिटते ही, वही हाथी, क्लेश कराने वाला होने के बदले, प्रेम कराने वाला हो गया। इस प्रकार हाथी, या कोई दूसरा, क्लेश अथवा प्रेम कराने वाला नहीं है, किन्तु अज्ञान ही क्लेश कराने वाला है

और ज्ञान ही, क्लेश मिटाकर प्रेम कराने वाला है। यदि तुम दोनों में अज्ञान न होता, तो युद्ध भी न होता और ज्ञान न आता, तो युद्ध भी न मिटता। जिस ज्ञान के प्रभाव से युद्ध मिटा है एवं तुम दोनों भाई-भाई हुए हो, उस ज्ञान को अधिक बढ़ाने पर तुम्हे ज्ञात होगा, कि संसार के सभी जीव हमारे भाई हैं। जब तुम में, इस तरह का ज्ञान होगा और तुम संसार के सब जीवों को अपना भाई मानोगे, तब तुम किसी भी जीव को दुःख न दोगे, किन्तु सब के साथ प्रेम का व्यवहार करोगे तथा इस तरह, सहज ही आत्मा का कल्याण कर सकोगे। इसलिए, अपने में से अज्ञान को सर्वथा दूर करो। इसके लिए, ज्ञान-वृद्धि का प्रयत्न करो। ज्ञान की जैसे-जैसे वृद्धि होती जावेगी, अज्ञान भी वैसे ही वैसे मिटता जावेगा। जब पूर्ण ज्ञान हो जावेगा, अज्ञान सर्वथा नि.शेष हो जावेगा, तब आत्मा जीवनमुक्त हो जावेगा। भव्य लोग, आत्मा मे रहे हुए अज्ञान को निःशेष करके, ज्ञानघन बनने के लिए ही संयम लेते हैं। वे सोचते हैं, कि जब तक मेरे में किंचित भी अज्ञान है, तब तक संसार के किसी न किसी जीव को, मेरी ओर से यत्किंचित् पीड़ा होगी ही तथा जब तक मेरी ओर से किसी भी जीव को थोडी भी पीड़ा होगी, तब तक मेरा संसार में जन्मना, मरना भी नहीं छूट सकता। इस विचार से ही, वे लोग, सांसारिक सुखों को त्याग कर संयम मे प्रव्रजित

होते हैं तथा संयम का पालन करते हैं। तुम लोग, यदि एक दम से ऐसा नहीं कर सकते, तो धीरे-धीरे ज्ञान बढ़ाने एवं अज्ञान से निकलने का प्रयत्न करो, जिसमें बढ़ते-बढ़ते, कभी सर्वथा अज्ञान रहित हो सको और किसी भी जीव से कलह न करना पड़े।

# प्रत्येकबुद्ध नमिराज

भव्य प्राणी, किसी भी बात, कार्य या पदार्थ मे ज्ञान लेकर सांसारिक पदार्थों के स्वरूप को समझ जाते हैं। यह जान लेते हैं, कि आत्मा का इन सांसारिक पदार्थों से क्या सम्बन्ध है और यह जान लेने के कारण, वे समस्त सांसारिक सुख-वैभव को तृणवत् त्यागकर आत्मा को भौतिक पदार्थों से सर्वथा सम्बन्ध-रहित करने के प्रयत्न में लग जाते हैं। वैसे तो प्रत्येक कार्य कारण से ही हुआ करता है, परन्तु निमित्त भी कार्य का एक कारण है। इसके अनुसार संयम लेने और भौतिक पदार्थों से सम्बन्ध रहित होने का प्रधान कारण तो ज्ञानावरणीय

तथा चारित्रावरणीय कर्म का क्षयोपशम ही है, लेकिन साधारणतया कोई निमित्त भी संयम लेने का कारण होता है। ऐसा निमित्त, किसी के लिए बड़ा होता है और किसी के लिए छोटा। जिसके ज्ञानावरणीय तथा चारित्रावरणीय कर्म का अधिक क्षयोपशम हुआ है, वह तो किसी छोटे से निमित्त को पाकर ही संयम में प्रव्रजित हो जाता है और जिसके ज्ञानावरणीय एवं चारित्रावरणीय कर्म का क्षयोपशम कम हुआ है, वह किसी बड़े निमित्त के मिलने पर संयम लेता है। इसके विरुद्ध, जिसके ज्ञानावरणीय तथा चारित्रावरणीय का उदय है क्षयोपशम नहीं हुआ है उसके सामने कैसे भी बड़े निमित्त कारण आवें, उसको चाहे स्वयं तीर्थङ्कर भी समझावें वह संयम नहीं ले पाता। भगवान महावीर के उपदेश का अनार्य लोगों पर कोई प्रभाव क्यों नहीं पड़ा, जब कि आर्य लोगों में से सहस्रों, लाखों मनुष्यों पर भगवान के उपदेश का उचित प्रभाव पड़ा था! इसी से, कि अनार्यों के ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और मोह कर्म का उदय था और जिन पर भगवान के उपदेश का उचित प्रभाव हुआ था, उन आर्यों के ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय तथा चारित्रावरणीय कर्म का क्षयोपशम हुआ था। इस प्रकार कर्म के आवरण का जैसे-जैसे क्षयोपशम होता है, निमित्त कारण वैसे ही वैसे कार्य-साधक बनता जाता है।

अमुक निमित्त ही संयम लेने का कारण है, यह नहीं कहा

जा सकता। कोई निग्रन्थ प्रवचन का उपदेश सुनकर, कोई किसी व्यक्ति या पदार्थ को देखकर, कोई किसी घटना के कारण तथा कोई स्वयं ही तत्वों का विचार करके संयम लेता है। अनाथी मुनि ने, शरीर में वेदना होने और संयम की भावना करने पर शरीर की वेदना मिट जाने से संयम लिया था। समुद्रपाल ने, शूली पर चढ़ने के लिए जाते हुए चोर को देख कर संयम लिया था। मेघकुमार शालिभद्र आदि ने, उपदेश सुनकर संयम लिया था। सेठ धन्नाजी ने, अपनी पत्नी सुभद्रा की बात सुनकर संयम लिया था और इस कथा में आये हुए चन्द्रयश ने, सती सुव्रता द्वारा संयम का महत्व जान कर संयम लिया था। इस प्रकार संयम में प्रवर्जित होने के निमित्त कारण भिन्न-भिन्न होते हैं। नमिराज के लिए भी एक ऐसा निमित्त कारण हो गया था, जिससे उसने मिथिला और सुदर्शनपुर का राज्य त्याग कर संयम लिया तथा मोक्ष प्राप्त किया। नमिराज के संयम लेने का निमित्त कारण क्या था, यह बात इस प्रकरण से ज्ञात होगी।

सती सुव्रता का उपदेश सुन कर, चन्द्रयश नमिराज तथा अन्य उपस्थित लोग गद्-गद् हो गये। उस समय अन्य लोगों की भावना तो किसी सीमा तक ही रही, परन्तु चन्द्रयश की भावना बहुत उग्र हो गई। वह उठ कर कहने लगा, कि आज इन सतीजी की कृपा से जो आनन्द हुआ है तथा सतीजी ने जो उपदेश दिया है, उस

पर से मैं इसी निर्णय पर पहुँचा हूँ, कि यह सब आनन्द संयम को आभारी है। यदि इन माताजी ने संयम न लिया होता और तब ये हम दोनों भाइयों को शान्ति का उपदेश देतीं, तो हमारे हृदय पर यह जानते हुए भी, कि हम दोनों आपस में भाई-भाई हैं, सती के उपदेश का यथेष्ट प्रभाव होता या न होता। इसके सिवा यदि इनने संयम न लिया होता, तो उस दशा में इन्हे यह भी पता न लगता, कि हम दोनों भाइयो में युद्ध हो रहा है। न ये युद्ध का कारण ही जान पातीं। संयम लेने के कारण ही, इन्हे हमारे युद्ध तथा युद्ध का कारण ज्ञात हो सका और ये हमारा अज्ञान हटाकर युद्ध रोकने मे समर्थ हुईं। इस प्रकार, हम दोनों भाइयों का युद्ध भी संयम से मिटा है और मिलन भी संयम से हुआ है। माताजी ने भी, अभी संयम का बहुत महत्व बताया है, इससे मेरे हृदय मे संयम के प्रति आकर्षण हुआ है। इसलिए मैं, सुदर्शनपुर का राज्य भाई नमिराज को सौंप कर, संयम लेना चाहता हूँ। अब मैं अपने आत्मा का कल्याण करने में लगूँगा। जिस संसार मे अज्ञान भरा हुआ है तथा जिसमें इस युद्ध की तरह का अनर्थ होना बहुत सम्भव है, अब उस संसार-व्यवहार मे नहीं रहना चाहता।

चन्द्रयश का यह कथन सुन कर, नमिराज घबराया। वह उठ कर चन्द्रयश से कहने लगा, कि भाई, आप यह क्या कह रहे

हैं ! आज ही तो मुझे आपका दर्शन हुआ है और आज ही, आप मेरे को त्याग रहे हैं ! मैं इस कारण आनन्दित हुआ था, कि मुझे भ्रातृ सुख प्राप्त हुआ है, मैं भ्रातृ हीन नहीं रहा, लेकिन आप तो मुझ से यह आनन्द छीनने की बात कह रहे हैं। मैं आपका छोटा भाई हूँ, इस कारण मेरे पर आपको दया तथा कृपा रखनी चाहिए, लेकिन आप तो मुझ को छोड़ रहे हैं ! और वह भी, मेरे सिर पर अधिक बोझ देकर ! मेरे सिर पर मिथिला के राज्य का बोझ है ही, फिर आप मेरे पर अधिक बोझ लादने का विचार कैसे कर रहे है ! कदाचित आप, मेरे अपराध के कारण मुझे यह दण्ड दे रहे हों, तो इसके लिए, मैं आपसे दया की भिक्षा माँगता हूँ और प्रार्थना करता हूँ, कि आप, मेरे पर राज्य का अधिक बोझ डालने, या मुझे भ्रातृ-हीन बनाने का दण्ड मत दीजिये। मैं, स्वयं को अपराधी अवश्य मानता हूँ तथा आप से दण्ड की याचना भी करता हूँ, लेकिन आप मुझे इस रूप मे दण्ड न दें। आप, यदि मुझे प्राणान्त दण्ड देंगे, तो मैं उसे हर्षपूर्वक स्वीकार करूँगा, परन्तु जो दण्ड आप मुझे देना चाहते हैं, वह दण्ड मेरे लिए बहुत ही असह्य है। इसलिए आप संयम लेने का विचार मत कीजिये। यद्यपि संयम को मैं भी अच्छा मानता हूँ, फिर भी, इसी अवसर पर आपका संयम लेना मैं उचित नहीं मानता। आप जब मुझे इस योग्य बना दें, कि मैं दोनों जगह

का राज्य-भार सम्हाल सकूँ, दोनों जगह की प्रजा को सुख दे सकूँ एवं स्वयं में अभिमान अहंकार न रहने दूँ, उस समय तो आपका संयम लेना ठीक भी हो सकता है, लेकिन अभी आपका संयम लेना, प्रत्येक दृष्टि से असामयिक है। इस पर भी, यदि आप अपने लिए संयम लेना सामयिक मानते हों, तो मैं आप से यही निवेदन करता हूँ, कि आप मुझे मत त्यागिये, किन्तु संयम में भी साथ लेकर अपनी सेवा का सुयोग प्रदान कीजिये।

यह कहते हुए, नमिराज की आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। उपस्थित जनता पर भी दोनों भाइयों की बात-चीत का बहुत करुण प्रभाव पड़ा और सब लोगों की आँखों से आँसू निकल पड़े। उस समय, वहाँ का वातावरण बहुत ही करुण हो गया था। चन्द्रयश ने, आँसू बहाते हुए नमिराज को साहस बँधाकर उससे कहा, कि—भाई, तुम इतने अधीर न होओ। क्षत्रिय के लिए, किसी भी कारण से इस तरह अधीर हो उठना उचित नहीं है। मैं दण्ड देने के लिए ही राजपाट त्याग रहा हूँ, परन्तु तुम्हे दण्ड देने के लिए नहीं, किन्तु जो अपराधी है, उसको दण्ड देने के लिए। मेरी दृष्टि में, राजमुकुट अपराधी है, तुम अपराधी नहीं हो। इसलिए मैं अपराधी राजमुकुट को त्याग रहा हूँ और इस प्रकार उसे दण्ड दे रहा हूँ। तुम यह कह सकते हो, कि जो राजमुकुट अपराधी है, उसे मैं कैसे अपना सकता हूँ, तो इसके उत्तर में मैं

यही कहता हूँ, कि समय आने पर तुम भी राजमुकुट को त्याग देना, लेकिन तुम्हारे लिए अभी ऐसा करने का अवसर नहीं है। अभी तो तम्हारे लिए यही उचित है, कि तुम राजपाट का भार अपने ऊपर लेकर, मुझे संयम लेने और आत्म-कल्याण करने का अवसर दो। तुम छोटे हो। छोटे भाई का यह कर्त्तव्य है, कि वह बड़े भाई के सिर पर का बोझ स्वयं लेकर, बड़े भाई को आत्म-कल्याण के लिए भार-मुक्त कर दे। तुम, इस कर्त्तव्य का पालन करने के समय कायरता न दिखाओ। रही तुम्हारे संयम लेने की बात, सो इसके लिए मैं कह ही चुका हूँ, कि तुम्हारे लिए अभी ऐसा करने का अवसर नहीं है। तुमने, न तो मेरी तरह संसार व्यवहार का अनुभव ही किया है, न संसार के दूसरे कार्य ही किये हैं। जब तुम ऐसा कर चुको तथा उपयुक्त अवसर देखो, तब जिसे अधिकारी समझो उसे राजपाट सौंपकर संयम ले सकते हो। यदि तुम भी, अभी मेरे साथ ही संयम लोगे, तो प्रजा की रक्षा कौन करेगा! इसके सिवा, जिस प्रजा की मैं रक्षा करता हूँ, उस प्रजा की रक्षा का भार अपने पर लेना और मुझे संयम लेने का अवसर देना, यह मेरी सेवा करना ही है। मैं, अब तक इस चिन्ता में ही था, कि राजपाट का भार किसको सौपकर, आत्म-कल्याण करने के लिए संयम लूँगा! इन माताजी की कृपा से तुम मिल गये और मेरी चिन्ता मिट गई। अब ठीक समय पर,

तुम, राजपाट का भार अपने पर लेना अस्वीकार करके विघ्न न करो, किन्तु मैं तुम्हारा बड़ा भाई हूँ, इसलिए मेरी आज्ञा मानकर, अथवा मुझे प्रसन्न रखने के लिए, या मेरा कल्याण हो इस इच्छा से, सुदर्शनपुर का राज्य स्वीकार करके, मेरे लिए संयम लेने का मार्ग साफ कर दो।

चन्द्रयश के यह कहने पर, नमिराज अधिक कुछ न कह सका। वह, चुपचाप आँसू बहाता रहा। चन्द्रयश ने उसको धैर्य दिया और अधिकारियों को राज्याभिषेक की तय्यारी करने के लिए आज्ञा दी। चन्द्रयश का निश्चय सुनकर प्रजा बहुत घबराई। वह चन्द्रयश से प्रार्थना करने लगी कि आप हम लोगों को मत त्यागिये, संयम मत लीजिये, आदि। चन्द्रयश ने घबराई हुई और संयम न लेने की प्रार्थना करनेवाली प्रजा को एकत्रित करके उसे धैर्य देकर यह बताया कि प्रजा मे कैसी शक्ति है। प्रजा को उसकी शक्ति का भान कराकर चन्द्रयश ने उससे कहा कि यदि प्रजा अपनी शक्ति का उपयोग करे, तो कोई भी राजा प्रजा का किंचित् भी अहित नहीं कर सकता न प्रजा को दुःख ही दे सकता है। चाहे कोई राजा कैसा भी अन्यायी या क्रूर स्वभाववाला क्यों न हो। यह तो अच्छा है, कि भाई नमिराज ही तुम्हारे राजा हो रहे हैं, जिन्हे इस राज्य से तथा तुम लोगों मे पूरी तरह स्नेह है, लेकिन कदाचित सती के न आने पर भाई नमिराज, या

कोई दूसरा शत्रु मुझे पराजित करके यहाँ का राजा होता, और उस दशा में मैं तुम से अलग होता, तब तुम क्या करते। इसलिए तुम लोग अपनी शक्ति को समझ कर निर्भय होओ तथा मैंने तुम लोगों की जो सेवा की है, उसके बदले में मुझे आत्म-कल्याण करने का अवसर दो। मैंने अब तक तो तुम लोगों की सेवा की ही, अब भी मैं तुम्हारे सामने संयम का आदर्श रखने रूप तुम्हारी सेवा करने के लिए ही जा रहा हूँ। जब मैं तुम लोगों का हित चिन्तक हूँ, तब मुझे संसार व्यवहार मे ही न फँसे रहना चाहिए, किन्तु सांसारिक सुखो का त्याग भी करना चाहिए। राजा यदि संसार-व्यवहार में फँसा हुआ मरता है, तो उसकी प्रजा भी ऐसा ही करती है और राजा यदि सांसारिक सम्पदा त्याग कर संयम लेता है तो उसकी प्रजा भी त्याग-भावना सीखती है। क्योंकि प्रजा के लिए राजा का कार्य आदर्श होता है, तथा वह राजा द्वारा रखे गये आदर्श के अनुसार कार्य करने में आनन्द अनुभव करती है। मैं, तुम लोगों के सामने त्याग का आदर्श रखने के लिए ही जा रहा हूँ। मै तुम से दूर नहीं होता हूँ, किन्तु त्याग के आदर्श के नाते तुम्हारे समीप ही हूँ। इसलिए तुम मेरे जाने से किसी प्रकार का दुःख न करके इस विचार से आनन्द मानो, कि हमारा राजा हमारे लिए परलोक साधन का आदर्श रखने जा रहा है। मैं जो त्याग कर रहा हूँ,

उसको देखकर तुम लोग प्रत्येक समय इस बात का विचार रखो, कि जब हमारे राजा ने सारा राज-पाट ही त्याग दिया, तब हम छोटी-छोटी वस्तु के लिए आपस मे कलह कैसे करें !

प्रजा से इस तरह कह कर और उसे समझा कर, चन्द्रयश ने नमिराज से कहा, कि भाई, राजा को प्रजा का पालन किस तरह करना चाहिए, यह बात तुम भली प्रकार जानते हो। फिर भी, मैं तुम्हारा बड़ा भाई हूँ। मेरे लिए यह आवश्यक है, कि मैं अपनी ओर से, तुम्हे कुछ शिक्षा दूँ। इसलिए मैं, तुम से यह कहता हूँ, कि प्रजा का पुत्रवत पालन करना, प्रजा की रुचि और मति जान कर, उसे सन्तुष्ट रखना तथा प्रत्येक कार्य विचार-पूर्वक करना। जिस तरह मैंने, एक हाथी के लिए अहंकारवश युद्ध ठान दिया था और युद्ध के कारण होनेवाले जन-संहार का कुछ भी विचार नहीं किया था, वैसी भूल तुम भी मत करना।

चन्द्रयश का यह कथन सुन कर, नमिराज का हृदय गद् गद् हो उठा। उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे। वह, चन्द्रयश के पैरों पड़ कर रुँधे हुए कण्ठ से कहने लगा कि, पूज्य भ्राताजी, मेरे लिए आप ऐसे भाई का मिलना जैसे सौभाग्य की बात है, वैसे ही दुर्भाग्य की बात—आप ऐसे भाई की छत्र छाया से वंचित होना है। आपने, मुझे जो कुछ समझाया है उसके कारण, मैं अधिक कुछ नहीं कह सकता, किन्तु यही कहता हूँ, कि आपकी दी

हुई अन्तिम शिक्षा रूपी सम्पत्ति, मैं सदा सुरक्षित रखूँगा, कभी विस्मृत न करूँगा और आपके पदचिह्नो पर चलने के लिए, निरन्तर प्रयत्नशील रहूँगा।

नियत समय पर, चन्द्रयश ने, सुदर्शनपुर का राज पाट नमिराज को सौंप दिया। नमिराज, मिथिलापुरी का राजा तो था ही, अब वह सुदर्शनपुर का भी राजा हुआ। राजा होकर, नमिराज ने सुदर्शनपुर की प्रजा को आश्वासन दिया, तथा अपना यह निश्चय सुनाया, कि मैं मिथिला और सुदर्शनपुर की प्रजा मे किसी प्रकार का अन्तर न मान कर, दोनो जगह की प्रजा को समान मानूँगा तथा प्रजा एव राजा के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय मे, मैं, भाई द्वारा बताई गई नीति का अनुसरण करके, उनके पदचिह्नो पर ही चलूँगा।

नमिराज को राज पाट सौप कर, चन्द्रयश ने, पंचमुष्टि लोच करके संयम स्वीकार किया। चन्द्रयश, मुनि हुए उस समय, नमिराज एवं प्रजा की आँखों से चन्द्रयश के वियोग दुःख के कारण, आँसू गिर रहे थे। चन्द्रयश मुनि ने, सब को संयम का महत्त्व समझाया। यह करके और सब को धैर्य देकर, चन्द्रयश मुनि, वन में जाने के लिए तैयार हुए। उस समय, उनकी माता सती सुव्रताजी ने उनसे कहा, कि हे मुनि, जन्म-सम्बन्ध से तो आप मेरे पुत्र हो, लेकिन संयम के सम्बन्ध से हम साध्वियो के

आचार्य हुए हो। इसलिए, मैं, आपसे अधिक कुछ नही कह सकती, फिर भी इतना तो अवश्य कहूँगी, कि मेरा सारा प्रयत्न सफल हुआ है और आपने संयम लेकर पारस्परिक कलह का मूल ही नष्ट कर दिया है। सती सुव्रताजी के इस कथन के उत्तर मे, चन्द्रयश मुनि कहने लगे, कि आप, शास्त्र के वचनों की दृष्टि मे रख कर मुझे चाहे आचार्य मानें, लेकिन वास्तव मे, मेरी गुरुनी तो आप ही हैं। आपने, मुझे जन्म देकर तथा पाल पोष कर, मेरा इहलौकिक कल्याण किया है, एवं अज्ञान मिटा कर मेरा पारलौकिक कल्याण भी किया है। इस तरह आपने, मातृकर्त्तव्य का पूरी तरह पालन करने के साथ ही, माता और पुत्र के सम्बन्ध को भी पूरी तरह निभाया है। मातृकर्त्तव्य का, पूरी तरह पालन करनेवाली माता वही है, जो अपने पुत्र का इहलौकिक कल्याण भी करे तथा पारलौकिक कल्याण भी करे। आपने, मेरे प्रति इस कर्त्तव्य का पालन किया है, इसलिए मैं आपका चिरऋणी हूँ।

चन्द्रयश मुनि, वन के लिए चल पड़े। वन मे जाते हुए चन्द्रयश मुनि को वन्दन नमस्कार करके, नमिराज आदि सब लोग नगर को लौट आये। सब लोगों के हृदय पर, चन्द्रयश मुनि के त्याग का बहुत प्रभाव था। जहाँ-तहाँ लोग यही कहते थे, कि मनुष्य-जन्म पाना उसी का सफल है, जो संसार के प्रपंच से निकल कर, संयम लेता है और जन्म-मरण से छूटने का प्रयत्न

करता है। नमिराज के हृदय पर भी, अपने बड़े भाई द्वारा किये गये त्याग का, बहुत प्रभाव पड़ा था। वह भी, अपने मन मे यही सोचता था, कि जिस विशाल राज्य को, भाई ने तृण के समान त्याग दिया है, वह भाई द्वारा त्यागा हुआ राज्य पाकर, मेरे मन में किसी प्रकार का अभिमान न आ जावे। मैं, अन्याय अत्याचार न करने लगूँ!

सती सुव्रताजी भी, अपनी गुरुनी की सेवा में उपस्थित हुईं। उनने, अपनी गुरुनी को वन्दन-नमस्कार करके उनसे प्रार्थना की, कि—आपकी कृपा से, युद्ध मिट गया और सब शान्ति हो गई है। सती सुव्रताजी ने तो अपनी गुरुनी से इतना ही कहा, लेकिन उनके साथ की दूसरी सती ने, गुरुनी को आद्योपान्त सब वृत्तान्त सुनाकर यह बताया, कि सती सुव्रताजी ने, अपनी वाणी द्वारा दोनों भाइयों का वैर मिटा कर, उन्हें आपस मे कैसे मिलाया तथा इनके उपदेश का, इनके बड़े पुत्र चन्द्रयश पर कैसा प्रभाव पड़ा, आदि। साथ ही, यह भी कहा, कि इन सती का त्याग कैसा है। ये, राजाओं की माता होकर भी, कैसी विनम्र रहतीं हैं एवं सब सतियो की कैसी सेवा करती हैं! दूसरी सती द्वारा कहा गया वृत्तान्त सुनकर, सती सुव्रताजी तो अपने मन में सकुचाई, लेकिन दूसरी सब सतियाँ, बहुत प्रसन्न हुईं और सती सुव्रताजी की प्रशन्सा करने लगीं। सती सुव्रताजी

सब सतियों की सेवा करती हुई एवं संयम का भली प्रकार पालन करके अपूर्व करण से शुक्ल ध्यान में पहुँच कर क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हो क्रम से तेरहवें गुणस्थान पर पहुँची। बाद वे, तेरहवें गुणस्थान की स्थिति भोगकर, अन्त मे चौदहवें गुणस्थान पर पहुँचीं और शरीर त्याग कर, सिद्ध बुद्ध मुक्त हो गई।

नमिराज को सुदर्शनपुर का राज्य सौंपकर तथा संयम लेकर, चन्द्रयश मुनि संयम का पालन करने लगे। उन्होने, बहुत वर्षों तक संयम का पूरी तरह पालन किया। अन्त मे, शरीर त्याग कर वे भी सिद्ध बुद्ध मुक्त हो गये।

चन्द्रयश के संयम लेने के पश्चात् नमिराज मिथिलापुरी और सुदर्शनपुर इन दोनों ही जगह का राज्य करने लगा। वह कुछ दिन मिथिला मे रहता और कुछ दिन सुदर्शनपुर मे। अपने भाई चन्द्रयश के उपदेशानुसार नमिराज प्रजा का भली प्रकार पालन करते, अपने में अहंकार न हो, इसके लिए सावधान रहते और यह भावना करते रहते, कि वह दिन कब होगा, जब मैं भी भाई की तरह राजपाट त्याग कर, संयम ले आत्मा का कल्याण करने में लगूँगा। राज्य करते हुए नमिराज के यहाँ, जब मे पुत्र उत्पन्न हो गया था, तब से तो उनकी यह भावना अधिक प्रबल हो गई थी। इसी बीच मे एक ऐसी घटना हो गई, कि जिसके कारण नमिराज अपनी संयम लेने की भावना को पूर्ण कर सके।

कार्तिकी पूर्णिमा की रात के समय, नमिराज सो रहे थे। अनायास, उनके शरीर में दाह होने लगा। शरीर में दाह होने के कारण, नमिराज की नींद खुल गई। वे सोचने लगे, कि मेरे शरीर में, अचानक यह दाह कैसा! मेरे शरीर मे, इस दाह से पहले कोई रोग नहीं था और मैने खान-पान में भी, किसी प्रकार की असावधानी नही की। फिर, शरीर मे दाह होने का क्या कारण! उनने, इस प्रकार वहुत सोचा, लेकिन दाह होने का कोई भौतिक कारण, उनकी समझ मे नहीं आया। इसलिए उनने यही माना, कि शरीर मे जो दाह हो रहा है, उसका कोई आध्यात्मिक कारण ही है और हो सकता है कि यह दाह, मेरे को कोई सावधानी देने के लिए आया हो।

नमिराज के शरीर मे ऐसा दाह हो रहा था, कि जिसके कारण उन्हे शान्ति न थी। उनकी वेचैनी के कारण, राज महल के सभी लोग जाग उठे और चिन्ता पूर्वक यह विचारने लगे, कि महाराजा बेचैन क्यों हैं? नमिराज की रानियाँ भी, पति को कष्ट मे देखकर चिन्तित हो गई तथा यह जानने का प्रयत्न करने लगीं, कि महाराजा के शरीर मे क्या व्याधि है? नमिराज की पटरानी, नमिराज को क्या कष्ट है यह जानने के लिए, उनके पास गई। पटरानी के पूछने पर, नमिराज ने उससे कहा, कि मेरे शरीर मे दाह हो रहा है। नमिराज की अस्वस्थता का

समाचार जानकर, वैद्य लोग भी आये। अन्त मे, सब ने यह निदान किया, कि महाराजा के शरीर मे दाहज्वर हुआ है और इस व्याधि की औषध है, शरीर पर बावना चन्दन का लेप करना यह निर्णय हो जाने पर, नमिराज की एक सहस्र रानियाँ, अपने ही हाथों से बावना चन्दन घिसने लगीं तथा पटरानी, महाराजा नमिराज के शरीर पर चन्दन का लेप करने लगी। शरीर पर बावना चन्दन का लेप होने से, महाराजा नमिराज को कुछ शान्ति हुई, जिससे उन्हे नींद आ गई। पति को नींद आई जानकर पटरानी, बहुत आनन्दित हुई। मेरी किसी चेष्टा से महाराजा की नींद खुल जावेगी, इस विचार से, पटरानी, नमिराज के पास से हट गई। पति का नींद आने का समाचार सुनकर, अन्य रानियों को भी प्रसन्नता हुई। वे, नमिराज के शरीर पर लेप किया जाने के लिए, फिर चंदन घिसने लगीं, जिससे उनके हाथ की चूड़ियाँ परस्पर टकराने लगीं। चूड़ियों के टकराने के सम्मिलित शब्द से, महाराजा नमिराज की नींद खुल गई। पति की नींद खुली जानकर, पटरानी दौड़ी हुई नमिराज के पास आई और पूछने लगी, कि—महाराज, आपकी नींद क्यों खुल गई? क्या फिर दाह होने लगा है? नमिराज ने उत्तर दिया, कि—दाह तो शान्त है, लेकिन यह शब्द कैसा हो रहा है? इस शब्द के कारण ही, मेरी नींद खुल गई है। पटरानी ने कहा—महाराज, आपके शरीर का दाह शान्त करने के

लिए, सब रानियाँ चन्दन घिस रही हैं। उनके हाथ में जो कंकण तथा चूड़ियाँ हैं, वे, हाथ हिलने से आपस मे टकराती हैं। यह शब्द चूड़ियों के टकराने का ही है। नमिराज ने कहा, कि–चूड़ियों से उत्पन्न इस शब्द ने तो, मेरे को बड़ा ही कष्ट दे रखा है। यह शब्द, नींद नहीं आने देता। नींद आने के कारण मुझे जो शान्ति हुई थी, वह शान्ति भी, इस खनखन शब्द ने नष्ट कर दी है और मेरी नींद भगा दी है। नमिराज के इस कथन के उत्तर मे, पटरानी बोली, कि–महाराज, हम लोग, चूड़ी कंकण या दूसरे आभूषण, आपकी प्रसन्नता के लिए ही पहनती हैं। इसके विरुद्ध, जब वे आपके लिए दुःखदायी प्रतीत हों, तब हमारे लिए उनका पहने रहना, सर्वथा अनुचित है।

यह कहकर, पटरानी, अन्य रानियों के पास गई। उसने रानियों से कहा, कि–चन्दन घिसने के कारण चूड़ियों का जो शब्द होता है, उससे पति की नींद उड़ गई है। इस प्रकार, चूड़ियों का शब्द पति को दुःखित कर रहा है। अपना कर्त्तव्य है, कि अपने द्वारा कोई ऐसा कार्य कदापि न होने देना चाहिए, जिसके कारण पति को दुःख हो, किन्तु वे ही काम करने चाहिए, जो पति के लिए आनन्ददायक हों तथा पति को शान्ति दें। इसलिए यही उचित होगा, कि हम सब, अपने हाथो मे मंगल–सूचक केवल एक-एक चूड़ी रहने देकर शेष चूड़ियाँ निकाल डालें।

यह कहकर पटरानी ने, अपने हाथो मे केवल एक-एक चूड़ी रहने देकर, शेष आभूषण और चूड़ियाँ निकाल डालीं। पटरानी के साथ ही, अन्य रानियों ने भी बिना किसी आनाकानी के ऐसा ही किया। सब के हाथो में केवल एक-एक ही चूड़ी रह गई थी, इसलिए चन्दन घिसने पर भी वैसा शब्द नही हुआ, जैसा शब्द पहले होता था। पटरानी, फिर नमिराज के पास आई और कहने लगी, कि—नाथ, अब तो शब्द बन्द हो गया न ? नमिराज ने कहा—हाँ शब्द तो बन्द हो गया है, लेकिन शब्द का बिलकुल ही बन्द होना यह बताता है, कि रानियों ने चन्दन घिसना बन्द कर दिया है। नमिराज के इस कथन के उत्तर मे, पटरानी ने कहा, कि नहीं महाराज, हमने केवल शब्द का होना ही बन्द किया है, काम बन्द नहीं किया है। नमिराज ने पूछा, कि जब पहले की तरह चन्दन घिसा ही जा रहा है, तब शब्द का होना कैसे बन्द हो गया ? पटरानी ने उत्तर दिया, कि स्वामिन्, हाथों मे, आभूषण के साथ अनेक चूड़ियाँ होने से, वे आपस में टकराती थीं और उनके टकराने से ही शब्द होता था, हम सब ने, अपने हाथों मे केवल एक-एक मंगल-सूचक चूड़ी रहने दी, शेष आभूषण तथा चूड़ियाँ निकाल दी, इससे शब्द बन्द हो गया।

पटरानी का कथन सुन कर नमिराज विचार में पड़ गया। वह मन ही मन सोचने लगा कि संसार मे जो भी दुःख हैं वे

आपस में टकराने से हैं। जब एकता से अनेकता हो जाती है, तब आपस में टकराना या द्वन्द्व होना भी स्वाभाविक है। इसके विरुद्ध जब अनेकों के साथ न रह कर अकेला होता है, अथवा अनैक्यता मिटकर एकता हो जाती है, तब किसी प्रकार का द्वन्द्व भी नहीं होता। रानियो के हाथ मे अनेक चूड़ियाँ थीं तब तक तो वे आपस में टकराती और उनका शब्द ऐसा होता था, कि जिससे दूसरे को कष्ट हो। लेकिन जब एक चूड़ी, रह गई, तब वह मंगल सूचक भी कहलाने लगी और उसका किसी के साथ द्वन्द्व भी नहीं रहा। इसी तरह आत्मा जब तक अनेको के साथ है, तभी तक इसके साथ द्वन्द्व लगा हुआ है और यह कष्ट पाता है। जब यह अकेला हो जावेगा, कर्म के साथ खींचा न रहेगा, तब यह किसी प्रकार के द्वन्द्व मे न रहेगा, किन्तु सर्व प्रकार से कष्ट मुक्त हो जावेगा।

इस तरह विचारते हुए, नमिराज की भावना उच्च हुई। उच्च भावना के कारण, उनके शरीर का दाह भी मिट गया। शरीर का दाह मिटने से, नमिराज को, एकता की भावना पर अधिक दृढ़ता हुई। वे मन ही मन कहने लगे, कि जिस एकता की भावना का यह प्रताप है, उस एकता को भावना को कार्यान्वित करने पर आत्मा के सब दुःख मिट जावें, इसमे कोई सन्देह नहीं हो सकता। अत' अब मुझे, संयम के लिए सावधान हो जाना चाहिए। आत्मा को, देह परिवार आदि के संग से ही दुःख है।

जब आत्मा इनका संग छोड़ देगा, तब इसको किसी प्रकार का दुःख नहीं रह सकता। मुझे, अब वह आनन्द प्राप्त करने का ही प्रयत्न करना चाहिए, जो एकता या निःसंग मे रहा हुआ है।

नमिराज के शरीर का दाह मिट गया। शरीर का दाह मिटने से, नमिराज को संयम पर अधिक विश्वास हुआ, इससे उनने यह निश्चय किया, कि मैं संयम लूँगा। शरीर का दाह मिट जाने से, नमिराज को नींद आ गई। नमिराज, सो गया। सोते हुए, उन्होंने, स्वप्न मे अपने पूर्व भव का सब हाल देखा, जिसे देख कर, वे जाग उठे। स्वप्न मे अपना पूर्व भव देख कर, नमिराज का, संयम लेने का निश्चय अधिक दृढ़ हो गया। प्रातःकाल, उनने अपने परिवार के लोगों तथा मन्त्रियों आदि को बुलाकर, सब को संयम का महत्व बता, अपना निश्चय सुनाया। सब लोगों ने, नमिराज से संयम न लेने का बहुत अनुरोध किया, परन्तु नमिराज ने सब को इस तरह समझाया, कि जिसमे सब लोग, नमिराज के निश्चय के समर्थक बन गये। नमिराज ने, अपने पुत्र को मिथिला और सुदर्शनपुर का राज पाट सौंप दिया। पुत्र को राज पाट सौंप कर, प्रत्येकबुद्ध नमिराज ने संयम लिया। उस समय, उनकी परीक्षा करने के लिए, स्वयं इन्द्र आये थे और उनने, नमिराज को सांसारिक सुखों की ओर खींचने का बहुत प्रयत्न किया था, लेकिन नमिराज का प्रबल वैराग्य देखकर

तथा उनका उत्तर सुन कर, इन्द्र, नमिराज के पैरों पड़ अपने स्थान को गये। इन्द्र ने, नमिराज ऋषि से क्या क्या कहा और नमिराज ऋषि ने, इन्द्र द्वारा कही गई बातों का कैसा उत्तर दिया, आदि बातों का विस्तृत वर्णन श्रीमद् उत्तराध्ययन सूत्र के ९ वें अध्ययन मे है।

नमिराज मुनि, बहुत समय तक संयम का पालन करके, अन्त मे, सिद्ध बुद्ध मुक्त हो गये। सुव्रता सती और चन्द्रयश मुनि तो, पहले ही मोक्ष प्राप्त कर चुके थे। इस प्रकार सती सुव्रताजी ( मदनरेखा ) ने, अपने पति को भी नरक जाने से बचाया था, अपने दोनों पुत्रों को भी, अपने उपदेश द्वारा जीवन मुक्त बनाया और अपने आत्मा का भी कल्याण किया।